निर्वाचित कहानियाँ
तारा पांचाल

सिगरेट खींचते हुए ही एक दिन मजनूं ने पूछा था बल्कि जानकारी देने की तरह कहा था, ''हमारी समझ में एक बात नहीं आती। तिलकधारी जनसंपर्क अधिकारी जब स्वर्णदान कैंप में नाम बोलता है–'बहन अकबरी अपनी इकलौती अँगूठी अपने देश की रक्षा के लिए दान दे रही हैं। बहन शकीला अपने कानों से बालियाँ निकालकर अपने प्यारे देश के सैनिकों को हथियारबंद करने के लिए दान दे रही हैं। शाबाश! शाबाश! यह होता है देश प्रेम। मैं देख रहा हूँ, बहन शकीला अपने कानों के छेदों में तीलियाँ डाल रही हैं।' तब कुर्सियों पर सबसे आगे बैठे लगभग हरेक उँगली में ग्रहों के नगों की अँगूठियाँ डाले जो लोग सबसे ज्यादा तालियाँ बजाते हैं, वही लोग कभी भी इन अकबरियों और शकीलाओं के घर के आगे मुर्दाबाद के नारे लगवा देते हैं कि ये पाकिस्तान से प्रेम करते हैं। लेकिन कैंप खत्म होने पर डी.सी.या एस.डी.एम. या और कोई अफसर चाय-बर्फी की मेज पर इन अँगूठीधारी ताली बजाऊ लोगों की ही तारीफ क्यों करता है कि यह सब सोना इनके कारण आ रहा है?''

लेकिन हमारा ध्यान मजनूं के गंभीर सवालों की ओर कम, खामखां जल रही सिगरेट की ओर अधिक होता था। हममें से उस समय कोई भी कह देता, ''अरे यार तू सिगरेट तो आगे सरका! कब्जा करके बैठ जाता है!''

मजनूं नाराजगी से सिगरेट हमें थमाकर अपनी बीड़ी निकालता और उसी तरह चादर की गुमटी में छिपकर सुलगाता। उसकी नाराजगी को कम करने के लिए उससे पूछा जाता, ''सरकार ने छापे मारने क्यों बंद कर दिए?'' तब मजनूं के मुँह से बीड़ी के धुएँ के साथ शब्द निकलते, ''छापे मरवाये ही कब गए थे? वह तो हमारी-तुम्हारी आँखों में धूल झोंकने के लिए खाली कागजी कार्रवाई थी। और वैसे भी अफ़सरों को सोना बटोरने से फुर्सत मिले, तो छापे मरवाएँ!''

– इसी पुस्तक से

उसने देखा कि सामने घूरे पर पड़ी रात को कटे मुर्गे की हड्डियाँ और पंखों पर कुत्ते और कौवे आ गए हैं। वे छीना-झपटी कर रहे हैं। एक कौवे के हाथ शायद मुर्गे की कलगी लग गई है जिसे वह हवेली की ओर ले उड़ा है। कुछ और कौवे भी काँव-काँव करते उसके पीछे लगे हैं। चमेला राम ने उधर से ध्यान हटाकर जेब से प्रधानमंत्री की चिट्ठी निकाली और उसे उलट-पलटकर देखने लगा। कुछ शब्द उसके जेहन से उतर ही नहीं रहे थे। 'गरीब, दलित, मजदूर ही हमारी असली ताकत हैं, हम चाहते हैं कि इन्हें पंचायतों में अधिक-से-अधिक नुमाइंदगी मिले...' हम गरीब तो बस मोम के टुकड़े हैं जो डोर को मजबूत करते-करते कट रहे हैं–खत्म हो रहे हैं। सोचते हुए उसने चिट्ठी के टुकड़े-टुकड़े कर घूरे पर नुचे हुए पंखों के बीच उछाल दिए।

– इसी पुस्तक से

© कैलाशो

साहित्य उपक्रम
B-7, सरस्वती कॉम्पलैक्स, सुभाष चौक
लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092
E mail : sahitya_upkram@yahoo.co.in
Phone : 91-9818603345, 91-9350809192

ISBN : 978-81-8235-131-8

प्रथम संस्करण : हरियाणा दिवस, 1 नवंबर 2015

लेजर टाइपसेटिंग
साहित्य उपक्रम

मुद्रक
अर्पित प्रिंटोग्राफर्स, दिल्ली-32
ई-मेल : arpitprinto@yahoo.com

आवरण
संयोजन : सुधीर वत्स

मूल्य : 90.00 रुपये

निर्वाचित कहानियाँ

तारा पांचाल

साहित्य उपक्रम

साहित्य से दोस्ती

समर्पित

इन कहानियों के पात्रों को

अनुक्रम

बहुत जरूरी, बहुत खास कहानियाँ – *अशोक भाटिया* 7

जन–मन का कथाकार तारा पांचाल – *ओमप्रकाश करुणेश* 9

सामाजिक–सांस्कृतिक जनतंत्र का कहानीकार–तारा पांचाल – *राजबीर पराशर* 14

तारा पांचाल : जीवन से ओत–प्रोत – *हरपाल* 19

खाली लौटते हुए 21

बिल्ली 31

पृथ्वी सिंह 35

निक्कल 40

जड़मूल 46

टिक्स 56

दीक्षा 65

पर्यावरण 73

पीपल 84

कलगी 93

फूली 102

फोटो में बच्चा 114

मैं मंदिर के गर्भ–गृह से बोल रहा हूँ 133

मुनादियों के पीछे 155

त्राहिमाम्–त्राहिमाम् 177

बहुत जरूरी, बहुत खास कहानियाँ

—अशोक भाटिया

आदरणीय पाठको,

यदि आप ऐसी कहानियों की तलाश में हैं, जो आपके दिलो-दिमाग पर लंबे समय तक छा जाएँ, तो तारा पांचाल की कहानियाँ लेकर हम हाजिर हैं। ये कहानियाँ आपकी और आपके आस-पास की हैं; ये आम होकर भी खास हैं, सरल होकर भी गहरी हैं और लोकप्रिय होने के तमाम गुण लिये हुए हैं। इन कहानियों में सीधे-सीधे बात कहने की अद्‍भुत कारीगरी छिपी हुई है। ये कहानियाँ आपकी जिंदगी से निकली हुई हैं। अगर आप अपने साथ हैं, तो इन कहानियों के साथ भी हो लेंगे। जिस तरह इन्हें लिखते हुए लेखक अपने को भूल गया था, उसी तरह इन्हें पढ़ते हुए आप भी अपने को भूल जाएँगे। आप इन कहानियों के साथ बहने लगेंगे– ऐसा विश्वास है।

अच्छा साहित्य वह है, जो आपके जीवन और स्मृतियों का हिस्सा बन जाए; वह कदम-कदम पर आपका मार्गदर्शक भी बने। इस लिहाज से इस किताब की सभी पंद्रह कहानियाँ आपकी जिंदगी का नए रूप में हिस्सा बनने को तैयार हैं। इस गुण को देखकर ही इन्हें चुना गया है। पहली कहानी 'खाली लौटते हुए' के किसना और भागो और उनका बच्चा मेसी आपको जीवन-भर याद रहेगा ही, उनके साथ जो कुछ हुआ, वह भी आप कभी भूल नहीं पाएँगे। 'पीपल' कहानी की जीतो और रामराज की परेशानी और उनकी मुनिया के सपने आप सबकी परेशानी और सपने भी हैं। उनसे जुड़े बिना आप कैसे रह सकते हैं। आप 'फोटो में बच्चा' कहानी में हर तरह के बच्चे से जरूर मिलना चाहेंगे और फिर 'पृथ्वीसिंह' कहानी में 'पिलवा' नामक बच्चे का करिश्मा आप चाहकर भी कभी नहीं भूल पाएँगे। 'फूली' कहानी को कम-से-कम हर देहाती पाठक बार-बार पढ़ना चाहेगा। इस कहानी के पात्रों को आप अपनी जिंदगी का हिस्सा जरूर बनाना चाहेंगे। 'टिक्स', 'कलगी' और 'निक्कल' जैसी कहानियों में आपके ही दर्द का बयान हुआ है। 'दीक्षा' और 'मैं मंदिर के

गर्भ-गृह से बोल रहा हूँ', कहानियों में धर्म के पीछे छिपी सच्चाइयों को जानकर आप कहानीकार के शुक्रगुजार होंगे; साथ ही पछतावा भी होगा कि ऐसी कहानियाँ अब तक क्यों नहीं पढ़ने को मिलीं। संग्रह की अंतिम और खासमखास कहानी 'त्राहिमाम् त्राहिमाम्' तक पहुँचकर आप खुद कहेंगे कि ऊपर जो कहा है, सब सच है।

पाठको! बिना लाग-लपेट के लिखी गई इन कहानियों के बारे में आपको बिना लाग-लपेट के ही बता दिया है। ये कहानियाँ समय की सड़क पर फैली दूर तक की सच्चाई को दिखाने वाली टॉर्च की तरह हैं, जिन्हें पढ़कर आपको खास तरह की बेचैनी होगी।

1882, सेक्टर 13, करनाल-132001
94161-52100
ashokbhatiahes@gmail.com

जन-मन का कथाकार तारा पांचाल

– ओमप्रकाश करुणेश

गाँव बालू की जमी से उठकर काम-धंधे के लिए तारा पांचाल के परिवार के लोग नरवाना कस्बे में आ बसे। और किसानों व खेतिहर मजदूरों के लिए लोहे के औजारों को बनाने-चाँड़ने का काम शुरू किया। पढ़ाई-लिखाई से फुर्सत के पल निकालकर देर-सवेर वे इस काम में हाथ बँटाते, आग में लोहे को तपाते और घण पर भारी हथौड़े से चोट मारते, उन्हें दराँती, खुरपी, कस्सी, हल, हल के फाल जैसे कृषि-औजारों की शक्ल देते। इस हाड़-तोड़ मेहनत वाले काम में किसानों-मजदूरों के अस्त-व्यस्त चेहरे की झुर्रियों तथा माथे पे पड़ी गहरी लकीरों को बाँचते, उनके मनोभावों को समझते, उनकी दुःख-तकलीफों से संवेदना जताते और उनकी दिक्कतों पर गौर करते। इस प्रकार जमीनी सच्चाइयों और सामाजिक व्यवहारों से उनका नजदीकी रिश्ता बना। कस्बे के शहरी जीवन में भी उनकी जीवन-शैली उसी तरह सहज रही, जैसी पहले गाँव में थी। वही मोटा-झोटा खाना, सीधा-साधा रहन-सहन। हुक्कों की चिलम झाड़ना, ताजा करना फिर भरना और सुलगाना व गुड़गुड़ाना। दुःखों की चिंता को भी धुएँ में उड़ाना और बेफिक्री हँसी-ठट्ठों में एक-दूसरे के जी हलके करते हुए तारा ने मुस्कुराहट के लिए फैले होंठों के बीच से जीभ काटते और आँखों में लिहाज की चमक लिये लोगों की चेतना को अपना हिस्सा बनाया। इनकी कहानियों के केन्द्र में ये सभी समृद्ध अनुभव पूरी वस्तुपरकता के साथ गहरे भावनात्मक लगाव के साथ उपस्थित हैं। इसी कस्बे में इन्हें साहित्यिक मित्र वेदकांत मिला, जिनसे लेखन का उत्साह व प्रेरणा हासिल हुई। ग्रेजुएशन करते वक्त ही पहली कहानी 'उपहार' छपी। इन्होंने कुछ मित्रों के साथ मिलकर 'त्रिशला' पत्रिका भी निकाली। इस तरह बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में तारा पांचाल ने अपना साहित्यिक सफर शुरू किया।

रोजगार की तलाश में तारा नरवाना में कुरुक्षेत्र आने वाली पैसेंजर गाड़ी में सवार होकर विश्वविद्यालय में क्लर्की की नौकरी करने आए और यहीं के हो

गए। इलाके की जीवन–रेखा सवारी गाड़ी हाट–बाजार की रौनक थी, लोगों की यात्रा का सबसे सस्ता सुलभ साधन थी। किसान–मजदूर, कर्मचारी और छोटे–मोटे व्यवसाय चलाने वाले लोगों के साथ–साथ तारा का भी इस गाड़ी से भावनात्मक लगाव था। विश्वविद्यालय में तारा को पढ़ने–लिखने का माहौल मिला, लेकिन अपने इलाके के सीधे–सादे लोगों के बरक्स इन्होंने मध्यवर्ग की छोटी–छोटी चालाकियाँ, चालूपने और अपना उल्लू सीधा करने की तरकीबें भी महसूस की। इसके मूल में हमारी व्यवस्था और शासक–व्यवस्थापकों के छद्म पूर्ण व्यवहार ही मौजूद लगते हैं। तारा ने इन सब द्वन्द्वों के बीच से मनुष्य–समाज की दिक्कतें संवेदना के साथ महसूस करते हुए मनुष्य के व्यवहारों की भीतरी तहों का सच कहा है।'गिरा हुआ वोट' (1991) कहानी–संग्रह के बाद इनकी लगभग चार दर्जन कहानियाँ अपने वक्त की हरकतों, हलचलों, उधेड़–बुन, दु:स्वप्नों को खँगालती हुई आगे की कहानियाँ बन पाई हैं। 'खाली लौटते हुए', 'गिरा हुआ वोट', 'निक्कल', 'झूठे', 'कलगी', 'निर्माता', 'पर्यावरण', 'रामदेव का घर', 'संभावनाएँ', 'फूली', 'मैं मंदिर के गर्भगृह से बोल रहा हूँ', 'फोटो में बच्चा', 'मुनादियों के पीछे', 'जड़मूल', 'हाथ', 'त्राहिमाम्–त्राहिमाम्' में लोगों को अपनी–अपनी छवियाँ नजर आती हैं। हिकारत की निगाहों से दुत्कारे जाने वाले हाशिये के लोगों को कथाकार मानवीय गरिमा के साथ स्थापित करता है।

बनी–बनाई धारणाओं, भ्रामकता और अल्पज्ञता से आशंकाओं में घिरे मन, अभावग्रस्तता व बदहाली में रोजमर्रा की जरूरतों के लिए जुगत भिड़ाने में खपती जिंदगी के बीच छोटी–छोटी खुशियों को बटोरने के लिए कर्जों के बोझ तले दबे–चिथे लोगों को झींखते–खीजते और लगातार छीजते जाने की विषम और विकट स्थितियों का लेखा–जोखा तारा की कहानियों में है। वे भाग्यवाद, नियतिवाद के फलस्वरूप पैदा हुई अकर्मण्यता को भी समझते हैं लेकिन असमानता और शोषण के विविध रूपों के कारण भी ऐसे हालात पैदा होते हैं कि लोगों को आत्मसंघर्ष की राहों पर चलते हुए ही अपनी गुजर–बसर करनी पड़ती है। ऐसे अंधकारमय वक्त में वे मनुष्य की जीने की ललक और ईमान को बचाए रखते हैं।'हाथ' कहानी का मिस्त्री इस ईमानदार और मेहनतकश जमात का प्रतिनिधि पात्र है जो हुनरमंद है, अपने काम के प्रति 'इन्वाल्व' है लेकिन कड़ी मेहनत के बावजूद वह खुद अपने परिवार को भरपेट भोजन ही देने में कठिनाई महसूस करता है। वह अपने लिए रहने लायक घर भी नहीं

बना पाता फिर भी उसे अपनी गाढ़ी कमाई पर भरोसा है। वह चोरी–चकारी और अनैतिक तौर–तरीकों से 'हथियाई गई दौलत' की बनिस्पत हाथों की 'नेक कमाई' पर यकीन करता है– 'हाथों की ही काया–माया है हमारे घर में। हाथों से कमाएँगे। हाथों से खाएँगे, कमाकर ही बच्चों को पढ़ाएँगे। कुछ हिल्ले सिर लगाएँगे।' यह कथन तारा के निजी जीवन का भी दर्शन था और हाड़–तोड़ मेहनतकश जमात का भी; उच्चतम आदर्श व नैतिक दर्शन।

तारा की कहानियों में भ्रष्ट तंत्र में पसरे अँधेरे के खिलाफ जद्दोजहद तो है ही और साथ ही मध्य–निम्नमध्य वर्ग की आत्मकेंद्रित स्वार्थमय दुनिया के खिलाफ तल्खी भी। सामाजिक सवालों से टकराते हुए वे समग्रता से स्थितियों का विश्लेषण करते हुए अपने अनुभवों के आधार पर उनका आंकलन प्रस्तुत करते हैं। गाँवों, कस्बों और आस–पास फैली जिंदगी और उनके गोरख–धंधे, जाल–जंजाल, उलझाव और मानसिक संरचनाएँ हैं। वे उनकी सुनते हैं, उनसे उलझते हैं, उन्हें सहलाते हैं, उन्हें दुलारते हैं, उनकी दुःखती रग पर अपनी नरम उँगलियाँ टिकाते हैं और उनकी कमजोरियों पर तंज कसते हैं। वे समाज के इस रूप से भागते नहीं बल्कि भीतर तक महसूस करते हुए उनके लोकाचार अच्छे व बुरे व्यवहार, मर्यादा व नैतिक आचरण का मूल्य जानते हुए उसकी उर्वरा शक्ति और ऊर्जा से मौजूदा स्थितियों से लड़ने का ज़ज्बा पैदा करने की कुव्वत रखते हैं। मनुष्य समाज की यह दुर्गति बनाए रखने में राजनैतिक शक्तियों के क्रिया–कलापों में धर्म, जाति, संप्रदाय और क्षेत्रवाद का जहर अपनी क्रीड़ाएँ करता है और जनसाधारण को गुमराह करते हुए उन्हें शतरंज के मोहरों की तरह प्रयोग करता है। व्यक्ति विचारहीन, विवेकहीन होकर ऐसी ताकतों का पिछलग्गू हो जाता है। 'गिरा हुआ वोट', 'निर्माता' कहानियाँ इन जटिल और परस्पर गुँथी परतों को और अच्छी तरह खोलती हैं।

वैश्वीकरण, उदारीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति ने एक ऐसा बाजार तैयार किया है जिसमें मनुष्य क्रय–वस्तु बनकर जी रहा है। बहुराष्ट्रीय पूँजी के खेल ने मध्यवर्गीय तबकों को मुनाफा कमाने की मशीन बना दिया है और उसका व्यवहार स्वेच्छाचारी बना दिया है। सत्ता–विमर्श में राजनीतिक दल और प्रशासनिक व्यवस्था में जुटे शासक वर्ग की भूमिका भी पीछे नहीं है। तमाम किस्म के भ्रष्ट आचरण घर–द्वार और दहलीज पर दस्तक दे रहे हैं। जनसंचार माध्यम इस कारोबार में शामिल हो रहे हैं, उनके विमर्श में अनावश्यक मुद्दे हैं तथा मानवीय गरिमा को लील रहे सवालों से दूरी है। सनसनी, उत्तेजना

और व्यावसायिक दबावों से मीडिया अपने सामाजिक दायित्व के निर्वहन में कम चिंतित है तथा गैर-जरूरी बातों में उलझ रहा है। 'जड़मूल' कहानी में तारा की यही चिंता गंभीरता के साथ प्रस्तुत है। आत्म-विज्ञापन, श्लाघा और स्वकेंद्रित वैयक्तिक समस्याओं के केंद्र में आने से आमजन की समस्याएँ बहुत पीछे छूट जाती हैं। मनुष्य की सोच को विकृत, पंगु और आपराधिक बनाने में तमाम कोशिशें जाने-अनजाने में हो रही हैं; और राज्य की कल्याणकारी भूमिका और विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगे हैं।

छद्म आध्यात्मिकता, पाखंडपने और कर्मकांड विधानों, पूजा के आडंबरपूर्ण तौर-तरीकों, कहर व तत्त्ववादी संकीर्ण सोच ने सच्चे-पक्के धार्मिक मन को आच्छादित कर लिया है। छल-छद्म, चमत्कारों, ढोंगपूर्ण कृत्यों ने बाबाओं, गुरुओं, किस्साकारों, कथावाचकों की हरकतों ने मनुष्य की सच्ची, सीधी और निष्कपट भक्ति-भावना को अनेक भगवत्स्वरूपों में बदल दिया है। इससे वह अंधविश्वासी, घोर अनुकरणकारी श्रद्धा और अंधास्था से लबरेज शरणागत है जो अब बंद आँखों से भीतर वो देख रहा है जो उसे दिखाया और समझाया जा रहा है पर खुली आँखों से यथार्थ नहीं देख पा रहा है। भ्रम, आशंका और अज्ञान में भटकता हुआ मनुष्य को उसके श्रम से हटाकर भाग्य और नियति के सहारे छोड़ दिया गया है। तारा जी की 'गुरुजी का नाम', 'दीक्षा', 'मैं मंदिर के गर्भगृह से बोल रहा हूँ' जैसी कहानियाँ भ्रमित मनुष्य का सच्चाइयों से सामना करवाती हैं।

तारा जी आदर्श मन के यथार्थवादी और प्रगतिशील रचनाकार हैं। वे 'जो हो रहा है' उसके विरोध में खड़े हैं तथा 'जो होना चाहिए', उसकी हामी में डटे हैं। उनकी यही प्रतिबद्धता उन्हें आमजन की तकलीफों को आवाज देने वाला कथा-शिल्पी बनाती है। अहंकार, व्यक्तिवादिता और महत्त्वाकांक्षाओं के दुःस्वप्नों में सामाजिक सरोकारों का साहित्य-सृजन न करके खोखले आदर्शों और ओछी हरकतों से खुद को प्रोजेक्ट करने वालों को वे 'जेनुइन राईटर' के तौर पर स्वीकृति नहीं देते। बल्कि वे 'गरुड़', 'मयूर जी', 'गवैया' जैसी कहानियों के जरिए इन छद्म लेखकों को उघाड़ा करते हैं जो कल्पनाजीवी और स्वप्निल हैं और समग्रता में मौकापरस्त हैं।

तारा जी बतौर लेखक इन पीड़ाओं और तकलीफों को झेलते थे। वे अपने समय के समाज की घुमावदार सीढ़ियों पर चढ़ते हुए असहज महसूस करते थे। उन्हें कभी-कभी भयंकर सिर-दर्द से 'माईग्रेन' का दौरा पड़ता। लेकिन

अपने भीतर की बेचैनियों और छटपटाहट को तब भी रोक नहीं पाते। वे घर-परिवार और समाज के सवालों से टकराते और रुकने का नाम नहीं। मुक्तिबोध के शब्दों में मैं उनकी यह पीड़ा बयान करना चाहूँगा—

'और जब
मेरा सिर दुखने लगता है
धुँधले-धुँधले अकेले, आलोचनाशील
अपने में उठे धुएँ की चक्करदार
सीढ़ियों पर चढ़ने लगता हूँ... '

चक्करदारी सीढ़ियों वाली घुमावदार दुनिया के चक्रव्यूह को ही वे भेदना चाहते थे। रचना-कर्म के सफर में डॉ. ओमप्रकाश ग्रेवाल, डॉ. सूरजभान, प्रदीप कासनी, सरबजीत, हरपाल, करुणेश, राजबीर पराशर, सुभाष, अशफाक उनके सहयात्री रहे। संगोष्ठियों में रचनाओं पर सामूहिक चर्चाओं और सुझावों से उनकी रचना-प्रक्रिया को निरंतरता और तार्किक रचनात्मक ऊर्जा हासिल हुई।

यहाँ मैं उनके जीवन की अंतिम अप्रकाशित कहानी 'त्राहिमाम् त्राहिमाम्' का जिक्र अवश्य करना चाहूँगा। इस कहानी में लेखक आज के मुश्किल वक्त में उपर्युक्त सभी सवालों से टकराता हुआ मानवीय संवेदनाओं को बचाए रखने के पक्ष में खड़ा होता है। यह लंबी कहानी और भी बड़े सवाल उठाती है और अमानवीय व्यवस्था के विद्रूप चेहरे के बीच मानवीय गरिमा और जीने के लिए मूल्यों को बचाकर रखने की कोशिश है।

आखिरी वक्त में भी तारा मन से गतिशील, तन से शिथिल होते हुए भी जमीनी हकीकतों को अपनी कहानियों की मुखर आवाज बनाने के लिए तड़पता रहा। उसका तृषित मन खुली आँखों में एक ऐसा सपना लिये था जिसमें वह अकेला पैसेंजर गाड़ी में सफर करे... थैला और थैले में धड़कनें लिये... डायरी में सब कुछ नोट करते हुए... फिर वह खुलकर, डूबकर बढ़िया-सी कहानी रचे... कल की कहानी।

छाँव (करुणेश सदन)
1826-2/वार्ड-8(23)
शीला नगर, कुरुक्षेत्र-136118

सामाजिक-सांस्कृतिक जनतंत्र के कहानीकार—तारा पांचाल

—राजबीर पराशर

हरियाणा में साहित्य व्यवहार की जो निखरी हुई प्रगतिशील अभिव्यक्ति है, तारा पांचाल उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। साहित्य जगत के भीतर की अकादमिक चकाचौंध, स्वयंभू बौद्धिकता व प्रायोजित 'साख' से दूर, तारा पांचाल का समस्त रचना-कर्म आत्मकेंद्रित लेखकों व पाठकों की साहित्य अवधारणाओं को खंडित करता है। उनके कहानी लेखन व प्रेमचंद की परंपरा में एक सीधा व आंतरिक संवाद है जो एक-दूसरे को निरंतर समृद्ध करता है। यही वजह है कि सार्वजनिक मंचों व आयोजनों में सामान्यत: कम दिखाई देने वाले या पीछे रहने वाले तारा पांचाल के कहानी-लेखन ने साहित्य-संस्कृति से जुड़ी तमाम बहसों से एक जीवंत रिश्ता बनाए रखा। उनके लेखन व व्यक्तित्व में महत्त्वपूर्ण लेखन होने का दंभ या आत्मप्रचार करने वाली बनावटी विनम्रता नहीं है। तारा पांचाल समकालीन हिंदी कहानी की वो महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं जिसमें बीसवीं सदी से इक्कीसवीं सदी के कहानी-लेखन में प्रविष्ट होने के सूत्र व निरंतरता मौजूद है। लेकिन उनकी तमाम रचनाओं की यह खूबी है कि वे हरियाणा के सांस्कृतिक संदर्भों, बोलचाल व लोक-व्यवहार से काफी कुछ ग्रहण करती हैं। शायद तारा पांचाल ही ऐसे लेखक हैं जो हरियाणा की क्षेत्रीय व सांस्कृतिक पहचान को महिमा-मंडित किए बिना उसे अपने सोच-विचार व लेखन में जरूरी रूप से शामिल करते हैं।

पिछले दो दशकों से साहित्य के क्षेत्र में कई बदलाव आए हैं। एक तरफ, उत्तर-आधुनिकता, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, विज्ञापन व अन्य प्रभावों से साहित्यकारों में भी फैशनेबल ढंग से 'विमर्शों' में शामिल होने का रुझान बढ़ा है। दलित साहित्य व स्त्री-लेखन ने जनवाद व प्रगतिशील की स्थापित धाराओं की अपर्याप्ता को तीखे ढंग से उजागर किया है। सवर्ण-मध्यमवर्गीय-प्रगतिशील लेखकों का एक हिस्सा संशयवाद का शिकार होकर मध्यम वर्ग केंद्रित हो

चुका है। भाषायी दक्षता, कृत्रिम विडंबनात्मकता व जादुई यथार्थ जैसी उत्तर आधुनिक प्रकृतियों ने हिंदी साहित्य को हिंदी क्षेत्र की ठोस सच्चाइयों से दूर करने का गैर जन-पक्षीय रुझान बनाया है। इन भारी बदलावों के बीच तारा पांचाल के लेखन में संवेदनशीलता, सामाजिक प्रतिबद्धता व जनतांत्रिक आकांक्षाओं के नए रूपों के लिए पर्याप्त जगह भी है और सामंती, प्रतिक्रियावादी, सांप्रदायिक मूल्यों के प्रतिरोध की दृढ़ता भी।

'कलगी' में जातीय शोषण को गहरी संवेदनशीलता, सूक्ष्मता व वस्तुपरक ढंग से चित्रित किया गया है। तारा पांचाल इस काहनी में गाँव की सरल एवं रोमेंटिक छवि को तोड़ते हैं। गाँव का पूरा सामाजिक जीवन, मूल्य, न्याय-व्यवस्था व पंचायत की कार्य-प्रणाली जातीय भेदभाव पर टिकी है। सामाजिक जनतंत्र के बिना राजनीतिक जनतंत्र कितना अधूरा व नकली है, चमेला के ये शब्द स्पष्ट करते हैं "हर कोई जानता है कि पंचायत में जब चमेला बोलता है तो उसकी बात एक या दो आने की है। अगर एक ब्राह्मण कुछ कहता है तो उसकी बात बारह आने की है। लेकिन एक चौधरी की बात 16 आने की है। सारी दुनिया जानती है कि पंचायत का फैसला किसी की बात के वजन पर निर्भर नहीं करता बल्कि बात करने वाले की जाति पर निर्भर करता है।" 'निर्माता' में तारा पांचाल जाति-व्यवस्था व सांप्रदायिकता की समस्या को राजनीतिक व्यवस्था में अवसरवाद से जोड़कर देखते हैं। 'गिरा हुआ वोट' में 'गरुड़' साहित्यिक परिवेश को केंद्र में रखकर लिखी गई कहानी है। हिंदी क्षेत्र या हरियाणा विशेष में साहित्यकार के जो सीमित अर्थ स्थापित किए जाने की कोशिश है, तारा पांचाल उसका अवसरवादी व काइयाँ चेहरा उद्घाटित करते हैं। जीवन की वृहत्तर सच्चाइयों से विभिन्न व वर्चस्वादी संस्कृति के भौंड़ेपन पर इतराता राजकवि 'गरुड़' व्यक्ति नहीं एक रूपक है। 'गरुड़' साहित्य-संस्कृति के उस छद्म रूप-व्यवहार का प्रतिनिधित्व करता है जो साहित्य का रचयिता नहीं 'उपभोक्ता' है। वह साहित्य को समृद्ध करने की बजाय उसका अवमूल्यन करता है। तारा पांचाल प्रलोभन व अवसरवाद पर टिकी गरुड़-संस्कृति का सतहीपन व खोखलापन उजागर करते हैं। मुक्तिबोध की तरह तारा पांचाल लेखक बनने के लिए 'हृदय की तगारी' व 'तसला' की जरूरत पर बल देते हैं व 'सफलता की आँख' से लिखे गए साहित्य की सीमाओं को स्पष्ट करते हैं।

बीसवीं सदी के आखिरी दो दशक हिंदी क्षेत्र के सांस्कृतिक जीवन में भारी

बदलावों का दौर है। अंध-राष्ट्रवाद, सांप्रदायिकता, प्रतिक्रियावादी सांस्कृतिक उभार व उपभोक्तावाद साथ-साथ फलते-फूलते हैं तथा स्थायित्व पाते हैं। धर्मनिरपेक्षता व जनतांत्रिक मूल्यों के हासिल ढाँचों, परंपरा व विचार पर सुनियोजित हमले होते हैं। इसी समय तारा पांचाल 'फोटो में बच्चा' व 'मैं मंदिर के गर्भगृह से बोल रहा हूँ' लिखते हैं। ये कहानियाँ बौद्धिक तबकों में धर्मनिरपेक्षता तथा जनतंत्र के पक्ष में ऐतिहासिक साक्ष्यों व तर्कों को उधार लेकर नहीं लिखी गई हैं। तारा पांचाल की रचनाओं का यह पक्ष काफी महत्त्वपूर्ण है कि वे वैचारिक निष्कर्षों को लेखन के 'केंद्र' में नहीं रखते बल्कि जीवन की ठोस सच्चाई का जनपक्षीय प्रतिबद्धता के साथ 'अन्वेषण' करते हैं। 'फोटो में बच्चा' उपभोक्तावाद एवं मीडिया द्वारा निर्मित यथार्थ की यांत्रिकता को मानवीय संवेदनशीलता, सामाजिक जिम्मेदारी व आलोचनात्मक विवेक के औजारों से तोड़ती है। इस कहानी का कथावाचक एक फोटोग्राफर है—कम्पीटीशन के लिए उपयुक्त बच्चे की छवि फोटो में कैद करने वाला कैमरामैन। लेकिन उसकी अंदरूनी बेचैनी उसे विज्ञापन की फौरी जरूरतों के सामने सरेंडर करने से रोकती है, उसका कैमरा एक जगह टिकता नहीं, पूरे शहर का सर्वे करता है। वह शहर के उन इलाकों में पहुँच जाता है जो मुख्यधारा, मीडिया तथा राजनीतिक सरोकारों के लिए कोई महत्त्व नहीं रखते। हरियाणा की सामाजिक-आर्थिक हालत की तस्वीर लिये यह कहानी सहज नहीं पाठक को राष्ट्रीय स्तर पर विकास की विडंबनात्मक सच्चाई तक ले जाती है। 'फोटो में बच्चा'— विज्ञापन की तत्कालीन माँग है। लेकिन तारा पांचाल इब्ने इंशा के 'ये बच्चा किसका बच्चा है' की दिशा में मुड़ जाते हैं। कहानीकार विज्ञापन के बहाने उसके विलोम यानी जीवन के असल सच को स्थापित करते हैं। 'मैं मंदिर के गर्भगृह से बोल रहा हूँ'—सांप्रदायिकता को वैचारिक समस्या की तरह नहीं उठाती। इस कहानी में धर्म, व्यापार, बाजार व तत्त्ववाद का सहज मिश्रण मंदिर के मुखिया के चिंतन व आचरण में दर्शाया गया है। मंदिर का गर्भगृह—एक अंधेरी सांस्कृतिक सुरंग की तरह, जिसमें बलिष्ठता प्राप्त करने का पारंपरिक साजो-सामान मौजूद है। लेकिन यह छद्‌म धर्मतंत्र जितना दोगला—जनविरोधी होता है—इसकी लोकप्रियता उतनी ही बढ़ती है। 'मैं मंदिर के गर्भगृह से बोल रहा हूँ'— राजनीतिक फासीवाद को नहीं, सांप्रदायिक फासीवाद को उसके सहज-स्वाभाविक अवस्था व गत्यात्मकता में चित्रित करती है।

तारा पांचाल के पहले कहानी-संग्रह 'गिरा हुआ वोट' के बाद से उनकी

अधिकांश कहानियाँ हिंदी की राष्ट्रीय पत्रिकाओं जैसे– हंस, कथन, बया, पल–प्रतिपल व जतन में निरंतर प्रकाशित हुई हैं। कहानीकार के रूप में उनकी जो पहचान राष्ट्रीय स्तर पर बनी है, वह आकस्मिक नहीं है। 'फूली' व 'मुनादियों के पीछे' दो ऐसी कहानियाँ हैं जो प्रेमचंद की परम्परा से वाकिफ हिंदी पाठक को अपना यथार्थ–बोध व्यापक करने के लिए मजबूर करती हैं। इन दोनों रचनाओं में उत्तर भारत के ग्रामीण–कस्बाई जीवन का गहरा अन्वेषण है। तारा पांचाल की अन्य कहानियों की तरह इनमें भी हरियाणा का समाज केंद्र में है। 'फूली' एक भैंस का नाम है जैसा कि ग्रामीण हरियाणा/हिंदी क्षेत्र में माथे पर सफेद फूल वाली, गाय या भैंस को अक्सर कहा जाता है। ये दूली और उसके परिवार की मूलभूत जरूरतों से जुड़ी आकांक्षाओं व संभवत: दु:स्वप्नों के बीच गहरे आत्म–संघर्ष व जीवट की कथा है। दूली दिहाड़ीदार मजदूर है। वह हर रोज शहर जाता है, मध्यम/उच्च वर्गीय संपन्नता उसे कामकाज/मजदूरी देती है। उसकी माँ अपने बुढ़ापे का अंतिम दिनों में पैर पसारकर ठीक–ठाक खाट पर सोना चाहती है, वह फूली की तरफ इशारा करके माँ को आश्वस्त करता है कि इसे बेचकर, वह सब कुछ कर देगा। यह कहानी जटिल मनोवैज्ञानिक धरातल पर चलती है, दूली का सारा परिवार 'फूली' के बारे में ही सोचता है। उनकी इच्छाओं की पूर्ति फूली की बिक्री से बने आर्थिक आधार पर निर्भर है। लेकिन यह परिवार शहरी, मध्यवर्गीय, उपभोक्तावाद को पचा चुका मनोवृत्तियों का पुंज नहीं है। दूली के परिवार के सदस्य अलग–अलग मौकों पर फूली के स्वास्थ्य। खैर सुख बारे दु:स्वप्न देखते हैं। असुरक्षा महसूस करते हैं–उनमें 'उपयोगितावादी' जीवन–दृष्टि का परोक्ष नकार है। पूरी कहानी सतही तौर पर आर्थिक जरूरतों के बीच 'फूली' को प्रोजेक्ट करती है। लेकिन सभी पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण इस कहानी को सांस्कृतिक धरातल पर ले जाता है– जहाँ से असमान आर्थिक–सामाजिक विकास के जटिल पक्ष स्वयं ही उद्घाटित होने लगते हैं। मूलभूत जरूरतों के लिए पर्याप्त आर्थिक संसाधन जुटाने में लगे दूली व परिवार के अन्य सदस्य 'फूली' के जरिए एक अमूर्त बंधन में बंधे हैं। 'फूली' की उपस्थिति उनकी इच्छाओं को बल देती है और उसकी 'अनुपस्थिति' का ख्याल उनके इंसानी वजूद को हिलाकर रख देता है। 'फूली' में असमानता पर आधारित विकास के बारे में जो सवाल पाठक के मन में उठते हैं, उनका जवाब 'मुनादियों के पीछे' में दिया गया है। यह कहानी एक तरह का ऐतिहासिक दस्तावेज है। तारा

पांचाल ने 'मुनादियों के पीछे' में एक ऐसे केंद्रीय पात्र को दिखाया है जिसको सामान्यतः समाज के द्वारा इंसानी वजूद व पहचान से ही वंचित रखा जाता है। यह कहानी 1947 में मिली आजादी को एक विलक्षण, लेकिन तारतम्यहीन प्रेमकथा के रूप में प्रस्तुत करती है। इस प्रेमकथा के लेखक वो सामान्य जन हैं जो अभिव्यक्ति व पहचान के लिए संघर्षरत हैं।

हिंदी कहानी लेखन में तारा पांचाल का महत्त्व व स्थान बिल्कुल अलग कहा जा सकता है। इक्कीसवीं सदी को मध्यमवर्ग की सदी कहा जा रहा है। विचार व इतिहास के अंत के तर्क बहुराष्ट्रीय पूँजीवाद ने गढ़ लिये हैं। हिंदी साहित्य में भी लेखकों का बड़ा तबका है जो काफी प्रभावशाली है। जिसने लेखन के केंद्र में मध्यम वर्ग या उससे भी ऊपर के वर्ग की जीवन स्थितियों को ही एक मात्र सच्चाई दिखाना शुरू कर दिया है। तारा पांचाल इस छद्म विमर्श व यथार्थ को नकारते हुए हिंदी कहानी को प्रेमचंद की परंपरा में पुनर्गठित करते हैं। स्त्री व दलित-विमर्श के दौर में तारा पांचाल एक संजीदा कहानीकार हैं, जिन्हें विमर्शों के नयेपन के दबाव में पैंतरेबाजी की जरूरत नहीं है। उनकी लेखकीय नजर से किसी भी तरह का उत्पीड़न व उसके प्रतिरोध की संभावनाएँ गायब नहीं हैं।

एसोसिएट प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग,
आर.के.एस.डी. कॉलेज, कैथल-136027
फोन : 94163 83294

तारा पांचाल : जीवन से ओत-प्रोत

हरपाल

तारा पांचाल के रचना-जगत को जानने के लिए उनके जन्म-स्थान के परिवेश को जानना अच्छा रहेगा। इनकी ओल-नाल (नाभि-नाल) नरवाना और इसके आस-पास के अनेक गाँवों से विस्तृत रूप से जुड़ी हुई है। नरवाना एक ऐसा शहर है जो कभी भी एक बड़े गाँव की हैसियत से आगे नहीं जा सका। यहाँ वे सब रंग मौजूद हैं जो कि तारा पांचाल की रचनाओं में दिखाई पड़ते हैं। इनकी रचनाओं के पात्र, इनके आस-पास रहने वाले, मिलने-जुलने वाले, साँसें लेते और धड़कते सीने वाले ऐसे लोग हैं। तारा की मानसिक बनावट में फिट बैठ जाएँ वो भी और जो फिट न बैठें वो भी, एक अपनत्व भरे अधिकार के साथ उपस्थित हैं। तारा की रचनाधर्मिता, विश्वसनीयता के ताने-बाने से बुनी और उनके अनुभवों के जखीरे में रहकर परवान चढ़ी एक राष्ट्रीय पहचान बनाती है। तारा के पास अध्ययन से उपजी समझदारियाँ सीमित होते हुए भी उनके व्यापक सामाजिक व्यवहारों और सरोकारों के चलते समृद्ध होती चलती हैं। इन्होंने हमेशा ही जाने-पहचाने क्षेत्रों में ही कलम चलाई है। वे मुद्दों की चरागाहों में मुस्तैदी और एकाग्रता के साथ सभी पात्रों और परिस्थितियों से सामंजस्य बिठाते हुए अपनी सामाजिक प्रतिबद्धताओं का निर्वहन करते हैं और एक कुशल कारीगर की तरह ही अपनी रचनाओं को काँट-छाँट कर 'फिनिशिंग टच' देते हैं।

तारा पांचाल ने अत्यंत छोटे-छोटे स्वप्न देखे हैं और लेखन को लेकर ज्यादा महत्त्वाकांक्षी नहीं रहे। एक सामान्य जन-मानस चाहे गरीब या अमीर कुछ भी हो, कैसे एक मानवीय गरिमा के साथ जी सकता है, ऐसे में कोई उसकी चादर न उतार पाए, कोई उसकी पगड़ी पर हाथ न डाले, उसकी ईमानदारी और वफादारियों पर कोई संदेह न करे और उसे महज मजाक और चुटकुलों में 'रिड्यूस' न किया जाए, इसके लिए वे हमेशा संघर्षरत रहे। इन्होंने अपनी तमाम रचना-यात्रा में कहीं भी किसी महापुरुष या महामानव को

अवतरित नहीं होने दिया गया है। वे सामान्य से पात्रों की रचना करते हैं और उनकी तमाम कमजोरियों और अच्छेपन के साथ तालमेल बिठाकर एक स्तर तक ले जाते हैं जहाँ पहुँच पात्र जिम्मेदार नागरिक के तौर पर खड़ा दिखाई देता है। यहाँ पर लेखन मात्र 'टाइम पास' या मनोरंजन का साधन न होकर एक वृहत् सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वहन समझा गया है।

तारा का लेखन समय-समय पर होने वाली महत्त्वपूर्ण घटनाओं से अछूता नहीं रह पाया है और इसके परिणाम स्वरूप उपजे निष्कर्षों को उन्होंने अपनी रचनाओं में सँजोया है। हम सभी सहयोगियों का मानस आपसी गहन विचार और संबंधों के प्रति गहरी निष्ठा के कारण ही सामाजिक प्रतिबद्धताओं की ओर आकर्षित रहा है। तारा पांचाल के निकट रहने वाले साथियों को स्वयं पर गर्व करने के निश्चय ही यथेष्ट कारण रहे हैं जो आज के लगातार विकट होते समय को परिभाषित करने में मददगार हैं।

1208/12, गली नं. 3,
शांति नगर, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)
9416321293

खाली लौटते हुए

किसना और भागो दो-ढाई घंटे से उस ऊँचे बेंच के पास ही खड़े थे जिस पर उनका दस साल का बेटा रमेश लेटा था। वह जितना अधिक निश्चेष्ट दिखने लगता वे दोनों उतने ही अधिक बेचैन होने लगते। डॉक्टर की हिदायत के बावजूद कभी माँ कभी बापू बारी-बारी से उसे टोक रहे थे, 'मेरे लाल... मेसी... बेट्टे मेसी...' माँ की इस आवाज से उसकी आँखें थोड़ी-सी खुलतीं और फिर बंद हो जातीं। सफेद-सफेद निर्जीव होंठ भी लगता था कि काँप रहे हैं और इसी से उन दोनों को थोड़ी तसल्ली होती। माँ फिर भी मुँह फेरकर अपनी गीली हुई आँखों को पोंछती और उसके माथे पर हाथ रखती, उसके बालों को सीधा करती और फिर कह बैठती, 'मेरे लाल!' किसने की नजरें वहाँ फट्टियों पर धूल जमी दवाइयों की शीशियों, एक खूँटी पर टँगी गर्म पानी की पुरानी रबड़ की बोतल, एक कोने में खाली सफेद-पीली शीशियों से भरी लकड़ी की पेटी और ऊपर छत पर बड़े-बड़े पंखों वाले पंखे से फिसलकर फिर बेटे पर आ टिकती। वह उसकी हथेली अपनी दोनों हथेलियों के बीच हल्के से दबाता और फिर कुछ देर दबाए ही रहता जैसे कि अपनी सारी गर्माहट बेटे को देना चाह रहा हो। माँ भी उसके सिर से पाँव की ओर जाती, उसके ठंडे पड़ते तलवों को हल्के-हल्के सहलाती हुई गर्माने की कोशिश करती और फिर सिर की ओर आ जाती।

वे दोनों खुद भी ठिठरे जा रहे थे। किसना लँगोटी जैसी छोटी-सी धोती बाँधे था जो कि गोड़ों के ऊपर ही टँगी थी। खाली एक कमीज और सिर पर परना लपेटा हुआ था। भागो ने बड़े ही झीने कुरता-सलवार पहन रखे थे और उसके लाल रंग के ओढ़ने में भी जाड़ा थामने की गुंजाइश नहीं थी। उसकी सलवार के दोनों गोड़ों पर दो अलग-अलग रंग की बदरंग थेगलियाँ लगी थीं। पाँवों में दोनों ही चप्पल पहने हुए थे।

डॉक्टर अब तक उसे तीन इंजेक्शन दे चुका था पर उसकी हालत में कोई सुधार नहीं हो पा रहा था। वह जब भी अंदर आता—वे दोनों लगभग एक साथ पूछते, 'डॉक्टर जी, कोई ईसी-ऊसी बात तो नहीं है?' और सुबह से कहे जा

रहे डॉक्टर के इस वाक्य 'घबराओ नहीं किसना, भगवान भला करेंगे' को नजरअंदाज कर एक साथ ही दोनों की विश्वास-अविश्वास के बीच भटकती नजरें डॉक्टर के चेहरे को पढ़तीं और भीतर-ही-भीतर काँपता हुआ विश्वास उन्हें सहारा देता, 'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।'

उनके इस विश्वास का कारण एक तो 'जिंदगी में हमने कभी कीड़ी तक भी नहीं सताई, ना कभी किसी का बुरा चाहा' था और दूसरे यह डॉक्टर चौधरी था। इस डॉक्टर के बारे में लोगों की आम राय थी–इसके हाथों में जश है–इसके हाथ की दी हुई राख की चुटकी भी लग जाती है! वैसे यह इतना पढ़ा-लिखा नहीं है। पर एक तो शहर के और डॉक्टरों की तुलना में यह कम खाल छीलता है और दूसरे अपने हर मरीज को उसका नाम लेकर बोलता है– अपनी दुकान के आगे इसने एक बड़ा-सा साइन-बोर्ड भी लगा रखा है जिस पर बड़े-बड़े अक्षरों में 'चौधरी दवाखाना' लिखा है। इसके नीचे पुरानी-से-पुरानी और नजला-जुकाम से लेकर मिरगी और दमा जैसी हर बीमारी का इलाज तसल्ली-बख्श करने का दावा भी लिखा है। और बिल्कुल नीचे लिखा है डॉ. ए.पी. चौधरी, आर.एम.पी.। वैसे तो पिछले कुछ सालों से एम.बी.बी.एस. डॉक्टरों की दुकानें भी इस कस्बे में कई खुली हैं पर उनकी फीस ज्यादा होने के कारण इस डॉ. चौधरी की प्रैक्टिस पर कोई खास फर्क नहीं पड़ा था। देहाती, खासकर गरीब तबके को इसी का सहारा लेना पड़ता है।

यूँ कस्बे में हस्पताल भी है पर जब बेटे को लेकर गाँव से चला था तो कइयों ने एक ही बात कही थी, 'चौधरी पर ही ले जाना, किसी और अच्छे डॉक्टर को दिखा लेना पर हस्पताल के चक्कर में बिल्कुल ना पड़ना। हाँ, अगर नोट फरकाने की गुंजाइश हो तो फिर बेशक हस्पताल में दिखा लेना', उनकी बात सच्चाई के निकट भी थी। हस्पताल के बाहर गार्डरों पर खड़े बड़े-बड़े साइन बोर्ड खूब लंबी-चौड़ी घोषणाएँ तो करते थे पर मरीजों को उनकी छाया तक का आराम नहीं था। इसके अतिरिक्त सिफारिश के हिसाब से ही वहाँ के थर्मामीटर तापमान बताते थे और रिश्वत की मात्रा के हिसाब से ही स्टैथोस्कोपों से उनके कानों तक मरीज की धड़कने पहुँचती थीं। डॉक्टर नौकरों की तरह ड्यूटी पर आते थे और दुकानदारों की तरह जेब सँभालते हुए चले जाते थे।

इस बार डॉक्टर के जाते ही किसने से सवा रुपया लेकर बेटे के माथे से छुवाकर अपने ओढ़ने से बाँधते हुए भागो बुदबुदाई थी, 'मेरे लाल को ठीक कर माई रानी, हे गुगापीर जी माराज, हे मेरे दादा खेड़े... थारी सबकी सवा-सवा की

सीरनी बाँटूँगी।' इससे उसका काँपता विश्वास कुछ पक्का भी हुआ था, पर तभी किसने ने डूबती आवाज में कहा था, 'बेट्टा तो...' पर आगे वह कुछ भी नहीं कह पाया था और उसकी ठंडी हथेलियों को बेट्टे... बेट्टे... कहते हुए जोर-जोर से रगड़कर गर्माने लगा था। भागो ने भी उसके तलवों को रगड़ना शुरू कर दिया था। किसने ने डॉक्टर को आवाज दी थी पर इससे पहले कि डॉक्टर देहरी लाँघकर वहाँ पहुँच पाता, बेटा उनके हाथों से निकल चुका था।

देखते ही समझ तो डॉक्टर भी गया था—पर एक तो वह अब तक उनकी हैसियत से अधिक पूरे पैसे ले चुका था और दूसरे कहीं यह सब बाहर वाले हिस्से में बैठे ग्राहक ना जान लें, फिर से बार-बार स्टैथोस्कोप लगाकर देख रहा था और डूब चुकी नाड़ी को टटोल रहा था। वहाँ से हटकर वह उन दोनों को खींचकर पीछे एक कोने में ले गया था और धीरे से बोला था, 'सुनो, होनी बड़ी बलवान होती है—लेकिन मेरा मतलब है तुम्हें अब हिम्मत रखनी होगी। अगर तुम रोओ-पीटोगे और यहाँ या शहर में ज्यादा देर लगाओगे तो हो सकता है पुलिस तुम्हें यहीं रोक ले और हस्पताल में इसकी चीर-फाड़ करवाने लगे...' डॉक्टर के परोक्ष रूप से बेटे को मृत घोषित किए जाने पर भी पुलिस और चीर-फाड़ के भय से दोनों की सिसकियाँ हल्की-हल्की ही निकल रही थीं।

चीर-फाड़ के नाम से तो वे ज्यादा ही घबरा गए थे और एकदम उनके जेहन में गाँवों में हुए पोस्टमार्टमों की घटनाएँ घुस गई थीं। अभी कुछ दिन हुए उनसे दसेक घर छोड़कर एक घर में हुई मौत उनके सामने आ खड़ी हुई थी। वह बिल्कुल हट्टा-कट्टा था। शहर गया तो एक दुकान पर चाय पीते-पीते लुढ़क गया था। पुलिस केस बना था और उसका पोस्टमार्टम हुआ था। खून के धब्बे लगी सफेद चादर में जब उसे गाँव लाया गया तो सभी हैरान थे 'क्या यह लाश उसी की है?' पाँच-छह पंसेरी रह गई माटी पर उसका चेहरा ही उसकी पहचान था। हर पोस्टमार्टम के बाद गाँव-भर में खूब खुसर-पुसर भी होती रही है—डॉक्टर दिल निकाल लेते हैं, पेट काटकर कलेजा निकाल लेते हैं। आँखें भी निकाल लेते हैं—लाशें कई-कई दिन तक सड़ती रहती हैं—आदि।

भागो किसने की अपेक्षा अधिक काँपी थी। गाल पर थप्पड़ मारकर उँगलियों के निशानों को देख-देखकर ही चोट का अंदाजा लगाती रहने वाली माँ। पाँव में लगे काँटे को काढ़ते हुए सूई की हर टकोर को अपने कलेजे में महसूस करने वाली माँ और वह माँ जो पूरी रात अपने सोए बच्चे की गर्दन से

नीचे से अपनी सुन्न पड़ती बाँह इसलिए नहीं खींचती कि उसकी नींद न खराब हो जाए—अब कैसे सोचे कि उसके बेटे की खाल को उधेड़ दिया जाए और बेटे की जगह हड्डियों का पिंजर ममता की झोली में डाल दिया जाए। इसी के कारण वह रोते हुए बेटे की लाश से लिपटी, धीरे से यही कह पाई थी, 'हाय! लोगो, मैं तो लुट गई रे!' पर फिर भी किसने ने उसके मुँह पर हथेली रख दी थी और सहमते हुए कहा था, 'साँस भी न काढ़, नहीं तो अस्पताल के डॉक्टर इसका सारा कुछ काढ़ लेंगे, थाने वाले भी तंग करेंगे, चल भाग ले।' किसने के कहने से भागो जहाँ और सहमी थी, वहीं अब तक सहमे डॉक्टर का तनाव कुछ कम हुआ था, 'हाँ तुम खुद ही समझदार हो... देखो मैं तुम्हारे सामने ही सुबह से कोशिश कर रहा हूँ, लेकिन तुम लोग मरीज को तब तक घर से बाहर निकालते ही नहीं, जब तक वह बीतने को नहीं हो जाता...।'

...और किसने ने अपराध-बोध से आँखें झुका ली थीं, क्योंकि भागो पिछले तीन दिन से लगातार कह रही थी, 'बेटे को शहर दिखा लाओ, बेटे को शहर दिखा लाओ तकलीफ बढ़ रही है।' पर वह भी क्या करता? वह मालिक नहीं बल्कि नौकर है... लंबरदार का सिरी। आज भी उसने बड़े तड़के उठकर पहले लंबरदार के सारे काम निपटाए थे फिर कहीं उसने आने दिया था।... इसी बीच डॉक्टर ने कहा कि 'अब तुम इसे चादर में लपेटकर गोद में ले लो और सिर कंधे से लगाकर जितना जल्दी हो सके, शहर से निकलने की करो...' कहकर वहाँ से चला गया था और अपने-आपको बाहर बैठे मरीजों में व्यस्त करने की कोशिश करने लगा था। पर तभी मेज पर रखी जो भी शीशी हाथ आई, बिना पढ़े कि क्या है, भीतर जाकर किसने के हाथ में थमा दी थी, 'लो यह शीशी हाथ में ही रखना कोई भी शक नहीं करेगा। अब जल्दी करो।'

भागो फिर लाश के ऊपर गिर आई थी और घुटी-घुटी सिसकियाँ भरती हुई चूमने लगी थी। किसने के हाथ भी बेटे से लिपटने को बढ़े थे पर उसने अपने-आप पर काबू रखते हुए अपने बढ़े हुए काँपते हाथों से भागो को एक ओर हटाया था। उसे चादर में लपेटते हुए कंधे से लगाने के लिए उठाने लगा था। उठाते-उठाते भी उसे लगा था कि बेटा शायद अब भी जिंदा है और सोचा था कि सीधा बड़े हस्पताल में ले जाए पर जेब में इतने पैसे नहीं थे जिनके बल पर वह वहाँ से बेटे की अँगुली पकड़े बाहर निकलने की सोचता। उल्टे माटी खराब करने वाली बात थी, उसने लाचारी से उसे कंधे से लगा लिया था। उसकी टाँगें बाकी शरीर की बजाय ज्यादा काँप रही थीं जैसे कि सामर्थ्य से

अधिक बोझ उठा लिया हो। सुबह की तरह उसने बेटे का हाथ गर्दन के गिर्द लिपटाना चाहा था पर लकड़ी हो चुका हाथ सीधे का सीधा ही नीचे झूल गया था। किसने के भीतर से एक जोर की चीख उभरी थी जिसे दबाता हुआ वह चुपके से डॉक्टर की दी हुई शीशी पकड़े, सड़क पर आ गया था। पीछे–पीछे घूँघट में भागो आ रही थी।

वे दोनों सड़क से काफी हटकर चल रहे थे। किसना शीशी वाला दाहिना हाथ काफी आगे किए हुए था, ताकि शीशी सबको नजर आए। काफी कोशिश करने पर भी वह ज्यादा तेज नहीं चल पा रहा था। थोड़ा–सा चलने के बाद भागो ने कहा था, 'स्यात कहीं साँस अटके हों। एक बार बड़े अस्पताल में दिखा लाते... वहाँ तो बड़ी–बड़ी मशीनों से इलाज बनते हैं।' मन की बात होते हुए भी किसने ने उसे झिड़क दिया था, क्योंकि बेटे की मृत हो गई देह का ठंडा स्पर्श वह अपने भीतर तक महसूस कर रहा था और फिर वही पैसे की लाचारी, पर्वत से भारी। उस पर हावी थाने और चीर–फाड़ की दहशत। उसने और तेज–तेज चलने की कोशिश की थी। सिर पर से चादर न फिसले...भागो बार–बार उसे खींचकर उसके मुँह पर कर देती थी। भागो ने कुछ दूर चलकर फिर किसने से सटते हुए धीरे से कहा था—'सिपाई।' किसने ने देखा तो उसका शीशी वाला हाथ अपने–आप और आगे आ गया था। उसने भागो से कहा था कि 'उस ओर न देख नहीं तो वह ताड़ जाएगा। सीधी चलती रह...' लेकिन वह खुद नीचे–ही–नीचे उसी ओर देखता रहा था। एक बार तो उसे लगा भी कि वह उन्हीं को घूर रहा है—उसने और भी तेज–तेज चलने की कोशिश करते हुए शीशी काफी ऊँची उठा ली थी।

सिपाही पीछे रह गया तो किसने ने महसूस किया था—कितनी बार पहले भी वह इस शहर में आया था। कभी बैलगाड़ी हाँकते हुए लंबरदार की जिन्स बेचने, कभी उसके खाद के थैले लेने और कभी–कभार खुद अपने घर के लिए मिट्टी का तेल या कोई और छोटी–मोटी चीज लेने, पर इस शहर की भीड़ इतनी बेगानी–बेगानी और घूरती हुई कभी नहीं लगी जितनी आज लग रही है। गर्मियों में जिन्स बेचने आया वह ताँगा–स्टैंड के पास खड़ी रेहड़ी के बर्फ पर लगा ठंडा लाल–लाल तरबूज भी खाता रहा था। बाहर चुंगी के पास वाले खोखे पर बैठकर चाय भी पीता रहा था। पर आज—उसने टूटकर अपने–आपसे ही, पर भागो को सुनाते हुए कहा था, 'आज तो अड्डा भी दूर सरक गया।' भागो ने सिसकारी भरी थी—घुटी हुई, आँखों से ढलके आँसू घूँघट का पल्लू पी गया था।

दोपहर होने के बावजूद ठंड अधिक थी। बने–सँवरे और कपड़ों में लिपटे–सिमटे लोग इधर–से–उधर आ–जा रहे थे। मूँगफलियों की रेहड़ियों से खूब जोर–जोर की आवाजें आ रही थीं। फुटपाथ पर बैठे छोटे–मोटे दुकानदार एक–दूसरे से बढ़–चढ़कर आवाजें लगा रहे थे। उसके पास से कई युवक कानों से ट्रांजिस्टर लगाए कमेंट्री सुनते हुए गुजर गए थे। पर उन्हें एक–एक कदम चल पाना ही पहाड़ पर चढ़ने जैसा लग रहा था। किसना यह कहने ही वाला था कि मैं और नहीं चल सकता कि भागो ने गले में ही घरघराती आवाज में कहा था, 'मेरी टाँगों का तो सारा सत्त निचुड़ लिया, मेरे से नहीं चला जा रहा।' किसने ने 'हिम्मत से काम ले' कहा था और खुद भी अधिया–धोती से बाहर दिख रही काँपती नंगी टाँगों को मजबूती से टेकने और ज्यादा तेज–तेज पाँव उठाने की कोशिश करने लगा था।

किसना थोड़ा रुका था। और उसने एक कदम पीछे चल रही भागो के बराबर आने पर पूछा था, 'इसकी जेब में क्या पड़ा है ? मेरी छाती में चुभ रहा है' उसने चाहा था कि भागो उसकी जेब में हाथ डालकर देखे। असल में आते हुए अड्डे से डॉक्टर तक भागो उसे उठाकर लाई थी। इसीलिए किसने ने जानना चाहा था कि शायद उसे पता हो। पर जब शब्द गले से नहीं निकले तो भागो ने चलते–चलते ही पता नहीं किस तरह हाथ हिला दिया था। किसना चुभन को नजरअंदाज कर दर्द को पीता हुआ तेज और तेज चलने की हिम्मत जुटाता रहा था।

अड्डे तक पहुँचते–पहुँचते वे पूरी तरह चुक गए थे। किसना बैठना चाहता था और बैठकर एक बार बेटे का मुँह देखना चाहता था पर उसे लिये–लिये बैठना संभव नहीं था। अत: खड़ा ही रहा। फिर उसने चाहा था कि उसकी जेब में पड़ी कंकर या वैसी ही कोई और चीज निकाल दे। पर वह कुछ भी नहीं कर पा रहा था–ना वह दुबारा भागो से ही कह पा रहा था। काँपती टाँगों को स्थिर करता खड़ा रहा था, बस।

जब खड़ा भी नहीं रहा गया तो उसने धीरे से भागो से कहा था, 'धुर गाँव वाली बस में तो अभी ज्यादा टाइम है। दूसरी में ही चल पड़ते हैं।' वह जानता था कि दूसरी बसें गाँव से दो–ढाई कोस की दूरी से गुजरती हैं और वह दो–ढाई कोस का सफर पैदल ही तय करना पड़ेगा, लेकिन ऐसी स्थिति में प्रतीक्षा करनी भी आसान नहीं थी और फिर वे कुछ सोच भी नहीं पा रहे थे। किसने ने फिर कहा था, 'देख, शहर तो पार हो गया, अब बस में भी इसी तरह हिम्मत रखना, अगर किसी को भी शक हो गया कि...' आगे वह कुछ भी कह नहीं पा

रहा था, उसकी आवाज खरखरी होने लगी थी। भीतर शब्द तो थे पर निकल नहीं रहे थे, 'अगर अपने पास इतने पैसे होते जिससे कि कोई सवारी करके ढंगसर इसे घर ले चलते तो बेट्टा हाथों से यूँ ना...' वह फिर रुक गया था और नाक में भर आए पानी को सुड़कता हुआ दूसरी तरफ देखने लगा था।

किसना बस में चढ़ गया था। भीड़ अधिक थी क्योंकि पाँच-सात सवारियाँ ही उतरी थीं। पर चढ़ी थीं ज्यादा। किसना अपने-आपको सँभालता कंधे से लगे बेटे को भींचे एक सीट के साथ लगकर खड़ा हो गया था। साथ ही, चादर में ढँके बेटे के मुँह पर नजरें जमाए भागो खड़ी थी। गोद में बालक और हाथ में दवा की शीशी देखकर साथ की सीट पर बैठी दोनों सवारियाँ उन्हें बैठ जाने के लिए कहकर खड़ी हो गई थीं।

भागो खिड़की की ओर सीट पर पाँव समेटकर बैठ गई थी और बेटे का सिर और धड़ अपनी गोद में रख लिया था। किसने ने अपनी धोती नीचे खींचते हुए उसकी टाँगें अपने गोड़ों पर ले ली थीं। इस तरह वह उन्होंने सीधे का सीधा डाल लिया था और अच्छी तरह चादर से ढँक दिया था।

किसने ने आस-पास की सवारियों पर नजर डाली थी। उसने शुक्र मनाया था कि बस में कोई जान-पहचान का या गाँव का नहीं है। जब उसने देखा कि बराबर वाली सीट पर बैठा बूढ़ा उन्हीं की ओर देख रहा है तो किसने को लगा कि कहीं कुछ कमी है। वह कुछ घबरा गया था। दिल बड़ा करके उसने झुककर बूढ़े को सुनाते हुए ऊँची आवाज में पूछा था, 'बेटे रमेश, पानी लाऊँ?'

'...'

'पा पीएगा...'

'सेब लेगा...'

'....'

किसना खुद के कहे से खुद ही टूटा था क्योंकि इस नकली पूछने के साथ ही वह बेटे के चादर फेंकते हुए सिर हिलाकर सच्ची-मुच्ची की 'हाँ' करने की आशा कर बैठा था। फिर भी दिल में उठी टीस को दबाकर उसने फिर ऊपर झुकते हुए कहा था, 'थोड़ी-सी चा तो ले-ले बेटे!' बीच में ही भागो ने पल्लू से हाथ निकालकर 'न' में हिला दिया था जैसे कि उसने बेटे की न सुनी हो। मानो वह चाह रही हो, 'अभी इसे तंग न कर, आराम से लेटा रहने दे।' तभी बस चल पड़ी थी।

कंडक्टर ने टिकट काटने को कहा तो किसने ने दो टिकटों के पैसे उसे दे

दिए थे तिस पर कंडक्टर ने कहा था, 'आधी बच्चे की... कितने साल का है?' गोद में सीधे का सीधा पड़ा होने के कारण उसकी लंबाई से उम्र का सही-सही अंदाजा लगाया जा सकता था, पर आदत के अनुसार उसने पूछ लिया था। इस पर भागो को हिचकी आने को हुई थी और उसने खाँसी में उलझते हुए खिड़की से थूक दिया था। किसना बड़ी मुश्किल से अपने-आपको सामान्य रखते हुए कह पाया था, 'दस का... पाँचवीं जमात में पढ़ता...।' 'वह पढ़ता था' कहते-कहते सँभल गया था। उसने गिडगिड़ाते हुए कहा था, 'पर, जी, ये तो बीमार है। पैसे बचे नहीं...सारे-के-सारे इसकी दवाइयों पर खर्च हो गए जी' ...उसकी भीगी आँखें देखकर और उसकी आवाज से कंडक्टर को उसके दर्द का अहसास हुआ था और उसने उसके हाथ में दो टिकटें दी थीं। पर वह 'आ जाते हैं घर से, पूरे पैसे लाते नहीं।' जैसे शब्द बुदबुदाते हुए आगे बढ़ गया था।

बस लंबे रूट की थी और तेज गति से चल रही थी। किसने के अड्डे तक केवल तीन ही स्टाप थे, फिर भी उसे बस की कम गति कचोट रही थी। उसने आस-पास की सवारियों पर नजर दौड़ाई थी। लगभग सभी सवारियों को अपनी ही बातों में या अखबार-पत्रिका पढ़ने में व्यस्त और कुछ को गुप्प-चुप्प पाकर वह थोड़ा आश्वस्त हुआ था। लेकिन उसका ध्यान फिर उसकी दाहिनी ओर बैठे उस बूढ़े पर अटक गया था जिसकी नजरें उसे चादर के भीतर तक घुसती हुई लगी थीं। 'अगर यह बूढ़ा चादर हटाकर उसे छूकर देखने लगे और... और...' किसना आगे नहीं सोच पाया था क्योंकि इस समय वह बस से नीचे उतारे जाने की कल्पना से ही डर गया। उससे नजरें बचाता वह बाहर देखने लगा था, लेकिन खिड़की में भागो का सिर अड़ा हुआ था। उसका ध्यान अचानक एक जगह से भीगे उसके घूँघट पर गया, वह विचलित हो उठा था। कहीं यह बूढ़ा तो नहीं देख रहा? दुःख के साथ-साथ उसे गुस्सा भी आया था—कितना समझाया था—रोना नहीं, रोना नहीं। पर यही तो फर्क है औरत और मर्द में, ना ये खुशी पी सकती है ना दुःख और फिर थोड़ी-सी देर की तो बात है। किसने ने यह सोचा जरूर था पर खुद भी उसका मन रोने को, खूब चीखकर रोने को हो रहा था। उसने निढाल हुई भागो को धीरे से कोहनी मारकर चेताया था। पर तभी अब तक चुप बैठा वह बूढ़ा पूछ बैठा था, 'क्या हुआ?' किसने ने धीरे से लेकिन पूरे आत्मविश्वास के साथ 'निमोनिया' कहा था और फिर चारों ओर से पहले से ही ठीक लिपटी चादर को ठीक करने लगा था। उसने भागो से भी कहा था, 'ये शीशा अच्छी तरह बंद कर ले...ठंडी हवा

आ रही है। कभी इसे फिर जाड़ा चढ़ जाए...' भागो ने शीशा खींचने की कोशिश की थी पर वह पहले से ही सही था।

'...किसकी दवाई दी?'

'चौधरी की' कहकर उसने शीशी वाला हाथ कुछ और ऊपर उठा लिया था।

'ओफ्ओ... उस ठग पर क्यूँ गए... वो तो पानी के सूए लगा के और बीमार कर देगा...बड़े हस्पताल में दिखाते... लोग मानते ही नहीं उस पर जाए बिना, पर लोग भी क्या करें और कहाँ जाएँ...।' वह स्वयं ही कह रहा था, स्वयं ही नकार रहा था और सुन भी स्वयं ही रहा था, 'ये हस्पताल तो गौरमिंट ने पब्लिक के लिए नहीं, डॉक्टरों और नर्सों के लिए बनवाया है...।' स्वयं से ही तर्क-वितर्क करता हुआ फिर वह किसने से बोला था, 'भाई, तुम कहो निमोनिया है पर रिजाई भी नहीं लाए...। इस पतली-सी चादर में तो ये और बीमार हो जाएगा, घर जाते ही इसे सेंक देना... एक अंगारू सौ-दारू बराबर माने गए हैं। जितना सेंकोगे उतना ही आराम होगा...।' किसना और भागो कुछ भी ध्यान से नहीं सुन रहे थे। पर 'सेंक' शब्द से उनके जेहन में बेटे की धू-धू करती चिता घूम गई थी। भागो ने किसने की बाँह पूरी शक्ति से दबाई थी। किसने का भी दिल किया था कि वह दहाड़ मारकर रो पड़े, पर... पर वह तो खुलकर सिसक तक नहीं पा रहा था। उसने उकसकर ड्राइवर को देखा था—कितना तगड़ा है, फिर भी तेज नहीं चला रहा, वह झुँझलाया था। बूढ़ा बोले जा रहा था, 'लौंग, सौंठ, बनकसा तुलसी का काढ़ा... अंडे... एक ढक्कन देसी दारू...सेंक...छाती पर...पीठ पर... रूई से...गर्म ईंट से...खाट के नीचे से सेंक...।'

आस-पास की कुछ सवारियाँ भी बूढ़े के नुस्खे ध्यान से सुनने लगी थीं। और उनमें नीम हकीमों की बढ़ती संख्या और साथ ही बीमारियों की किस्मों में बढ़ोत्तरी पर चर्चा चल पड़ी थी। बातें घटती खुराक, फसलों में अधिक खाद की मात्रा, महँगे इलाज और चाय आदि से चलती-चलती देसी नाड़िए वैद्यों पर आ टिकी थीं। कंडक्टर भी इस बीच टिकिट-टिकिट करता हुआ दो चक्कर लगा चुका था।

किसने और भागो की सारी कल्पना अब धीरे-धीरे दहशत से निकलकर मोटी कलम से टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिखे बेटे के शरारती सफों में गहरी टीस बनकर उलझने लगी थी। बस्ता लटकाए स्कूल जाना, स्कूल से रेत-मिट्टी में सने हुए आना और आते ही रोटी माँगना, नूण से नहीं खानी, गुड़ के लिए जिद्द

करना, रूठना, दादी की लाठी या नसवार की डिब्बी उठाकर भागना, दादा का हुक्का भरना और फिर दादा की ही गुदड़ी में सोने की जिद्द करना।

अभी दो-एक महीने पहले तो पिटाई भी करनी पड़ी थी। कहने लगा कि मैं बाल नहीं कटवाता, स्कूल के और बच्चे भी बालों को तेल लगाकर माँग काढ़कर आते हैं। समझाया भी था कि इस तरह बालों को तेल-साबुन की जरूरत होती है। हम कहाँ से लाएँगे। पेट बाँधकर तुझे पढ़ा भी मुश्किल से रहे हैं। पर कहाँ माना था।

बस्ते की सभी कापियाँ बस में ही उनके आगे सफा-सफा करती खुलती जा रही थीं और वे भीतर-ही-भीतर रो रहे थे। उनके फेफड़ों के पास एक गुब्बारा-सा फूलता जा रहा था जिससे कि उनके फेफड़े और दिल भिंचकर कम काम करने लगे थे। 'आज तो गाम तो दूर यो अड्डा भी काले पानी सरक गया।' किसने ने धीरे से कहा था और ड्राइवर की सुस्ती पर फिर झुँझलाया था।

वे भीतर-ही-भीतर टूटते-बिखरते हुए चुप्प-चुप्प रोते रहे थे। अब उनकी कल्पना में अपने माँ-बाप का बिलखना भी शामिल हो गया था। किसना अपने बूढ़े बाप की गोद में पोते की लाश को कैसे डालेगा? ...कैसे मुँह दिखा पाएगा वह अपने माँ-बाप को? इन सब बातों से वह अपने-आपको अपराधी-सा महसूस करने लगा था अब ज्यों-ज्यों अड्डा नजदीक आने लगा था।

उनका अड्डा आ गया था। किसना उसे कंधे से लगाए हुए पहले से ही सँभलकर खड़ा हो गया था। भागो से जब खड़ा नहीं हुआ गया तो उसने किसने का सहारा लिया था। बस रुकी थी तो पहले किसना उतरा था। हवा के झोंके से लाश के मुँह की चादर उड़ी तो पीछे से देख रही भागो गिरते-गिरते बची थी। बस चली तो वह बूढ़ा खिड़की से सिर निकालकर फिर कह रहा था, 'सेंक देना...एक अंगारू...।'

अपने पर काबू रखते हुए किसने ने लाश को सड़क से हटाकर रख दिया था और सीधा खड़ा होते ही अब तक हाथ में पकड़ी वह शीशी उसने जोर से सड़क पर दे मारी थी। इतनी देर में भागो दोहत्थड़े मारती हुई लाश से लिपटकर बिलख पड़ी थी। किसना चाहता था कि किसी भी तरह चुपचाप घर तक पहुँचा जाए, पर अब तक का रुका उसका दर्द भागो के बिलखने से और भी तेज चीख बनकर निकला था।

(प्रकाशित : सशर्त 1987, वर्तमान साहित्य 1987)

●

बिल्ली

बड़े लड़के और लड़की को साइकिल पर बिठाकर हजूर सिंह जब स्कूल रवाना हो गया तो लखी सुबक पड़ी। सुबकते-सुबकते ही उसने गुस्से में भरकर निर्णय लिया कि आज या तो बिल्ली नहीं या वो नहीं। वह सारे काम छोड़कर दरवाजे पर टकटकी लगाकर बैठ गई। उसके हाथ में नूण-मिर्च रगड़ने वाला सोटा था। छोटा काका ठुनककर उसकी गोद में आ लेटा। वह उसे दूध पिलाने लगी।

'पीटता भी ऐसे है जैसे दूध मैं उसे गोद में लिटाकर पुचकार-पुचकारकर पिलाती होऊँ। घुस गई चुपके से और पी गई तो इसमें मेरा क्या कसूर? और फिर कौन-सा यहाँ कड़ाहे-के-कड़ाहे दूध उबलता है। गिलास भर दूध मुश्किल से आता है—उसमें से दो बार की चा और बचा हुआ काके का। अब काका भी भूखा और मैं भी पिटी। आ जा, तुझे मैं पिलाऊँगी रबड़ी आज। कहाँ मर गई आज मरजाणी!'

'रब्ब सोने की बिल्ली माँगेगा तो कहाँ से दूँगी? ना भी माँगे, पाप तो लगेगा ही और पाप से नरक मिलेगा।' लखी सुबकते हुए सोचने लगी, लेकिन रोज-रोज की इस खिच-खिच और मार खाने से तो रब्ब का नरक चंगा।'

जिस तरह अधिक दु:ख में आदमी को कम दु:खों वाले दिनों की याद से राहत और सुख मिलता है—उसी प्रकार लखी का मन भी मार खाने के कारण बार-बार भटक रहा था, यहाँ से तो पिंड में ही चंगा था। वहाँ बथुआ, कुंदरा, चौलाई तो खेतों से मिल जाता था। ना भी मिलता तो बड़े सरदारों के घर से लस्सी ले आती थी जिसके साथ लूणी रोटी भी परसादा हो जाती थी। पर यहाँ तो गुड़ होंदा तो पूड़े पोंदी ले आंदी तेल उधारा पर की कराँ आट्टा ही नहीं वाला हाल है।'

लखी का सुबकना धीरे-धीरे खीझ में बदलने लगा, 'रोज-रोज का झगड़ा। इतनी चीनी कैसे लग गई। धड़ी पक्का आट्टा इतनी जल्दी कैसे खत्म हो गया? तू इतना घी क्यों खर्च करती है?'

'हुँ! जैसे मैं रात को उठकर खाती होऊँ। इतना सड़ाँधला घी! रोटी भी

चुपड़ने को मन नहीं करता। सूखी खाती हूँ फिर भी झगड़ा।'

'वहाँ बड़े सरदारों के पशुओं का सानी-पानी ही तो करना पड़ता था। देर-सवेर सब कुछ खाने-पीने को मिल तो जाता था। पर नहीं—शहर में नौकरी करनी है। शहर में बच्चों को पढ़ाऊँगा—अफसर बनाऊँगा। पिंड में अब वैसे भी गरीब का गुजारा नहीं। ले अब मजे और मार रोज-रोज लखी को। बहाना बिल्ली का। यहाँ स्कूल में चपरासी ही तो लगा है—वह भी सरकारी में नहीं। हुँम—ला पटका यहाँ गंदे नाले की सड़ांध में। सड़ांध तो सड़ांध, कोई-सा बच्चा कभी लुढ़क गया तो...मकान भी लिया तो यहाँ नाले पे। जैसे शहर में और कहीं मकान ही नहीं है। आज कहाँ मर गई यह बिल्ली की बच्ची! अच्छा है आज ना ही आए तो, मेरे हाथों पाप तो नहीं होगा।' सोचते-सोचते ही उसने 'सीऽ' किया और गोद में लेटे काके को झिंझोड़ दिया। दूध ना आने के कारण उसने दाँत गड़ा दिए थे।

'मुझे चाहे नरक ही मिले पर तुझे आज सुरग में जरूर पहुँचाऊँगी नासपिट्टी, तुझे आज मैं नहीं बख्सने की काले मुँह वाली। शुरू-शुरू में तो गाली खाकर ही बात टल जाती थी पर अब तो एकदम मारने को दौड़ता है। जब-तब ताने मारता है—तेरे हाथों में बरकत नहीं है—बड़ा आया है बरकत वाला! जैसे कि हर महीने पीपे-के-पीपे, बोरे-के-बोरे लाकर धरता हो। एक चिट्ठी लिखवा दूँ भाई को तो छुट्टी लेकर अभी दौड़ा आएगा फौज से मुझे लेने। जैसे लखी को बिल्कुल बेवारसी समझ लिया है। पर क्या करूँ, भाई तो बहुत अच्छा है—भाभी भी हो किसी कार की! मंदी नीत वाली—दो धेले सस्ती। और फिर ये भी कौन-सा भेजता है।' लखी की आँखों में आँसू आने ही वाले थे उसे जज्ब करने पड़े।

पड़ोसन बाहर ही से बातें करने लगी थी, 'हे लखी भैण क्या कर रही हो? देख भैण देख—अब शहर में गरीब का गुजारा नी। देख भैण दो रपय्ये की चीनी! देख तो भैण आज भी एक टेम की चा बणेगी, बस।' लखी अनमनी ही रही। वह केवल हाँ-हूँ और पुचर-पुचर करती रही। वैसे भी इस पड़ोसन की आदत से वह वाकिफ हो चुकी है—अपनी-अपनी कहेगी—सुनेगी किसी की नहीं। 'सवेरे उसे चीनी के लिए कहूँगी तो खूब बोलेगा—कहेगा, कल ही तो लाई थी। बता भैण? अच्छा भैण मेरे तो बरतन-भांडे भी झूट्टे पड़े हैं। दूध भी ऐसे ही पड़ा है। बिल्ली पी गई तो कुड़ी भूखी रहेगी। सब कुछ यूँ ही बिखरा छोड़कर चीनी लेने चली गई थी पहले। खामखाँ साग-भाजी में चले जाते तो

चीनी रह जाती। अच्छा भैण।'

वह चली गई तो लखी को बिल्ली पर और भी खीझ आई, 'तो यह इधर सब जगह घूमती है। फिर तो आज तुझे मेरे हाथों रब्ब भी नहीं बचा सकता। मैं पिलाऊँगी तुझे आज बच्चों के हिस्से का दूध।' लेकिन सोचते-सोचते ही उसे लगा जैसे पड़ोसन के आने से उसका गुस्सा और दुःख कुछ कम हुए हैं। वह यहाँ अकेली नहीं है। बिल्कुल उसी जैसी और भी औरतें हैं। 'ठीक है तुझे मारूँगी नहीं तो टाँगें तेरी जरूर तोड़ दूँगी। फिर तो इधर तू क्या परेड करती आएगी।' वह सोच ही रही थी कि उसका सोटे वाला हाथ एकदम उठा और घर में घुस रही बिल्ली थोड़ा उछली। लेकिन वह अधिक उछल-कूद और बचाव नहीं कर सकी—वहीं दरवाजे में ही पसर गई। लखी ने काके को झटके से नीचे बिठाया और जाकर बिल्ली पर झुक गई। सोटे से उसे उथल-पुथल कर देखा। वह पछताने लगी—इतना जोर से सोटा क्यूँ मारा? उसने पानी भी उसके मुँह में डाला पर बिल्ली तो ठंडी हो चुकी थी। 'मोया ये पाप भी मेरे हाथों होना था।' ज्यों-ज्यों उसके मर जाने का विश्वास हो रहा था—उसका पछतावा भी बढ़ रहा था। आखिर उसने तसल्ली हो जाने के बाद एक लंबी साँस भरी, 'वाहे गुरु की मर्जी' और बिल्ली को घसीटकर नाले में धिका दिया।

लखी घर के झाड़ू-पोचे और बरतन-भांडों में मन लगाने की कोशिश करने लगी। पानी से अच्छी तरह धोकर सोटा काके के आगे डाल दिया। वह उसे लुढ़का-लुढ़काकर खेलने लगा। पर लखी का मन भारी होने लगा। उसे बार-बार यह अंदेशा भी हो रहा था 'कहीं यह वो बिल्ली ना जो मेरे काके का दूध पीती थी और मुझे पिटवाती थी?'

हजूर सिंह और दोनों बच्चे आ गए। हजूर सिंह ने आते ही पग्ग और कमीज उतार दी। लखी ने लड़के का पटका खोला और हजूर सिंह को पंखा झलने लगी। वह चाहती थी कि हजूर सिंह को खुश होकर बताए कि अब हमारा काका कभी भूखा नहीं रहेगा। उसके हिस्से का दूध पीने वाली राम नाम सत्त हो गई है। पर उसे मौका ही नहीं मिला। उसने ट्रांजिस्टर उठा लिया और उसे कान लगाकर स्टेशन घुमाने लगा। फिर जल्दी ही उसने पटकने की तरह ट्रांजिस्टर एक ओर रखा और उबल पड़ा, 'सारा दिन तुझे और कोई काम नहीं? कि पड़ी-पड़ी गाने ही सुनती रहती है? मैं पूछता हूँ अभी दस दिन भी नहीं हुए सैल डलवाए और आज ये सीं-सीं भी नहीं कर रहे?' वह गालियाँ बकने लगा। लखी ने एक दिन यही बात हजूर सिंह से पूछी थी—इस रेडियो में सैल

बहुत लगते हैं ? तो हजूर सिंह ने कहा था, 'ओछी पूँजी खसम खाए—देसी सैट है, सैल तो खाएगा ही।' पर अब लखी कुछ नहीं बोली। वह जानती है कि बात मार–पिटाई तक आ जाएगी। हजूर सिंह बोलता रहा और वह उठकर चुपचाप उस कोने में जा बैठी जहाँ रसोई का जुगाड़ था। वह स्टोव जलाने लगी तो बर्नर गर्म करने के लिए तेल अधिक निकल गया जिससे स्टोव की ढीबरी पर आग जले जा रही थी। हजूर सिंह इतने महँगे तेल को यूँ जलता देख और भी जल गया तथा और भी अधिक जोर–जोर से गालियाँ बकने लगा।

हजूर सिंह की गालियाँ लखी को कहीं गहरे तक चुभ रही थीं।

वह एक कोने की ओर मुँह किए चुपचाप बैठी पछता रही थी, 'उस बेचारी बेकसूर को तो खामखाँ मारा। असली बिल्ली तो जिंदा है और बिना किसी भय के पूरे घर में धमाचौकड़ी मचा रही है।'

(प्रकाशित : पल प्रतिपल)

•

पृथ्वी सिंह

चौधरी गगन सिंह अपनी नव-निर्मित कोठी के लॉन में बैठा हुक्का पी रहा था। हुक्के की गुड़गुड़ाहट के साथ राजनीति की ताल में ताल मिलाने वाले कई और चौधरी अभी यहाँ आकर जमने वाले हैं। अकेला होने के कारण उसने हारू की राम-राम का जवाब अच्छे ढंग से दिया और भीतर बुलाकर पूछा कि बहू को बच्चा होने वाला था—क्या रहा?

हारू ने हाथ बाँधे कुछ खुलकर कहा—हम गरीबों को और क्या होना था चौधरी साहब— लड़का या लड़की।

गगन सिंह को बात अखरी। हमारी औरतें भी तो लड़का या लड़की ही जनती हैं। वे कौन-सा हाथी-घोड़े पैदा करती हैं। उसे हारू की सहजता और भोलेपन पर हँसी छूटने को हुई। लेकिन अपने स्वाभाविक रौब को कायम रखते हुए उसने पूछा—और साफ-साफ बता ना— क्या हुआ?

जी लड़का हुआ। महीने से ऊपर का हो गया।

क्या नाम रखा?

जी, पृथ्वी सिंह!'

एक-दो आदमी साथ पड़े मोढ़ों पर आ बैठे थे। हारू चला गया था। लोग आते रहे, हुक्का चिलम-दर-चिलम चलता रहा। राजनीति की फिर-फिर वही बातें दोहराते रहे और जाते रहे। गगन सिंह उनकी बातों में रम नहीं पाया।

खाना खाकर टहलता हुआ वह सीधा गाँव के बीच वाली अपनी पुश्तैनी हवेली पहुँचा और उसकी अटारी पर चढ़ गया। वह बेचैनी के साथ इधर-उधर टहलने लगा। जब भी उसे अपने भीतर चौधरियों वाली ताकत भरनी होती है वह सीधा इस हवेली में आ जाता है जो अब पशुओं के बाँधने के काम आती है। जाले लगी कोठड़ियाँ भूसा भरने के काम आती हैं और कभी-कभार कच्ची दारू भी यहाँ निकालने में सुविधा रहती है। गगन सिंह को यह हवेली इसलिए भी अच्छी लगती है क्योंकि यह बाहर से रोबदार है, भीतर से नहीं। नई कोठी! वह भीतर से तो रोबदार है बाहर से नहीं। अब किस-किस को बताते फिरें कि देखो हमारी कोठी में लाखों रुपए का पत्थर लगा है। हजारों-हजारों के तो नल

ही हैं।

हवेली की अटारी से सारा गाँव दिखता है। ऐसा लगता था जैसे कि गाँव की बेतरतीब कोठड़ियाँ खड़ी–बैठी गाय–भैंसों की तरह जुगाली कर रही हों। बेशक कार्तिक की चाँदनी रात थी लेकिन गाँव का मटमैलापन चाँदनी को गड़प कर रहा था। थोड़ा हटकर बने चमारवाड़े के घर तो वहाँ से बिल्कुल बैलट–बक्सों जितने ही नजर आ रहे थे।

'और नाम धरा पृथ्वी सिंह!' टहलता–टहलता दाँत पीसने लगा गगन सिंह। क्या जमाना आ गया है। माँ मर गई अँधेरे में और बेटी का नाम रोशनी। अब ये हमारे नामों कैलाश सिंह, सागर सिंह, गंगा सिंह, जमना सिंह, गगन सिंह, त्रिभुवन सिंह के साथ आन खड़े हुए हैं। पर किया क्या जाए? उसे लगा जैसे यह 'किया क्या जाए?' वाले सवाल से छोटा बन जाता है। उसकी शक्ति को ललकार जाता है। उसकी चौधराहट को चुनौती दे जाता है। उसने इस सवाल के बाप लोकतंत्र को जी–भरकर कोसना शुरू कर दिया।

छोटे भाई त्रिभुवन सिंह का राजनीति में होना ऐसे समय में उसे बहुत अखरता है। वह अब लोकतंत्र के साथ–साथ राजनीति को भी गालियाँ देनी शुरू कर देता है। उसका गुस्सा बढ़ता जा रहा है। हारू यानी जो हार चुका है। जो कभी नहीं जीतेगा। बेटे का नाम पृथ्वी सिंह! पीढ़ियों से हमारे खेतों में और अब फार्मों पर दिहाड़ी–मजदूरी करते, सीरी–साँझी लगाते आ रहे हैं। हमारे घरों से माँगी लस्सी पीकर पलते आ रहे हैं और बेटे का नाम पृथ्वी सिंह। हारू यानी मिट्टी का हारा जो घर के बाहर आँगन के एक कोने में उँकड़ूँ बैठने जितनी जगह में पड़ा रहता है। हारा यानी जिसमें सदैव आग दबी रहती है, धुँआती रहती है। साथ–साथ राख होती रहती है–कभी भी चूल्हे की आग की तरह धधक नहीं पाती। बेटे का नाम पृथ्वी सिंह। दाँत भींचता हुआ वह अपने ही मुक्के तान–तान कर अपने दूसरे हाथ पर मारने लगा।

अगर भाई त्रिभुवन सिंह आज हारी हुई पार्टी का हारा हुआ विधायक की बजाय सत्ता–दल का होता तो भी वह देख लेता हारा और उसके परिवार को। लेकिन अब किया क्या जाए? कुछ ऐसा वैसा भी नहीं किया जा सकता। ये मीडिया वाले फिर कैमरे–माइक उठाए आ धमकेंगे गाँव में और बात का बतंगड़ बनाकर उछाल देंगे पूरे देश में। पिछले चुनाव से पहले यही तो गलती हुई थी।

साथ के गाँव में चौधरियों की लड़की ने हरिजन के लड़के के साथ शहर

में जाकर शादी कर ली थी। कुछ दिनों बाद उन्हें बहला-फुसलाकर गाँव ले आया गया था। रात-भर गाँव में हलचल रही थी और तारों की छाँव में उन दोनों को बिना संगी-साथियों और सहेलियों के विदा कर दिया गया था। लड़की को कोठड़ी में बंद कर तेल छिड़ककर जला दिया गया था और लड़के को पीट-पीटकर मार डाला गया था। सुबह लड़के की लाश गाँव से बाहर पीपल पर आत्महत्या करने की तरह लटकी हुई थी।

इस पूरे प्रकरण में चौधरी गगन सिंह की मुख्य भूमिका थी जो कि सभी गाँव वाले खुसर-पुसर में कहते रहे थे। उस गाँव के हरिजन भय के मारे शहर में भाग गए थे। आस-पास के कुछ और हरिजन परिवार भी शहर में जा बसे थे, लेकिन गगन सिंह ने अपने गाँव से एक भी हरिजन को नहीं जाने दिया था। मीडिया वाले मामले को उछालकर रह गए थे। कुछ नहीं हुआ। उलटा यहाँ के हरिजनों से बयान दिलवा दिया गया कि चौधरी तो देवता आदमी हैं। ये ऐसे काम में शामिल नहीं हो सकते।

गगन सिंह बच गया था लेकिन पार्टी में त्रिभुवन सिंह को काफी खींचा गया था। तभी गगन सिंह ने अपने काम करने के तरीकों में लोकतंत्र को शामिल कर लिया था। त्रिभुवन सिंह की करारी हार ने सिखा दिया था कि अब गोली-लाठी से नहीं बल्कि सभी काम नीति से करने होंगे। और फिर इन लोगों से वोट तो लेने ही हैं, अपने फार्मों पर काम भी तो करवाना है।

त्रिभुवन सिंह राजधानी गया हुआ है। वहाँ पार्टी की मंथन-बैठक चल रही है कि अगले चुनाव से पहले दलितों-पिछड़ों का विश्वास कैसे जीता जाए। उसके एक-दो दिन तक लौटने की कोई संभावना नहीं है। गगन सिंह को उतावलेपन के कारण उसकी प्रतीक्षा व्यर्थ लगी। 'पृथ्वी सिंह' नाम उसे त्याग करने वाला लग रहा था। वैसे भी वह त्रिभुवन सिंह की नहीं बल्कि त्रिभुवन सिंह उसकी सलाह के अनुसार कार्य करता है। अतः सुबह-सुबह वह हारू के घर पहुँच गया था। एक छोटी-सी दहलीज थी जहाँ वह स्टूल पर बैठ गया था जैसे पिछले चुनाव में कई बार आकर बैठा था। अपने-अपने कामों पर निकलने की तैयारी कर रहा पूरा चमारवाड़ा वहाँ इकट्ठा होने लगा। वे सब हैरान हो रहे थे कि चुनाव भी आस-पास नहीं हैं, फिर इतना बड़ा चौधरी और एम.एल.ए. साहब का भाई आज यहाँ कैसे?

"अरे हारू! वा भई, अपने पृथ्वी सिंह को नहीं दिखाएगा क्या?"

कुछ पल के लिए सन्नाटा छा गया। वहाँ क्षणेक खड़ा रहने के बाद हारू

भीतर चला गया। झटपट 'पृथ्वी सिंह' को पोतड़ों से निकालकर उसके मामा के घर से आए नए तौलिए में लपेटकर दूर से ही अपनी बाँहों में सीधा करके दिखाने की कोशिश की। फिर खुश होकर हारा अपने नन्हें पृथ्वी सिंह को सम्बोधित करता हुआ बोला—"हाथ जोड़कर नमस्ते कर चौधरी साहब को। बोल—दादा जी! पाँय लागूँ।"

"अरे ये संबंध तो फिर जोड़ लेना। ला मुझे दे इसे।"

एक पल को फिर सन्नाटा छाया रहा। हारू ने बिना अधिक हिचक दिखाए 'पृथ्वी सिंह' को गगन सिंह की गोद में डाल दिया। गगन सिंह ने लाड़-लड़ाने के लहजे में उसे प्यारा और सुंदर बताया तो हारू, हारू की पत्नी, परिवार वाले और पूरा चमारवाड़ा गद्‌गद् हो उठा। कुछ को तो 'पृथ्वी सिंह' के भाग से ईर्ष्या होने लगी।

गगन सिंह ने दस का नोट निकालकर "पृथ्वी सिंह की नन्हीं-नन्हीं, लाल-लाल मुट्ठियों के बीच ठूँसते हुए कहा— ले पकड़-पकड़ ले शाबाश! अपने बाप-दादा की तरह कामचोर नहीं बनना" कहते-कहते ठहाका लगा दिया गगन सिंह ने। इज्जत-बेइज्जती से ऊपर उठ चुके इन लोगों ने भी हँसी में उसका साथ दिया। और इसकी माँ कहाँ है भाई। उसे ही तो बधाई देने आए हैं हम।

घूँघट काढ़े ओट में से आगे आ गई हारू की पत्नी। जापे में मिले चिकने-चोपड़ से और घर में रहने के कारण शरीर भरने के साथ-साथ हाथ-पैर भी कुछ निखर गए थे। उसने चारों ओर खड़े अपने देवर-जेठों, परिवारवालों की ओर घूँघट में से देखा। सूंडू, कूड़ा, माड़ू, छितरा और उनकी पत्नियाँ—बांगों, मारियाँ, धापाँ, काँटो (गिलहरी) आदि सब उसे गगन सिंह को हाथ जोड़कर नमस्ते करने के इशारे कर रहे थे।

कच्ची को पी जाने वाली अपनी नजर पर मुश्किल से काबू पाया गगन सिंह ने और दस रुपए निकालकर उसकी ओर बढ़ाए। वह खुश हो गया, क्योंकि हारू की पत्नी ने 'नहीं जी रहने दो' वाली शैली में अपने दोनों हाथ छाती पर चिपका लिये थे। गगन सिंह ने झटपट अपने एक हाथ से 'पृथ्वी सिंह' को सँभालते हुए छाती पर चिपके उसके हाथों को खोलने के लिए अपना दूसरा हाथ आगे बढ़ाया तो हारू की पत्नी ने अपने हाथ पहले ही नीचे लटका लिये। हारू के कहने पर उसने नोट पकड़ लिया। गगन सिंह का उसे स्पर्श करने का मौका एकदम हाथ से निकल गया था। लेकिन अपनी खीझ पर काबू

पाता हुआ गगन सिंह बच्चे की ओर देखने लगा, ''क्या नाम बताया इसका? पृथ्वी सिंह! हारू अरे भाई ये भी तो कोई नाम हुआ? आदमियों वाला नाम है ये, मेरा मतलब बड़े आदमियों वाला नाम है ये। समझ रहा है ना। भाई ऐसे नाम तो बड़े आदमियों के, मेरा मतलब है बड़ी उम्र के आदमियों के होते हैं।'' गगन सिंह ने अपना लहजा लोकतांत्रिक बनाए रखते हुए कहना जारी रखा, अब देखो ना पिल्ले जैसा यह बच्चा और नाम–'पृथ्वी सिंह। धत्त तेरे की, बड़ा होकर ये खुद सोच लेगा कि ये 'पृथ्वी सिंह' है या कुछ और? देख हारू! मुझे तो यह पिल्ले जैसा प्यारा लग रहा है। इसलिए इसका नाम है– 'पिलवा'। आ! हा! कितना प्यारा नाम है–पिलवा। क्यों बेटा! बोल तेरे बापू को कि ऐसे होते हैं नाम छोटों के। आहा देखो कितना खुश है इस नाम से। खुश है ना बेटा।

हारू की माँ यानी पृथ्वी सिंह की दादी एक ओर खाट पर बैठी प्रसन्न हो रही थी। प्रसन्न मुद्रा में ही उसने बताया कि हारू का नाम भी इसके बाप ने कुछ ऐसा ही रखा था। मैं खेत में काम कर रही थी। यह छोटा-सा था। पेड़ के नीचे मिट्टी खाता हुआ रो रहा था। इसका पेट बहुत बड़ा था। बड़ा चौधरी (गगन सिंह के बड़े भाई) उधर से निकला तो इसे रोते हुए देखा। इसका हारे जैसा पेट देखकर बोला– तेरा ये हारू रोता बहुत है। बस तब से सब इसे हारू कहने लगे। यह बताकर हारू की माँ तालियाँ मारकर हँसने लगी।

गगन सिंह को गर्व हुआ अपने स्वर्गीय भाई पर। उसने फिर दोहराया– ''ठीक है ना पिलवा। खुश है ना पिलवा?'' यह सब वह बच्चे पर झुककर दोहराए जा रहा था ताकि सब को सुन जाए। तभी नन्हें पृथ्वी सिंह ने ऐसी प्रतिक्रिया दिखाई कि गगन सिंह झेंप गया। मूत की धार सीधी गगन सिंह के मुँह पर मारी थी। चौधरी गगन सिंह ने राजनीति और लोकतंत्र को ढेर सारी गालियाँ दी और वहाँ से धोती के पल्ले से मुँह रगड़ता हुआ चल दिया।

उसका जी वितृष्णा से भरने लगा। लेकिन तभी उसकी खुशी का ठिकाना न रहा जब पीछे से सुनाई दिया–पिलवा को मुझे दे। पिलवा को मुझे दे। पिलवा रे! ओ पिलवा! जब बच्चे और औरतें खुश होकर पृथ्वी सिंह को 'पिलवा-पिलवा' पुकार रहे थे तो आदमियों में खुसर-पुसर शुरू हो गई थी कि चौधरी आज यहाँ किस मकसद से आया था।

(अप्रकाशित)

•

निक्कल

स्टैनो चंदर कुछ देर पहले ही डिक्टेशन लिये मैटर पर साइन करवाकर बाहर जा चुका तो साथ वाले दफ्तर के सुपरिंटेंडेंट मि. गुप्ता ने हैरानगी से पूछा,'क्या बात है शर्मा जी, लगता है आज तो मूड में हो।'

'वो कैसे?' शर्मा ने टाई से कसे कालर में उँगली फिराते हुए पूछा और कुर्सी से पीठ लगा ली। उनके चेहरे पर कालापन कुछ कम हुआ था। इस समय यदि वह सूट ना पहने होता और इस दफ्तर में कुर्सी-नशीन ना होता तो 'शर्मा जी' की बजाय इनके लिए 'पंडित जी' का संबोधन ज्यादा फबता। एकदम लोहे के शनिदेव सरीखा-अनगढ़ व्यक्तित्व, काले-खुरदरे हाथ और बिवाई फटे पाँव-बिल्कुल रीछ जैसे। रोटी खाते हुए दिख जाएँ तो खाई ना जाए। पाँव बेडौल होने के कारण ही वे कोई भी जूता नहीं पहन सकते। बारह के बारह महीने चप्पल पहनते हैं और ठोड़ी के नीचे लटकती मोटी चमड़ी जो कभी तो उनके व्यक्तित्व में बढ़ावा करती और कभी-कभी बड़ी भद्दी लगती। वे इंटीमेट प्रयोग करते हैं और इंटीमेट की तीखी गंध की अनुपस्थिति में उनके इस बदन से मिलती-जुलती बू की कल्पना कोई भी कर सकता है।

'बिना 'रि-टाइप' के लिए कहे ही साइन कर दिए?' कहकर गुप्ता ने हँसने की तरह दाँत दिखाए। जवाब में शर्मा ने भी अपने दाँत दिखा दिए।

गुप्ता यानी पी.के. गुप्ता... वास्तव में ही गुप्ता हैं। एकदम पतले-नाजुक से। आगे माथे पर से उड़े बाल और बचे हुए थोड़े से बालों को पीछे को चिपकाए हुए। ये सुपरिंटेंडेंट होने के बावजूद प्रतिदिन अखबार का 'आज के भाव' वाला पन्ना जरूर देखते हैं और कई बार अपने सहकर्मियों से भी 'मंदी' या 'तेजी' की बातें करते हैं। शर्मा और गुप्ता में अच्छी पटती है।

दरअसल, शर्मा की, मीन-मेख निकालने की आदत से दफ्तर के सभी लोग परिचित हैं। 'इज' का 'इट' और 'इट' का 'इज' भी अगर पैन से करना पड़े तो उसे भी 'रि-टाइप' के लिए कहते और इस 'रि-टाइप' के बाद भी अगर कुछ 'एडिशंज' याद आ गई तो फिर 'रि-टाइप' का आर्डर दे देते हैं।

'हाँ, गुप्ता जी, दरअसल काफी समय के बाद एक अच्छा टेलैंटिड ब्वॉय

मिला है... बहुत नॉलिज है इस लड़के की...' उसने मेज पर पड़े पैकेट से एक सिगरेट निकालकर होंठों में दबाकर पैकेट गुप्ता की ओर बढ़ा दिया और गुप्ता के सिगरेट के लिए कहे गए थैंक्यू को अनसुना कर कहना जारी रखा, 'इस बार मैंने अड़कर 'जनरल कैटेगरी' से आदमी लिया है... इससे पहले वाले अनफोर्चूनेटली सब-के-सब एस.सी. ही पल्ले पड़ते रहे'... – कहने को शर्मा कह गए पर शीघ्र ही बात को सँवारते हुए कहने लगे, एससी-वैससी वाली भी कोई बात नहीं–यू नो माई हैबिट–आई नैवर बिलीव इन दिस ब्लडी कास्टीज्म...बट वे सब थे ही– एक से बढ़कर एक महारद्दी... आल होपलैस... बट आय'म रीयली प्राऊड ऑफ दिस ब्वॉय... यह सब कहते हुए उनके चेहरे पर बेटे की प्रशंसा करते बाप की-सी खुशी थी। उनके बोलने से होंठों में दबी सिगरेट होंठों के मुकाबले ज्यादा हिल रही थी। उन्होंने सिगरेट जलाई और लाइटर गुप्ता की ओर बढ़ा दिया।

गुप्ता ने भी अपनी सिगरेट सुलगा ली और लाइटर को उलट-पलटकर देखते हुए कहा, 'पर है तो यह भी एससी ही।'

'ह्वाट?' शर्मा ने झटके से सिगरेट होंठों पर से उँगलियों में ले लिया।

'हाँ', गुप्ता ने उसकी आँखों में आँखें गड़ाकर अतिरिक्त विश्वास जाहिर किया।

'लेकिन... मेरा मतलब है ये तो बड़ा स्मार्ट है और फिर इंटैलीजेंट भी है...नामुमकिन-सा लगता है और फिर...' शर्मा को गुप्ता के कहे का विश्वास ही नहीं आ रहा था।

'क्यों? ये लोग स्मार्ट नहीं हो सकते क्या? आजकल तो स्मार्ट ही यही लोग ज्यादा होते हैं... शर्मा जी।' लेकिन शर्मा को विश्वास ही नहीं आ पा रहा था। वह फिर अविश्वास करते हुए बोले, 'आप समझ ही नहीं रहे...मैंने खुद वहाँ ब्रांच में जाकर लिस्ट में से देख-छाँटकर जनरल कैटेगरी से लिया है...।' शर्मा कह तो गए थे पर गुप्ता से इतनी भी घनिष्ठता नहीं थी कि अपने को एक्सपोज करके मेज पर रख देते। लेकिन उन्हें उसके इस किए का विरोध होता नजर नहीं आ रहा था, क्योंकि गुप्ता ने फिर पहल की, 'वो सब मैं मान लेता हूँ... मैं ही कब कह रहा हूँ कि 'रिजर्व' कोटे से आया है ये ... लेकिन जो मैं कह रहा हूँ वह शत-प्रतिशत सही है। मेरे सैक्शन में इसके पड़ोस का एक क्लर्क है। यूँ ही रिजर्वेशन की बात चल निकली तो बातों-बातों में इसका जिक्र आ गया। और उस जिक्र में इनडायरेक्टली सब इसकी परहेज ही कर रहे थे।

इसमें कोई शक नहीं कि लड़का इंटैलीजेंट है—एक्स्ट्रा आर्डीनरी इंटैलीजेंट... बट आई मीन चाम की कैटेगरी तो...' गुप्ता की बात बीच में ही शर्मा ने काट दी, क्योंकि इसी तरह के एक वाक्य की प्रतीक्षा वह कर रहा था। 'दैट आई अंडरस्टैंड, गुप्ता जी' और कहकर मेज पर उँगलियों की ताल लगाने लगा जैसे कि किसी राष्ट्रीय समस्या पर नोटिंग-ड्राफ्टिंग करने का काम जिम्मे लग गया हो।

गुप्ता लाइटर को उलट-पलटकर देखता रहा। वह उस पर से एक जगह पपड़ी बनकर उतरती निक्कल की पतली-सी पर्त को नाखून से खुर्च रहा था और यह सब अनजाने में ही हो रहा था— उसको तो यह भी आभास नहीं था कि उसके हाथ में लाइटर नाम की कोई चीज भी है। आदत के अनुसार उसे कुछ-ना-कुछ तो करना ही था। या तो आलपिन दाँतों में घुमानी थी, या पेपरवेट को मेज पर खटर-खटर करते हुए चुभाते रहना था, या फिर पैन-होल्डर उठाकर मेज की कोर पर टक-टक बजाना था। अब उसके हाथ में शर्मा का यह लाइटर था और वह अवचेतन से ही उसकी निक्कल खुर्च रहा था जिससे कि चमचम करती निक्कल की नन्हीं-नन्हीं पपड़ियाँ नीचे गिर रही थीं और नीचे का जंग लगा लोहा दिखने लगा था।

दोनों ही सिगरेट का धुआँ छोड़ रहे थे और वह केबिननुमा छोटा-सा दफ्तर धुएँ से भर गया था।

शर्मा ने अपने भीतर की बेचैनी फिर निकाली, 'ये तो खूब खबर सुनाई गुप्ता जी आपने... मैंने तो इसे 'जेन्युईन' आदमी समझकर ज्यादा ही इम्पार्टेंस दे दी... और ये तो पूरे सैक्शन पर भी हावी हो गया है। खैर कोई बात नहीं। अभी ज्यादा ऊपर नहीं चढ़ा है। इसी वक्त झटका देना ठीक रहेगा...' यह सब शर्मा कहने को कह तो गया है पर उसने फिर सोचा कि जो उसने अभी-अभी कहा है क्या सच में ही वह कह गया है या बुड़बुड़ाया है या केवल सोचा भर है। लेकिन यह ध्यान आते ही कि पहल गुप्ता ही कर रहा है उसने इसे हल्का लिया और चपरासी को बुलाकर चंदर को अभी-अभी साइन किए कागज को लेकर आने को कहा। वह अब तेजी से चंदर के साथ भविष्य में किए जाने वाले व्यवहार की रूपरेखा तैयार करने में व्यस्त हो गया, बल्कि कहना चाहिए कि अस्त-व्यस्त हो गया, क्योंकि साथ ही भूत में हुई गलती पर भी वह पछता रहा था और अपने-आपको वह गुप्ता के आगे शर्मिंदा-सा महसूस कर रहा था।

तभी गुप्ता को आभास हुआ कि निक्कल की जिस महीन-सी पपड़ी को वह नाखून से चिटक-चिटक कर रहा था—पूरी उतर गई है। उसने नजर से शर्मा को देखा और फिर धीरे से वह लाइटर सिगरेट के पैकेट पर रख दिया। पर नजरें पुराना दिखने लगे लाइटर पर ही थीं। उसने सिगरेट एश-ट्रे में बुझा दी और फिर उस एश-ट्रे के साथ ही अपनी उँगलियाँ व्यस्त कर लीं। यह सब करते हुए गुप्ता को शर्मा का और उँगलियाँ मेज पर बजाते हुए शर्मा को गुप्ता का चेहरा टेबल-ग्लास पर दिख रहा था—धुँधला—'सिल्लेट'-सा। लेकिन दोनों को अपना चेहरा नहीं दिख रहा था क्योंकि कोण ही ऐसा बैठता था।

गुप्ता शर्मा की अग्रिम कार्रवाई की व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहा था, लेकिन प्रत्यक्षतः अपने-आपको इस पूरे प्रसंग से असंबद्ध/तटस्थ दिखाने के लिए कहा था, 'चीनी दो रुपए उछल गई... एकदम।'

'क्या बात, स्टॉक की हुई है क्या?' शर्मा ने ठहाका लगाकर पूछा। मेज पर बजती उँगलियाँ क्षण को रुकीं और फिर कटक-कटक करने लगी थीं।

'नहीं, स्टॉक तो क्या करनी थी... बड़े लड़के की दुकान है ना किरयाने की, इसीलिए अखबार देख लेता हूँ...' तभी चंदर ने आकर 'यस सर' कहते हुए शालीनता से कागज मेज पर रख दिया। उसके हाथ में नोटबुक और पेंसिल थी। शर्मा ने कागज उठाकर रुखाई से उसे बाहर जाने को कहा। और उसके जाते ही गुप्ता को वह कागज देते हुए बोले, 'ये देखो गुप्ता जी...बेशक एक-एक वर्ड ध्यान से पढ़ लो...गलती भी तो नहीं करता हरामजादा...नॉट ईवन ए सिंगल मिस्टेक। ना टाइप की ना स्पैलिंग की... और सैटिंग देखो लगता है जैसे प्रिंटेड हो...नहीं? और एक अपने ये शहजादे हैं कौशिक और अग्रवाल—दस-दस साल हो गए हैं कुर्सी तोड़ते कुछ भी आता हो तो...इंट्रैस्ट ही नहीं लेते काम में, सारा दिन चाय, फिल्मों पर डिस्कशन और कमेंट्री ही खत्म नहीं होती इनकी...' शर्मा को ध्यान आया कि वह फिर बह रहा है। उसे कौशिक और अग्रवाल के लिए 'अपना' शब्द खुद ही कुछ अखरा था। इसलिए वह चुप हो गया और गुप्ता के चेहरे का रिएक्शन देखने लगा।

गुप्ता ने उचटती-सी नजर कागज पर डाली और शर्मा की ओर बढ़ाते हुए 'हुम' की और कहा, 'ये तो ठीक है...' उसने 'ये तो ठीक है' ऐसे कहा जैसे इस कागज के ठीक होने के साथ-साथ और भी बहुत कुछ ठीक होना जरूरी है जो कि ठीक नहीं है। वह फिर सिगरेट के पैकेट पर रखे लाइटर को देखते हुए एश-ट्रे घुमाता रहा और अपने को इस सारे प्रसंग से असंबद्ध कर बोला,

‘छोड़ो शर्मा जी, मैं तो भूल ही गया... मैं पूछने आया था कि रात को कुमार साहब के घर दावत पर जाने का क्या प्रोग्राम है?’

कुमार यानी सुरेंद्र कुमार इनका इमीजियेट बॉस भी हरिजन है पर उसके बारे में कुछ भी कहने से दोनों कतरा रहे हैं। क्योंकि यह शर्मा काम ना आने की वजह से उसके पास जाने से भी कतराता है लेकिन शर्मा को ये ईर्ष्या है कि गुप्ता ने उसे न जाने कैसे पटा रखा है। और गुप्ता को शर्मा की इस कमजोरी का पता है इसलिए वह भी कुछ नहीं कहता—वह भी डरता है कहीं उसका कुछ भी कहा हुआ यह शर्मा अपने नंबर बनाने के लिए बॉस तक न पहुँचा दे। बहरहाल, उस समय दोनों ही उस प्रसंग को टालने में सफल हो गए हैं, क्योंकि शर्मा ने तभी चंदर को फिर बुला लिया, ‘माई डियर चन्दरपाल, मैं सोच रहा था कि तुम्हें खुलकर काम करने का और ऑफिस-रूटिन ग्रैस्प करने का पूरा-पूरा मौका दूँ... बट यू वुड हैव आलसो रियलाईज्ड फ्राम माई ऐट्टीच्यूड... बट... मुझे अफसोस है कि तुम ‘वही के वही’ रहे।’ चंदर की नजरों में सवाल-पर-सवाल आ रहे थे। ‘कौन-सी गलती हुई होगी’ पर वह चुप खड़ा था। वह कुछ भी समझ नहीं पा रहा था। उम्र ही कितनी थी जो भाषा की बुनावट और बोलने के ढंग से ही अर्थ ढूँढ़ लेता। अभी तो मूँछों की जगह भी रोएँ थे। स्कूल से इंटर और सीधा स्टेनोग्राफर का कोर्स कर यहाँ चयन हो गया था। वह मेज पर कागज को देखता हुआ कोई गलती ढूँढ़ने की कोशिश कर ही रहा था कि शर्मा ने वह कागज उठाकर कुछ ऊँची आवाज में कहा, ‘अब यही देखो.... ध्यान से देखो...’ और कागज फिर मेज पर रख दिया। चंदर को उसमें कोई भी गलती नजर नहीं आ रही थी। वह इस अप्रत्याशित वातावरण में कुछ ज्यादा ही झेंप गया। और कुछ भी समझ नहीं पा रहा था कि क्या कहे... क्या पूछे। एश-ट्रे घुमा रहे गुप्ता की मौजूदगी उसे और भी कचोट रही थी। वह भीतर से डूबने लगा। उसने हिम्मत कर कुछ कहना चाहा पर ‘सर’ ही बड़ी मुश्किल से कह पाया था कि शर्मा बीच में ही बोला, ‘तुम्हें तो ये ड्राफ्ट बिल्कुल ओ.के. लगता होगा... भई लगे क्यों ना... दिमाग जो नहीं है और दिमाग कोई उधार थोड़े ही मिलता है... वह तो जन्मजात होता है...’ गुप्ता जैसे कुछ सुन ही न रहा हो—उसने पैकेट से एक सिगरेट निकालकर सुलगा ली और आदतन लाइटर फिर उसके हाथ में ही खेलने लगा। ‘देखो, इसकी सैटिंग देखो... गौर से देखो... बायीं ओर अगर थोड़ा-सा मार्जन और होता और इधर ऊपर भी तुमने घुच्च-मुच्च कर रखा है। और इधर, राइट हैंड को तो आधे से ज्यादा वर्ड हाइफन

लगाकर आधे टाइप किए हुए हैं, टाइपिस्ट को यह पहले ही पता लग जाता है कि यह वर्ड पूरा इधर नहीं आएगा—सो अगली लाइन में ले जाओ... देखो भई क्लीयर बात है हमें तो काम प्यारा है चाम नहीं...' अब शर्मा ने आवाज काफी ऊँची कर ली ताकि बाहर बैठे सैक्शन के अन्य लोग भी सुन लें 'अपने-आपको सुधारो और सुनो अगर कुछ नहीं आता तो टेक हैल्प फ्राम यूवर कुलीग्स। एक्सपीरियन्स्ड परसन्स, लाइक मिस्टर कौशिक एंड अग्रवाल एंड अदर पीपल आलसो आर देयर विद यू...जाओ इसे 'रि-टाइप' करके लाओ...पेपर की इम्पारटेंस समझा करो... पता है ये नोटिफिकेशन कैबिनेट तक मूव कर सकता है...' चंदर कागज उठाकर अपनी चाल सामान्य रखने के लिए काँपती टाँगों को अकड़ाने की कोशिश करता हुआ बाहर निकल गया।

उसके जाते ही शर्मा ने सिगरेट निकालकर बायीं आँख दबाते हुए मुस्कराकर गुप्ता की ओर हाथ बढ़ाया। समझना मुश्किल था... मिलाने के लिए या लाइटर के लिए। जवाब में गुप्ता ने भी अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। समझना मुश्किल था—मिलाने के लिए या लाइटर देने के लिए।

बहरहाल, लाइटर गुप्ता के हाथ से शर्मा की हथेली पर जा चुका था। और शर्मा का ध्यान जब लाइटर के जंग लगे लोहे पर गया तो उनके मुँह से निकला था, 'अरे!'

(प्रकाशित : मधुमती)

•

जड़मूल

सुबह से देश-भर में दो ही समाचार सुर्खियों में थे। चौबीसों घंटे समाचार बना-बनाकर प्रसारित करते रहने वाले टी.वी. चैनलों को ये दोनों समाचार गर्म रखे हुए थे। एक घने कोहरे और गिरते तापमान का तथा दूसरा कला नगर का। कला नगर की घटना ने तो पूरे देश में सनसनी फैला दी थी। घटना स्थल से सीधे प्रसारण के लिए कई टी.वी. चैनल अपने-अपने ताम-झाम के साथ कला नगर पहुँचने लगे थे।

इधर कला नगर वालों को घटना समझ में नहीं आ रही थी। घटना के प्रति ये कोई रुचि या जिज्ञासा भी नहीं दिखा रहे थे। वे तो हर उस चीज को तमाशे की तरह देख रहे थे जो उनके लिए या तो अजूबा थी या मजे लेने का कारण। कैमरे-माइक उठाए घूमते टी.वी. वाले। लंबी-लंबी, एक-से-एक सुंदर देशी एवं विदेशी कारें। बुढ़ाती आयु से लापरवाह युवा-परिधानों से ढके, विदेशी और उनके साथ बहुत अधिक चिपककर चलती, उठती-बैठती स्कूली छात्राओं सी दिखने का प्रयास करती स्कर्ट पहने उनकी बीवियाँ। वे सब अत्यधिक व्यस्त थे। कुछ-ना-कुछ खाते रहने में, पीते रहने में, फोटुएँ खींचने में, मोबाइलों से बातें करने में। शहर का एक हिस्सा मुँह बाए अपनी-अपनी समझ के अनुसार टिप्पणियाँ करता घटना स्थल पर खड़ा था। और शहर का एक हिस्सा घटना स्थल के सीधे प्रसारण का आनंद उठाता अपने-अपने टी.वी. सेटों से चिपका घरों में बैठा-लेटा था।

और शहर का एक बहुत बड़ा हिस्सा इस सबसे बेखबर रोजी-रोटी की जद्दोजहद में पिला हुआ था। जो कहीं नहीं था यह घटना स्थल पर घूमते कैमरों के आगे या टी.वी. सेटों के निष्क्रिय दर्शकों के रूप में।

उनका शहर भी सुंदर है यह उन्हें टी.वी. पर देखकर ही महसूस होता है।

'आपका शहर भी सुंदर है क्या आपको इस बात पर गर्व है?' जैसे बने-बनाए सवाल करते घूम रहे हैं टी.वी. वाले।

एक-दूसरे के आगे अड़ते जवाब दे रहे हैं युवा लड़के-लड़कियाँ, "हमें गर्व है। हाँ सुंदर है। सारे जहाँ से अच्छा है हमारा शहर।"

पुराने कंबल की बुक्कल में से थोड़ा-सा मुँह निकालकर जवाब दिया है एक काम से लौटते बूढ़े ने 'गर्व और सुंदर का तो मालूम नहीं। यह शहर मेरे परिवार का पेट पालता है। अच्छा है, हाँ अच्छा लगता है अच्छा है।' उसके मुँह से ऐसे भाप निकल रही थी जैसे छँटनी के बाद बचे छोटे-छोटे उबले आलुओं की तरकारी से निकलती है।

लेकिन इसके साथ ही जवाब देता बूढ़ा सेकेंड के भी आधे भाग से पहले टी.वी. स्क्रीन के एक कोने में चला गया और उद्घोषक सामने आ गया है। "अब हम अपने दर्शकों को दिखा रहे हैं वह मूल्यवान महत्त्वपूर्ण कलाकृति जिसने पूरे यूरोप का ध्यान अपनी ओर खींचा है। संभावना है कि इस कलाकृति की, इस जड़ की, इस मूल की, जिसे एक दुर्लभ कलाकृति माना जा रहा है, लाखों-करोड़ों डॉलर तक बोली पहुँच सकती है।"

इसके साथ ही उद्घोषक गायब हो जाता है और टी.वी. स्क्रीन पर बहुत ही सुंदर शीशे की चमचमाती मेज पर एक लकड़ी उभर रही है, जिसे चारों ओर से दिखाया जा रहा है। यह किसी पेड़ की जड़ है। जड़ उल्टी रखी है। यानी जड़ें आकाश की ओर हैं।

उद्घोषक फिर स्क्रीन पर आ गया। "कला नगर का पल-पल का समाचार हम आप तक पहुँचाते रहेंगे। दर्शकों को हम यह भी बता दें कि इस संबंध में विस्तार से बातचीत के लिए हम विशिष्ट कलाकारों, प्रबुद्ध व्यक्तियों से संपर्क बनाने का प्रयास कर रहे हैं। वे हमारे स्टूडियो में पधारने वाले हैं। हमारे साथ रहिए। जाइएगा नहीं। फिलहाल लेते हैं एक छोटा-सा ब्रेक।"

ऐसा नहीं है कि शहर वालों ने टी.वी. वालों को पहली बार देखा हो। यह शहर कई बार मुख्य समाचारों में रहने का सौभाग्य प्राप्त कर चुका है। एक बार यह भयंकर बाढ़ की चपेट में आया था। घरों की छतें ही बची थीं जहाँ लोग भूखे-प्यासे अपने बच्चों के साथ कई दिनों तक बैठे रहे थे। टी.वी वालों के लिए यह मात्र एक समाचार था और वे तब नावों में लदे निरपेक्ष भाव से परिक्रमा करते रहे थे। पानी जब स्वत: ही उतरा तो लोग भी छतों से उतरे। काफी घर गिर गए थे। डंगर-ढोर या तो पानी में बह गए थे या मर गए थे। दुकानों का सामान सड़-गल गया था। उद्योगों को शुरू करने के लिए मशीनों की ओवरहालिंग की आवश्यकता थी। अखबार और टी.वी. पर शहर की जनता के पुनर्वास की व्यवस्था में ढिलाई को लेकर प्रशासन के खिलाफ समाचार आने लगे थे। प्रशासन 'सवारी अपने सामान की खुद जिम्मेदार है' की

मुद्रा अपनाए हुए था।

इस बाढ़ की तबाही के प्रति सरकार की उदासीनता के खिलाफ लगता था जैसे पूरा शहर सड़कों पर आने ही वाला हो, ऐसे में एक दिन पूरे देश में चमत्कार हुआ। मंदिरों में गणेश की प्रस्तर प्रतिमाओं ने अचानक दूध पीना शुरू कर दिया था। सबसे अधिक यानी टनों में दूध कला नगर के मुख्य मंदिर के गणेश ने ही पिया था। इस चमत्कार ने देशी ही नहीं, विदेशी मीडिया को भी आकर्षित किया। टी.वी. वालों की कई टीमें यहाँ आईं– और हाथों में दूध के बर्तन लिये, धक्का-मुक्की करते, एक-दूसरे पर गिरते-पड़ते, दूध छलकाते गणेश तक पहुँचते हुए वे टी.वी. पर भी दिखाए गए। बाद में महीनों तक इस घटना को एक-दूसरे का मजाक उड़ाते या शर्मिंदा होते हुए भुलाने का प्रयास करता रहा। बेशक यह सब समाचारों का हिस्सा नहीं बन पाया।

इसके बाद कई घटनाएँ घटीं जिससे शहर फिर समाचारों में आया। ये घटनाएँ किसी का भी ध्यान आकर्षित न करतीं, यदि क्रमबद्ध होकर एक के बाद एक और एक ही महीने के भीतर न घटतीं। इन समाचारों की क्रमबद्धता को देखते हुए एक अखबार के संपादक ने तो अपने चलताऊ मुहावरे में यहाँ तक कह दिया था कि लगता है शहर में कोई प्रेमात्मा प्रवेश कर गई है। पहले तो एक स्कूल की छत गिर गई जिसके नीचे दर्जनों बच्चे दबकर मर गए। फिर जहरीली शराब पीने से आठ लोगों की मौत हो गई और बीसियों अंधे हो गए। दो-चार दिन के अंतराल पर एक ही रात में अलग-अलग जगहों पर तीन परिवारों ने खुद को खत्म कर लिया। पहले बच्चों को मारा गया था फिर पति-पत्नी ने खुद को खत्म किया था।

उससे अगले ही दिन दो युवकों और युवतियों ने एक-दूसरे की बाँह थामे रेल के आगे कूदकर जान दे दी थी और पचास के लगभग दलित परिवार गाँव से भगा दिए गये थे जो कि अब कला नगर की सड़कों के किनारे भिखारियों की तरह किसी-किसी का मुँह तकने को मजबूर थे।

एक टी.वी. चैनल ने अपनी साख बनाने के लिए कला नगर की इन घटनाओं को मुद्दे के रूप में स्वीकार करते हुए सरकार के प्रवक्ताओं और जनप्रतिनिधियों से सीधे-सीधे बात शुरू कर दी थी। चैनल ने उन्हें विपक्ष की तरह निष्कर्षत: यहाँ ला घेरा था कि क्या ये घटनाएँ अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, गरीबी, बेरोजगारी और सामंतवादी सोच का परिणाम नहीं हैं? ऐसा लगने लगा था कि कला नगर इस बार संसद-सत्र में मुद्दा बनकर गूँजेगा।

इधर कला नगर टी.वी. समाचारों में अपनी ही समस्याओं का तमाशबीन बना आश्वस्त था कि कोई तो है उनकी ओर से बोलने वाला कि तभी दर्शकों को बहलाए रखने की जिम्मेदारी के बोझ तले दबे समाचार चैनलों की टीमें फिर वहाँ पहुँच गई थीं। यह घटना ऐसी थी कि स्वयं शहर वालों को भी 'जड़ की बोली' वाले समाचार की तरह टी.वी. से पता चला कि उनके शहर की सीमा के भीतर प्रवेश करते ही रेलों की छक-छक-भक-भक की ध्वनि स्वत: ही बदल जाती है। शहर की सात कोस की सीमा में ही ऐसा हो रहा है। यदि पटरी पर चलती रेल की ध्वनि को पूरी आस्था और ध्यान से सुना जाए तो वह अचानक 'राम-राम जै सियाराम' कहने लगती है।

शहर की जनता इस समाचार से एकदम एकमत नहीं थी।

यह विचित्र-चमत्कारिक तथा अविश्वसनीय समाचार सुनकर अमरीका के खोजी पत्रकारों का एक दल कला नगर पहुँच गया था। इस दल ने ध्वनि विश्लेषण करके जो रिपोर्ट दी थी वह मूल समाचार से भी आगे थी। रिपोर्ट में कहा गया था कि शहर के सात कोस के भीतर यानी स्टेशन से साढ़े तीन कोस उत्तर और साढ़े तीन कोस दक्षिण की पटरियों पर आते ही रेल 'राम राम जै सियाराम' की ध्वनि देना शुरू कर देती है। लेकिन जिसके कारण यह स्टेशन जंक्शन है उस ब्रांच लाइन की गाड़ी यह ध्वनि नहीं निकालती। जंक्शन से पश्चिम की ओर गई ब्रांच लाइन की रेल साढ़े तीन कोस पहले शहर में प्रवेश करते समय 'जय माता दी जय माता दी' कहती है।

बाद में टी.वी. पर इंटरव्यू में इस अमरीकी दल के एक पत्रकार ने माना था कि जब वे मुख्य लाइन की ध्वनियों का विश्लेषण कर रहे थे तो शहर के कुछ माता भक्त उन्हें मिले थे। उन्होंने बताया था कि ब्रांच लाइन की रेल 'राम-राम जै सियाराम' नहीं कहती बल्कि 'जय माता दी' कहती है। उसी कथन के मद्देनजर उन्होंने विश्लेषण किया तो पाया कि माता के भक्त सत्य कह रहे थे। लेकिन विचित्रता की भी हद होती है। यदि ब्रांच लाइन की रेल जैसे ही स्टेशन की मुख्य लाइन पर जाकर चढ़ती है तो जय माता दी की ध्वनि त्यागकर 'राम राम जै सियाराम' की ध्वनि देने लगती है।

कुछ दिनों बाद सरकार ने स्वीकार किया कि अमरीकियों को इस अध्ययन की स्वीकृति देना बहुत बड़ी भूल थी। दरअसल, शहर कला नगर में दो बड़े-बड़े डेरे थे। दोनों डेरों के अलग-अलग मंत्र थे। एक का 'सच गुरु' और दूसरे का 'रटमन बापू'। एक दिन इन दोनों के अनुयायियों ने ब्रांच लाइन को जाम

कर दिया। एक कह रहा था कि यह गाड़ी जय माता दी नहीं कहती बल्कि सप्तकोसी परिक्रमा में प्रवेश करते ही यह 'रटमन रटमन बापू–बापू' कहना शुरू करती है। दूसरे डेरे ने प्रतिवाद किया कि नहीं। यह 'सच सच गुरु गुरु' की ध्वनि देती है।

इससे सरकार को कोई ज्यादा परेशानी नहीं हुई थी, क्योंकि मुख्य लाइन की ध्वनि 'राम–राम जै सियाराम' पर कोई विवाद नहीं था। अत: सरकार ने कुछ पत्रकारों और ध्वनि विशेषज्ञों और सरकारी नुमाइंदों का एक आयोग गठित कर दिया है कि वह स्पष्ट तौर पर निष्पक्ष होकर पता लगाए कि ब्रांच लाइन की पैसेंजर की क्या ध्वनि है और माल गाड़ी की क्या ध्वनि है? इसमें भी पता लगाएँ लोडिड माल गाड़ी की ध्वनि क्या है और खाली की क्या? इस प्रकार कला नगर तब कुछ दिनों समाचारों में आता रहा।

टी.वी. पर विज्ञापनों के पश्चात् कला नगर की कवरेज आ गई है। यह श्रृंखला ऐसी ही लगती है जैसे विज्ञापन समाचार है और समाचार विज्ञापन। शहर में घूमता संवाददाता नागरिकों से 'जड़' से संबंधित सवाल कर रहा है जिसके प्रत्युत्तर में सभी श्रद्धालु अपनी अनभिज्ञता दिखा रहे हैं। फिर सीधे वहाँ की कवरेज है जहाँ बोली शुरू होने वाली है। शहर का यह एक पिछड़ा इलाका है। ब्रांच लाइन और एक पगडंडी जैसे अप्रोच रोड के बीच रेलवे की जमीन पर कुछ झुग्गियाँ हैं जिनको कई बार उठाया जा चुका है, लेकिन इन झुग्गी वालों को इस जगह पर यूँ ही दुत्कारे जाने और बसने का कार्य होता रहता है। इनके पास मल्कीयत के नाम पर पीले राशनकार्ड ही हैं। ना ही कहीं इनका सरकार के रिकार्ड में नाम दर्ज है। ये फिर समाचार संदर्भों की अभिरुचि को ध्यान में रखें, किसी के हितों को नहीं, यहीं बैठ जाते हैं। टी.वी. वाले यह जान चुके हैं। यह जड़ भी एक झुग्गी वाले की है यह भी पता लगा लिया गया है। लेकिन यह सब कवर नहीं किया जा सकता क्योंकि नई उम्र के संवाददाताओं को बताया गया है कि समाचार दर्शकों की अभिरुचियों को ध्यान में रखें, किसी के हितों को नहीं। झुग्गियों को रंगीन पर्दों, कायनातों व अन्य बेशकीमती चीजों से इस प्रकार ढक दिया गया है कि वे दिखें ही नहीं। चारो और मल्टीनेशनल के विज्ञापनों के बड़े–बड़े रंगीन बैनरों की कतारें लगा दी गई हैं। बोली में भाग लेने आने वाले विदेशियों विशेषकर अमेरीकियों के लिए सुंदर चमकीले 'वैलकम' के बैनर लगा दिए गए हैं। टूटे–फूटे अप्रोच रोड के दोनों ओर चूना डालकर झंडे लगा दिए गए हैं। घने कोहरे के बावजूद पूरा स्थल भव्य नजर आने लगा है।

टी.वी. पर देखने पर लगता ही नहीं कि यह स्थान इस देश के शहर कला नगर में ही कहीं है।

टी.वी. पर घटना-स्थल का लाइव कई घंटों से चल रहा है और इसे अंतरराष्ट्रीय महत्त्व देकर कवरेज की जा रही है। इसीलिए विज्ञापन भी खूब मिल रहे हैं जिन्हें दिखाने के लिए बार-बार ब्रेक दिए जा रहे हैं। लगभग हर विज्ञापन में 'कर लो दुनिया मुट्ठी में', 'दुनिया को दिखाना है' या 'दुनिया से आगे निकलना है' आ रहा है।

इधर ठंड से ठिठुरते हुए शहर के लोग कोहरे पर सूर्य की जीत की प्रतीक्षा करते यह सब देख सुन रहे हैं।

आधुनिक और कुशल दुकानदारों की तरह बहुत ही सुंदर काउंटरों के पीछे बैठे उद्घोषक अपने श्रोताओं को दर्शक बनाते हुए कहे जा रहे हैं कि अभी आगे ये दिखाने वाले हैं या वो दिखाने वाले हैं। जाएँ नहीं, बैठे रहिए। यह सब बिल्कुल मजमेबाजों की तरह है जो एक खूँटी से नेवला बाँधते हुए दर्शकों को यह कहकर जमा करता है कि यहाँ सब के बीच, इसी मैदान पर नेवले और साँप की लड़ाई दिखाएगा। दर्शकों की नजरों में रहता है खूँटी से बँधा गोल-गोल चक्कर काटता नेवला और अवचेतन में नेवले के मुँह में साँप का खून टपकता फन और अंत में मजमेबाज कागज की पुड़िया बेचकर अपनी कमाई का हिसाब लगाता हुआ चलता बनता है। या तो उसके पिटारे में साँप होता ही नहीं था या वह निकालता नहीं।

उद्घोषक की साथ वाली कुर्सी पर काउंटर के पीछे वाकई एक कलाकार दिखने वाला व्यक्ति आ बैठा है जिसका परिचय एक चैनल ने राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त 'नवरंग जी' के रूप में करवाया है।

''नवरंग जी! आप क्योंकि इस कंट्री के, इस नेशन के, धर्म और संस्कृति के और कला के श्लाघा पुरुष हैं। या यूँ कहें कि आप जैसा कि अपने व्याख्यानों में कहते रहते हैं कि धर्म और संस्कृति के बिना कला ऐसी है जैसी कि सूनी माँग औरत। सो आप सुबह से सब देख रहे हैं। यह बिल्कुल अलग तरह का विषय खड़ा हो गया है। यह जो जड़ है, यह जो मूल है जिसे कि आप कांटिन्यूअसली देख रहे हैं, इसे कला का नायाब नमूना यानी कि मास्टरपीस माना जा रहा है और आयोजकों द्वारा जिसकी बोली करोड़ों डालरों तक होने की संभावना व्यक्त की जा रही है। आप इस संबंध में हमारे दर्शकों को कुछ बताएँगे।''

नवरंग जी ने उद्घोषक की बजाय कैमरे की ओर देखते हुए बोलना शुरू किया है, ''देखिए। ऐसा है कि कला जो है ऽ ऽ हमारे ऽ कला के रूपों में ऽ बल्कि मैं तो जोर देकर कहना चाहूँगा कि मात्र और मात्र कला के ही नाना रूप हमारे प्राचीन ग्रंथों में व्याख्यायित हैं।''

उद्घोषक को सहज ही अहसास हो गया था कि कलाकार महोदय ने कुछ नहीं कहा है। फिर भी उसने कहा है कि ''नवरंग जी... आप से बातचीत का सिलसिला जारी रहेगा। फिलहाल वक्त है एक ब्रेक का। हम दर्शकों को बताएँगे ब्रेक के बाद कि इस जड़मूल को कला की भाषा में क्या कहेंगे? और अमेरीका का या और विदेशियों का हमारी कला को यूँ बोली लगाकर ले जाना क्या उचित है? बैठे रहिए।''

●

विज्ञापनों के बाद 'जड़' को नए रूप में दिखाया गया है और उद्घोषक ने बताया कि वे मानव संसाधन मंत्रालय के संस्कृति विभाग से संपर्क स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं। क्या इस सारे घटनाक्रम की उन्हें जानकारी है? क्या कला और संस्कृति विभाग का यह दायित्व नहीं बनता कि वह राष्ट्र की इस अमूल्य धरोहर को बाहर जाने से रोके?

तभी बुलेटिन में थ्रिल पैदा हो गया। नवरंग जी ने मूल से निकलती दो मांसल जड़ों की व्याख्या राधा कृष्ण के रूप में कर डाली। इसके साथ ही कैमरा जड़ के चारों ओर घुमाया जा रहा है। दो जड़ें एक दूसरी के कभी नजदीक सटतीं तो कभी दूर होती हुई पली-बढ़ी दिख रही हैं।

जड़ के प्रदर्शन के पश्चात नवरंग जी फिर स्क्रीन पर उभर आए हैं। उसने अँगूठियों से भरी अपनी अँगुलियों को कलात्मक बनाते हुए थ्रिल का समावेश किया है, ''देखिए, आवश्यक नहीं इस कृति को राधा कृष्ण के रूप में ही देखा जाए। मैं तो निश्चित रूप से जोर देकर कहना चाहूँगा कि इसे हमारे प्राचीन ग्रंथों में वर्णित काम और रति के रूप में भी देखा जा सकता है।''

''यानी इसे आप पोर्न की श्रेणी में रख सकते हैं?''

''नहीं। पोर्न को तो हमारे प्राचीन ग्रंथ स्वीकार ही नहीं करते। वहाँ तो स्पष्ट लिखा है कि पोर्न तो व्यक्ति का स्वयं का दृष्टिकोण है अन्यथा कला में पोर्न नहीं होता। हाँ, पूरी संभावना है कि अमेरीकी इसे पोर्न समझकर ही इतनी बोली लगा रहे हों।''

उद्घोषक ने कला नगर से संपर्क साधकर पूछा कि वहाँ की क्या स्थिति

है और कितने विदेशी आ चुके हैं तथा कितने और आने की संभावना है?

सूचना मिली कि काफी विदेशी यहाँ पहुँचने के लिए चले हुए हैं लेकिन घने कोहरे के कारण सभी फ्लाइट देर से आ रही हैं। फिर उद्‌घोषक ने बताया कि हमारे स्टूडियो में पेटेंट कानूनों के विशेषज्ञ एडवोकेट आने वाले हैं। जाइएगा नहीं, बैठे रहिए। फिलहाल लेते हैं एक छोटा–सा ब्रेक।

●

''नवरंग जी! कला की भाषा में इस जड़ मूल को क्या कहेंगे?''

''कहना क्या है। जड़ मूल में ही बहुत–सी ध्वनियाँ हैं। अभिव्यंजना है। वैसे नाम ही जरूरी है तो इसे 'नेचुरल स्कल्पचर' कह सकते हैं।''

नवरंग जी के साथ बैठे एडवोकेट का स्टूडियो में स्वागत करते हुए उद्‌घोषक ने पूछा कि इस कलाकृति पर किसी देश का कापी राइट या पेटेंट या अधिकार माना जाएगा?

वकील का व्यक्तित्व हिंदुस्तानी अव्यवस्था के अनुरूप था।

वैसे तो नए पेटेंट कानून आने से सिचुएशंस काफी कंपलीकेटेड हुई हैं। हमें हमारे ही राइट्स की बात अमेरीका से पूछकर उठानी पड़ती है। फिर भी जहाँ तक मैं समझता हूँ, ऐसी आर्ट की चीजों जैसा कि नवरंग जी ने कहा 'नेचुरल स्कल्पचर' पर शायद यही लॉ है कि 'जो देख ले उसी का'।

इन्हीं बातों के चलते फिर थ्रिल पैदा हो गया है। कला नगर के वन विभाग से संपर्क बनाया जा रहा है। समाचार संवाददाता मिन्नी शॉ वन विभाग के कार्यालय के आगे खड़ी उसके साइन बोर्ड पर फोकस कर रही है।

उसे देखते ही टी.वी. से चिपके कुछ शहर वालों को याद आया कि ये वही मिन्नी शॉ थी जो रेल ध्वनि समाचार की कवरेज के समय भी यहाँ घूमती रही थी। तब नई–नई थी और इसमें इतना आत्म–विश्वास नहीं था। इसे तब मालूम भी नहीं था कि अन्य इलेक्ट्रानिक इफैक्ट्स की तरह समाचार संवाददाता की भाषा भी एक इफैक्ट है। समाचार के मेकअप एंड गेटअप में भाषा की अहम भूमिका है। कुछ लड़कों को इसे देखकर याद आया कि यह ब्रांच लाइन पर सिटी–स्टेशन पर पहुँच गई थी। शिखर दोपहरी की लू में वहाँ शेड के नीचे कुछ मजदूर पतले–पतले गमछे बिछाए और अपने कमीज–बनियान ऊपर उठाए आराम कर रहे थे। इसने एक को खड़ा करके पूछा था कि आपकी समझ के अनुसार यह रेल क्या कहती होगी? जय माता दी या और कुछ?

उस मजदूर ने दूर पश्चिम की ओर बाहर के सिगनल तक देखते हुए कहा

था, ''वहाँ जहाँ सुबह यहाँ की बस्तियों के लोग डिब्बों–बोतलों में पानी भरकर झाड़ियों में बैठते हैं और अब वहाँ लूओं के कारण रेल की लाइनें हिलती–काँपती नजर आ रही हैं। हम वहाँ की पसरी रोड़ियाँ पटरियों के साथ लगा रहे हैं। थोड़ी देर बाद आप अपने इस सामान और इन लोगों को लेकर वहाँ आ जाना। वहीं आकर पूछना कि रेल क्या कहती है।''

सिट्टी–पिट्टी गुम हो गई थी इस मिन्नी शॉ की। यह बात समाचार नहीं बन पाई थी।

तब से लेकर अब तक इसके सीनियरों ने इसे खूब माँजा है। जिन्होंने इसे लोगों की भी पहचान करवाई है कि किनके मुद्दों के आगे माइक आने हैं, उन्होंने इसे समझाया कि आप उस टी.वी. चैनल की समाचार संवाददाता हैं जिसके विश्वास पर लोग उतना ही काँपते हैं जितनी उम्र हम बताते हैं। गर्मियों में लोग पंखों–कूलरों की गति गर्मी के बारे में हमारे समाचार सुनकर कम–ज्यादा करते हैं।

वही मिनी शॉ पूरे आत्म–विश्वास के साथ वन अधिकारी के कार्यालय में पहुँच गई है, उसने पूछा है कि यह अमूल्य कृति जड़ के रूप में आपके वनों से चोरी हुई है। इस संबंध में आप क्या कहेंगे?

वन अधिकारी ने हिचकते हुए कहा है कि कृति तो यह बाहर निकलने और देखने के बाद ही बनी है। धरती में तो यह जड़ थी। एकदम मिट्टी।

हमारे दर्शक आपसे जानना चाहते हैं कि जैसा कि आप देख रहे हैं अमेरिका ने हमारी जड़ों में रुचि दिखना शुरू कर दिया है तो जड़ों के संरक्षण के लिए आप कदम उठाएँगे?

इसके बारे में तो सरकार बताएगी, बाकी जो भी नया कानून सरकार बनाएगी हम उस पर कार्य करेंगे।

अभी आगे और है, यह जड़ किसने निकाली? कहाँ से निकली? बने रहिए। जाइएगा नहीं। अभी लेते हैं एक छोटा–सा ब्रेक।

●

चैनल पर यह सब जारी है। धड़ाधड़ विज्ञापन दिखाए जा रहे हैं। लेकिन कला नगर में घटना स्थल पर और ही दृश्य प्रस्तुत हो गया है। झुग्गियों वाले अपने बच्चों को अब तक रोने–चिल्लाने से जैसे–तैसे चुप करवाए हुए थे। वे सब भूख के मारे एक साथ रो पड़े हैं। जिस झुग्गी वाले की यह जड़ है, उसके बच्चे भी भूख और ठंड से रोने लगे हैं। सुबह से वे भूखे ठिठुर रहे हैं। इस

समय यह जड़ ही उनके पास एक मात्र लकड़ी है जिसे काट–फाड़कर जलाना है और झुग्गी तवा–तपाना है। अतः सभी झुग्गियों वाले हिम्मत जुटाकर कुल्हाड़ियाँ लेकर एक साथ वहाँ जमा विदेशियों पर टूट पड़े हैं। मालिक ने जड़ के झटपट कई टुकड़े कर डाले। एक ने उसके कुछ टुकड़ों पर चुंगे हुए पोलीथीन डाल कर आग जला दी। उन्होंने वैलकम और मल्टीनेशनल्स के बैनर उतार कर जलती हुई जड़ के चारो ओर बिछा लिये और बच्चों को गोद में लिये उन पर बैठकर आग तापने लगे।

घटना स्थल पर खड़े शहर वालों ने देखा कि कुल्हाड़ियों को देखकर टी.वी. वाले भाग गए हैं। उनका संपर्क टी.वी. स्टूडियो से समाप्त हो गया है।

इधर टी.वी. पर नवरंग जी की बातें बढ़ते–बढ़ते सत्यं शिवं सुंदरं की व्याख्या में उलझी हैं। एडवोकेट अधिकार के सवालों में फँसा है।

उद्घोषक बता रहा है कि फिलहाल कला नगर से हमारा संपर्क नहीं हो पा रहा है। लगातार वहाँ की जानकारी के लिए आप हमारी बेब साइट 'डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू डॉट जड़मूल डॉट कॉम' पर संपर्क कर सकते हैं।

फिलहाल लेते हैं एक छोटा–सा ब्रेक। बैठे रहिए। जाइएगा नहीं।

(प्रकाशित : रेत पथ, जनवरी–फरवरी, 2014)

•

टिक्स

यह भी नहीं कि उसके हाव-भाव कुछ विशेष हो गए थे, पर इतना अहसास मुझे अवश्य हो रहा था कि वह चाह रही है और अनाम-सा बुलावा दे रही है। पर ना तो वह ही उठकर मेरी खाट पर आई थी और ना मैं ही अपने-आप में इतनी हिम्मत जुटा पाया था कि उसकी खाट तक चला जाऊँ। यह नामालूम-सी दूरी शायद आई भी मेरे कारण थी। या मैं अपने ऊपर से जिम्मेदारी टालना चाहूँ तो कहूँगा कि उस कुत्ते के कारण आई थी जो तीन महीनों से हर समय मेरे दिमाग पर छाया रहता है... जिसका बोझ हर समय मुझे अपनी बाँहों में लदा महसूस होता रहता है।

इस दूरी का एक कारण और भी रहा है—जो आज ही अधिक खटका है—हम दोनों की खाटों के बीच बिछता बिटिया का खटोला। सबसे बड़ी चार साल की बिटिया नोनी का खटोला। ना तो मैं ही एक साथ दो बच्चों को सुलाता हूँ और ना वह ही। उसके पास एक साल की छोटी बिटिया सोनी सोती है जो सारी रात उसकी छातियों से चिपकी कुतर-कुतर करती रहती है। बीच का ढाई साल का बेटा टीटू मेरे साथ सोता है जिसका बढ़ा हुआ पेट सारी रात मुझसे सटा रहता है।

अगर सावन के महीने की यही पुरवाई चलती रात और यह खुली छत आज से तीनेक साल पहले होती तो बिना एक-दूसरे के आमंत्रण-समर्पण के ही हम एक-दूसरे से लिपटे होते। वह एकाध बार नाटकीय-सा विरोध करती—छोड़ो ना बिटिया उठ जाएगी—पर...और आज भी उस कुत्ते से छुटकारा पाने के लिए और ऊपर से उसकी परोक्ष चाहना भी। पर यह खटोला, इसे न लाँघ सकने की असमर्थता और मन पर तनाव।

जब मैं घर पहुँचा था तो चाय पीते हुए इसने चहकते हुए कहा था ''खुशखबरी नंबर एक...मौसम बढ़िया... नंबर दो—ऊपर वाले किरायेदार कहीं गए हैं...मतलब कि नंबर तीन—छत खाली...मतलब कि नंबर चार आज हम खुले में ऊपर सोएँगे... मतलब कि...'' पर मुझे कुत्ते ने इतना थका दिया था कि घुटन से निकलकर ऊपर खुले में सोने की खुशी महसूस करते हुए भी

मैं उसके साथ नहीं चहक सका था। उल्टे मैंने थकावट के ही कारण–खाटें–बिस्तर ऊपर चढ़ाने और अगर बरसात आ गई तो फिर सोए बच्चों को भी बिस्तर–तकियों की तरह लटकाए नीचे भागने की किल्लत से बचने के लिए कहा था– ''छोड़ो ना...नीचे ही ठीक है...बच्चे अपने ऊपर कपड़ा नहीं लेते–मच्छर काटेंगे...सोनी को पहले ही गुमड़िया निकली हुई है।'' पर उसने खाना खाते ही खाटें–बिस्तरें ऊपर चढ़ा लिये थे। वह यह सब इतनी जल्दी–जल्दी कर गई थी कि कहीं और कोई ना वहाँ हमसे पहले ही कब्जा जमा ले। बात भी सही थी–नीचे वाले दूसरे किरायेदार भी पहल कर सकते थे। मुझे भी ऐसा ही कुछ महसूस हुआ था जैसे किसी लोकल बस में खाली सीट दिख गई हो।

बच्चे नाच–कूद कर सो चुके हैं। छोटी बिटिया सोनी घाम और गुमड़ियों की वजह से थोड़ी–थोड़ी देर बाद छटपटा उठती है और नाक मलती हुई फिर सो जाती है। आसमान साफ है। बस कहीं–कहीं सावन की निशानी के तौर पर कोई–कोई छोटा–मोटा बादल का टुकड़ा पुरवाई के इशारों पर इधर–उधर घूम रहा है, पत्नी ने बगल में सोई बच्ची की पीठ थपथपाना लगभग बंद कर दिया था और छत पर सोने की खुशी का इजहार करते हुए आकाश को देखते हुए कहा था–

''सो गए क्या?''

''ना–''

''देखो, चाँद पर बदली का यह छोटा–सा टुकड़ा... कैसा सुंदर फूल–सा बन गया है...देखो ये है ना, इधर... ए ये रीटा होर के कोठे की तरफ और उधर, वो... आपकी तरफ और थोड़ा–सा ये नीचे गोल–गोल तिकोण–सा सारी पंखुड़ियाँ–सी लग रही हैं...सूरजमुखी के फूल जैसी–सूरजमुखी नी...कमल के फूल–सी...है ना?''

''हाँ ये...'' मैंने यूँ ही कह दिया है जबकि मुझे कहीं से भी वह छितराया बादल फूल नहीं लग रहा था। कुछ देर मैं उस बादल को फूल लग जाने के लिए जोड़–तोड़ करते हुए एक फूल की आकृति को मन में उतारने की कोशिश भी करता रहा–क्योंकि यह भी मुझे भागती रेल की ध्वनि जैसा ही लगा–जो भी बचपन में लयबद्ध शब्द मन में सोचते थे वही रेल की छक्–छक् से मेल खा जाता था... छै–छै पैसे... छै–छै पैसे। छै...छै...पैसे...छैछेपैसे–या बाबू जी की ऐसी–तैसी...छपन डिब्बे कैसे खैंचूँ... बाबू जी की ऐसी–तैसी छपन डिब्बे कैसे खैंचूँ...मैं किसी भी फूल की कल्पना अभी मन में नहीं उतार पाया हूँ कि एक छोटा–सा टुकड़ा सफेद–सफेद, वहाँ और आन मिला है और इससे वह

सारी आकृति बदलकर जो नई आकृति बनी वह मुझे हिला गई है। बिलकुल वही आकृति... वैसे ही नीचे लटकते कान... वही छोटी-सी भारी-भारी झब्बर पूँछ...रोएँ-रोएँ-सी चमकती चाँद की रोशनी की झालर...वही पॅप...बिलकुल वही... जो मुझे पिछले तीन महीनों से लगातार देख रहा है और फिर भी मुझे देखते ही एकदम गुर्राता है—भौंकता है—और उसके इस भौंकने-मात्र से ही मुझे उसके तीखे दाँत अपनी पिंडलियों में गड़ते महसूस होते हैं।

''हाँ भई, लाल... आ जा'' यही आवाज थी जो आमतौर पर मुझे उन गड़ते नुकीले दाँतों के कष्ट से छुटकारा दिलाती थी। पर इससे पहले कि मैं उस कष्ट से उबरकर कहीं बैठने की जगह तलाशता, वही आवाज फिर आती— ''भई वो तेरी दवाई तो कुछ भी आराम नहीं कर रही...'' साला हरामखोर... लंबू... मिठबोला... हमेशा ऐसे ही बोलेगा—वो तेरा डॉक्टर, वो तेरी दवाई, वो तेरी रिक्शा... वो तेरा टैक्सी वाला... काम कहेगा और अगले दिन ही मैं सर्वनाम से विशेषण।

मेरा मन हुआ है कि एक पत्थर उठाकर इन बदशक्ल बादल के टुकड़ों पर दे मारूँ—फूल बनकर बहकाते टुकड़ों पर...पॅप बनकर मुझे दबाते टुकड़ों पर।

''आ...हा...हा...देखो जी—अब देखो...बिलकुल पहाड़ी-सी लगने लगी है... और वो ऊपर चाँद की रोशनी से चमकती बदली की झालर है ना...बिलकुल अपने गाँव वाले टीले के पीछे से जैसे अभी-अभी सूरज निकलने वाला हो...''

सब बकवास... छप्पन डिब्बे कैसे खैंचूँ... छप्पन डिब्बे खैंचूँ...एकदम वाह्यात...मृग-मरीचिका-सा दृष्टि भ्रम। यही तो इसकी अनपढ़ता है—गँवारूपन—मैं अँधेरे में उसकी तरफ चोर नजर से देखता हूँ—लगता है उसकी आँखों के भोलेपन को गाली दे रहा हूँ जो कि बहुत गलत है। मैं जानता हूँ—जब तक यह मन में चाह लिये यूँ ही मुँह बाए वहाँ देखती रहेगी... इन लुभावनी छलना आकृतियों की कल्पना करती रहेगी जबकि अभी तक वहाँ कुत्ते की आकृति पूरी तरह नहीं मिटी थी। उल्टे वहाँ कुछ और हलचल होने से आँखें और भी स्पष्ट और घूरती-सी लगने लगी थीं। मुझ पर कुत्ता हावी होता जा रहा था और वह मुँह बाए वहीं कुछ-की-कुछ काल्पनिक आकृतियों में खोई थी—सूरजमुखी...सूरजमुखी से कमल... कमल से पहाड़ी...पहाड़ी के पीछे गाँव... और मेरी याद में छा रहा है सजा-धजा आफिस—

''हाँ क्या नाम तुम्हारा...अँ-अँ...दिमाग से उतर जाता है हाँ—लाल...हाँ तो भाई लाल, लाल क्या हीरा बन के दिखा। अच्छा ऐसे करना कि शाम को घर

आना। थोड़ा और काम के बारे में समझा दूँगा...भई बात ये है कि पिछले डेढ़ सालों में पाँच आदमी छोड़कर जा चुके हैं–ईमानदारी और मेहनत से तो काम कोई करना नहीं चाहता...टिकें कैसे...यहाँ तो भई काम की कद्र है चाम की नहीं। अब देखो ना मालिक ने पूरा दफ्तर मेरे सुपुर्द कर रखा है...कभी टोकता है?–एंड दैट इज ओनली ड्यू टू माई आनैस्टी एंड कान्फीडेंस–बस। अब ये क्लर्क भी छः महीने की छुट्टी टिका गया है। तुमने बी.ए. भी कर लिया है और टाइप भी सीख ली है एंड आई वांट कि यू मस्ट बी रिवार्डिड फार दिस... मेरा विचार है कि...तुम्हें इधर आफिस में ही एडजस्ट कर लिया जाए। मालिक से मैं खुद बात कर लूँगा...और हाँ–एक बात है... वैरी इम्पोरटेंट–मेरी इच्छा ही काफी नहीं रहेगी–तुम्हारी मेहनत आई मीन, विल आलसो पे'' मैं केवल यस सर...यस सर ही करता रहा था और अब तक काफी बोरियत भी फील करने लगा था। पर उस समय वह आदमी मुझे मिस्टर भटनागर, आफिस इंचार्ज, मै० कन्हैयालाल एग्रो इंडस्ट्रीज एंड फेब्रीकेटर्ज की बजाय लोककथाओं की पार्वती का भेजा हुआ भोलाशंकर लग रहा था जो मुझे मेरी मरियल स्थिति से उबारने–मेरे दुःख–निवारण के लिए ही भेजा गया था।

''अच्छा ऐसा करो...बातें तो फिर भी होती रहेंगी... ये लैटर हैं–पहले इन्हें निकाल लाओ... मोस्ट अर्जेंट... और दो वे लैटर हैं–पोटैटो ग्रेडिंग मशीन के जो मै० एग्रो इम्पलीमेंट्स, रोहतक और मै०सरन कोल्ड–स्टोरेज, हिसार को जाने हैं, उन्हें लिख दो कि ड्यू टू शार्टेज ऑफ स्टील–आयरन एंड इट्स हाई–प्राईसिस इन द मार्केट–वी वांट ट् रिवाईज अवर कोटिड प्राईसिस आलसो...दैट इज इतने टू इतने। होप यू विल बीयर विद अस...एंड लिख दो कि द रिक्वायर्ड मशीन इज रेडी एंड बस आकर ले जाएँ...और...'' वह बोलता रहा था और मुझे आफिस के ऐन पीछे फैक्ट्री में हैरो–डिस्क–प्रैस की धफ्फठ–धफ्फठ और कटर की खट–खन्न्न–खट–खन्न्न का शोर, पॉवर भट्ठी में तप रहे लोहे की उमस और उसे (डिस्क, टोका मशीन के ब्लेड्स) काले–काले तेल में डालना... सन्न...धुआँ–टैंपर और फिर उस पर लगता जर्मन–स्टील का ठप्पा...सब महसूस हो रहा है...महसूस होकर अटपटा भी...और जब से में अपने उन सभी साथी–कर्मचारियों को छोड़कर इधर ऑफिस में आया हूँ तो कुछ ज्यादा ही अटपटा लगने लगा है।

सोनी रोई है। गुमड़ियों और घाम में जलन हो रही होगी। उसके मुँह में स्तन देकर उसे थपकाते हुए उसने बादलों को देखते–देखते ही करवट बदल ली है। बादलों के टुकड़े एक–एक कर और जुड़ रहे हैं।

''भाई, लाल, मैंने तेरे को इसलिए बुलाया है कि यदि वो लैटर तैयार हो गए हों तो उन्हें साईन करवाकर डिस्पैच कर दें और अगर ना भी हो पाए हों तो कोई बात नहीं...कल हो जाएँगे—और सुन— काम खुलकर किया कर— मेरे साथ रहते हुए हमेशा फ्री एंड कूल-माईंडिड होकर काम करना। मेरा तरीका ही 'काम लेने' का बड़ा फ्रैंडली होता है। मैं अपने सबार्डीनेट्स को कभी भी यह फील होने का चांस ही नहीं देता कि आई एम हिज बॉस...कि नहीं—? तुम्हें नहीं लगता?'' और मैं हमेशा ही उसकी बातों का अक्षरश: गद्‌गद्‌ एवं आह्लादित स्वर में अनुमोदन करता रहता हूँ।

''अरे भई ये तो कमाल हो गया—मैंने तो तुम्हें शाम को घर बुलाया था—यही सब डिस्कस करने को और कह बैठा सब यहीं। खैर कोई बात नहीं।'' उसने मेरे चेहरे पर ध्यान से देखा जहाँ कि 'आई एम ग्रेटफुल टू यू सर' का भाव था, ''अच्छा ऐसा करो—छोड़ो वो लैटर-वैटर... घर तो मैंने तुम्हें बुलाया ही है—तुम अभी चले जाओ। क्या बजा है अब—साढ़े तीन—ठीक है—हाँ—वो ऐसा है कि हमारा पॅप कुछ ढीला चल रहा है। उसे हास्पीटल ले जाना है—''

और इसके बाद तो लगभग हर रोज ही मिस्टर भटनागर के पॅप को हास्पीटल ले जाना—चैकअप करवाना—दवाइयाँ लानी आदि सब मेरे ऑफिस-वर्क का हिस्सा बन गया था। लंच खत्म होते ही मुझे हर समय लगता रहता अभी घंटी बजेगी...''पॅप को हास्पीटल ले जाना है।'' कई बार तो मेरे अपने जरूरी काम भी रह जाते। शाम को घर पहुँचते-पहुँचते थकावट और देर इतनी हो चुकी होती है कि कुछ भी करने को यहाँ तक कि दोस्तों को मिलने तक को भी मन नहीं करता। न तो मैं तब से ठीक से बच्चों के साथ खेल पाया हूँ और ना ही पत्नी की चारपाई पर जाने की हिम्मत जुटा पाया हूँ। एक अजीब-सी नपुंसकता घर कर गई है। एक तरफ मैं होता हूँ और दूसरी तरफ कुत्ता। कुत्ता जीत जाता है यानी कि उसका मालिक, मेरा बॉस भटनागर और मैं हार जाता हूँ। यह हार मन को पराजित कर जाती है और मैं चाहकर भी कुछ नहीं कर पाता।

आज ही की बात है—''हाँ, भई लाल—कल मैंने मालिक से तुम्हारे बारे में बात की थी। पर उन्होंने इतना इंटरैस्ट शो नहीं किया...'' वह एक बार रुका था—मेरे चेहरे को पढ़ा था और फिर बोला था, ''खैर छोड़ो... डोंट वरी अबाउट दैट...आई विल सैटल द मैटर... हाँ वो ऐसा है...पॅप आज कुछ ज्यादा ही ढीला है। मैंने डॉक्टर बख्शी को फोन भी कर दिया है। तुम वर्बली भी कह देना कि कल से पॅप की तबीयत ढीली होने के कारण मिसेज भटनागर ने भी कुछ भी

मन लगाकर नहीं खाया है।''

मैं कहना चाहता था कि मेरी बिटिया गुमड़ियों से गली पड़ी है, मुझे उसके लिए दवाइयाँ लेकर जानी हैं। कल भी इसी पॅप के कारण रह गई थीं। पर मैं कुछ भी नहीं कह सका। उसका 'आई विल सैटल द मैटर' मुझे कुछ भी ना-नुकर करने से रोकता रहा था। और मैं यस-सर यस-सर ही करता रहा था।

''हाँ भई, एक ख्याल रखना कि पॅप को ले जाना गोद में ही, हास्पीटल में भी गेट से अंदर तक गोद में ही ले जाना—गर्मी ज्यादा है वह तंग होगा।''

बाहर की आँच...गर्म तपती लगभग सुनसान सड़कें, इंडस्ट्रियल एरिया से संजय कालोनी...लगभग दो किलोमीटर और संजय कालोनी के पश्चिमी-सिरे पर ''भटनागर-भवन'' दो फर्लांग... फिर हास्पीटल... फिर भटनागर भवन—फिर...वापसी...''गोद में ही रखना'' जबकि डॉक्टर ने कल हिदायत दी कि इसे ''आदमियों से दूर रखना... इसे खारिश है जो कि बढ़ गई है। इसके इंसैक्ट्स आदमियों को भी इफैक्ट कर सकते हैं। और ये जो इसके शरीर पर टिक्स चिपकी है ना इन्हें भटनागर साहब को कहना कि किसी नौकर से उतरवा दें। इसे मीठा बिलकुल ना दें। नहीं तो ये टिक्स बढ़ती ही जाएँगी और आराम नहीं होने देंगी... बाल भी सभी झड़ जाएँगे।'' पॅप मेरी गोद में था और मैं डॉक्टर को ध्यान से सुन रहा था। उसकी लिजलिजी-गिलगिली लाल-लाल टिक्स मेरी उँगलियों के नीचे मैं साफ महसूस कर रहा था, ''इसे टैटमासोल से नहलाकर लोशन का लेप करना है—मैंने लिख दिया है—ये है नंबर दो पर—एंटीसैप्टिक लोरेशन लोशन—और सुनो फिर याद दिला रहा हूँ—इसे आदमियों से दूर रखना।''

मैं डॉक्टर की सख्त हिदायत के बावजूद रिक्शा में उसे अपनी गोद में बिठाए रहा था। हालाँकि उसकी खाज से सफेद-काली हो गई चमड़ी पर वे लाल-लाल चिचड़ियाँ अपने पंजे गड़ाए हुए थीं, वहाँ से बाल भी झड़ चुके थे। और लिजलिजी-गिलगिली चमड़ी पर हाथ के स्पर्श मात्र से ही ग्लानि-सी होती थी। मुझे वे चिचड़ियाँ अपने सारे बदन पर सरलाती-गड़ती महसूस होने लगी थीं।

कुछ दिन पहले भी इसे 'ब्रांकाइट्स' का अटैक हुआ था तब भी डॉक्टर ने कहा था कि इसे आदमियों से दूर रखना, और कहा था...''किसी भी ब्रीड का हो, हड्डी पर जरूर जाएगा... इसने भी जरूर कोई हड्डी चबाई है जिसकी खरोंच से इसे थ्रोट-इंफैक्शन हुआ है।'' मैं पूछना चाहता था कि आपने ''किसी भी ब्रीड का हो'' आदमी कहा है या कुत्ता—पर बात कुत्ते की थी मैं हिचक गया... ''इंफैक्शन से ब्रांकाइट्स हो गया है—सख्त हिदायत है कि

आदमियों से दूर रखें।'' मुझे फिर शंका हुई थी कि मैं पूछूँ, ''कौन से आदमियों से?'' पर कभी भी पूछ नहीं सका था। मैं उसे हमेशा घर से हास्पिटल और हास्पिटल से घर रिक्शा में गोद में बैठाए ही लाता ले जाता रहा था। उसका थूक–लार मेरे बाजू पर गिरता रहता था–उसके खो–खर्र करते ही थूक के छीटों का ''स्प्रे'' निकलता था पर उसे फिर भी अपने से दूर नहीं कर सका था।

मारे पसीने और प्यास के मेरा जी तंग हो रहा था और इस पर वहाँ पहुँचते ही गेट के पास पड़ा–पड़ा ही वह खाजला पॅप भौंका था। इस भौंकने ने आज कालिंग–बैल का काम किया था। ''कौन?'' मिसेज भटनागर पूछती हुई बाहर आई थीं। उसने शायद जालीदार किवाड़ों में से मुझे देख भी लिया था। पर मैं उसे देखता ही रह गया था। वह पतली–सी मैक्सी पहने थी जिसमें से उसका पूरा शरीर चमक रहा था। मुझे उसे देखना अच्छा लग रहा था। कुछ तो उसका गोरापन और कुछ पत्नी का भी उसके मुकाबले में आ खड़ा होना–जो इससे बीसियों साल छोटी होते हुए भी 'लटक गई है'। पलेक के लिए तो गर्मी–प्यास भी भूल गया था मैं कि उसने पूछा–''रिस्का नई लाए?''

उसका यूँ पूछना मुझे अखरा और मैंने उसके मुँह की तरफ देखा जहाँ बड़े–बड़े दाँत थे। मुझे वह बुरी लगी–एकदम राक्षसी।

''मैडम, रिक्शा लाने आगे जाना पड़ता–पॅप को मैं ले जाता हूँ, वहीं से पकड़ लूँगा–'' मुझे अपनी पिंडलियों पर कुत्ते के दाँतों के साथ–साथ मिसेज भटनागर के दाँत भी गड़ते महसूस होने लगे थे। और ऊपर से पसीना चूकर पिंडलियों पर से सरलाता हुआ नीचे जूतों में जाकर चिपचिपाहट पैदा कर रहा था।

''नो...नो...तुम्हें साब ने पैले भी बोला–पॅप बीमार है–इसे धूप लग जाएगी–जाओ पैले रिस्का लाओ।''

और मैं इन दाँतों से बचने के लिए रिक्शा लाने दौड़ा था।

मुझे कुत्ता लाने–चेकअप करवाने–और उसे वापिस 'सँभलवाने' में ही साढ़े छः बज गए थे। गर्मी और थकावट के कारण सिर फटा जा रहा था, और उस पर उसकी टिक्स चिपटी–सफेद काली पानी–खून रिसती चमड़ी मेरे जेहन से नहीं उतर रहे थे। मुझे अपनी छाती से चिपका अपने बाजुओं में अब भी एक बोझ–सा महसूस हो रहा था। रास्ते में मैंने पनवाड़ी से एक सिगरेट लेकर सुलगाई थी और पैसे देते वक्त बिटिया की दवाइयों की पर्ची भी निकल आई थी। पिछले दस–बारह दिनों से यूँ ही टालता आ रहा हूँ। पहले तो पैसे नहीं थे और अब तनखा मिल गई है तो यह पॅप...मैं अपनी पूरी ईमानदारी और हिम्मत से कैमिस्ट से दवाई

लाने को मुड़ा हूँ पर पाँव थे कि उधर मुड़ते ही पूरी तरह जवाब देकर अड़ गए थे। और मैं एक पल यूँ ही खड़ा होकर वापस घर की ओर मुड़ गया था।

सिगरेट का कश खींचकर मैंने मन में निश्चय किया कि कल मैं साफ जवाब दे दूँगा—''पॅप अब ज्यादा गल गया है...इसे गोद में उठाना मेरे बस की बात नहीं... उबकाई आती है...'' ज्यादा करेगा काम से छुट्टी कर देगा—हैल्परी तो कहीं नहीं गई...इन लिजलिजी टिक्स से तो छुटकारा मिलेगा। मुझे उबकाई-सी आई है। दिल किया है सिगरेट फेंककर वहीं-कहीं दो मिनट के लिए फुटपाथ पर बैठ जाऊँ।

जब रिक्शा में मैं उसे ले जा रहा था तो मेरे दिमाग में एक विचार बड़ी तेजी से आया था—क्यों न इसे पास से स्पीड में गुजरती किसी कार या बस के आगे फेंक दूँ—लेकिन तभी मेरे विचार को मेरे ही दूसरे विचार ने ठेस पहुँचाई थी—वह और कुत्ते खरीद लेगा—कई-कई —इससे भी बड़े-बड़े भारी-भरकम—फिर? और तभी कुत्ते ने भी क्याऊँ किया था। मेरा पंजा शायद तनाव के कारण उसके गले में कस भी गया था। तो फिर वापस 'हैल्परी' पर...लेकिन कोई और लाल आकर मेरी जगह मौके का फायदा उठा जाएगा। और मैं फिर उसी घुटन-सीलन वाले अँधेरे कोठे में ही रह जाऊँगा, कोई अच्छा खुला मकान नहीं ले पाऊँगा। और फिर फैक्टरी में भी तो मि. गुप्ता—वर्क सुपरवाईजर, मिस्टर बाली—वर्कशाप इंचार्ज, सिंह साहब—टाईम कीपर—सभी तो मिट्टी के तेल से लेकर गैस के सिलेंडर तक मँगवाते हैं! लेट-आवर्ज तक यहाँ-वहाँ दौड़ाए रखते हैं—सभी हैल्पर्स को। एक ही फर्क जरूर था—वहाँ यह खाजला पॅप नहीं था। एक बात है—किस्मत ने यदि अपना कैरियर बनाने का चांस दिया है तो...पर यह कुत्ता...ओफ— ? आज डॉक्टर ने, जब इसने दवाई लेने में हील-हुज्जत की थी तो जमकर तीन-चार डंडे लगाए थे—तब मुझे बड़ा सुख मिला था—पर मैं स्वयं उसे चाहकर भी मारना तो दूर अपने शरीर से भी नहीं हटा पाया था।

ज्यों-ज्यों घर नजदीक आता जा रहा था, बिटिया का गुमड़ियों भरा चेहरा भी मेरे सामने घूमने लगा था। मैं आज भी उसकी दवाइयाँ नहीं लाया था। अस्पताल से तो बस नीली दवाई ही मिलती है, कुछ आराम ही नहीं हो रहा। कहीं यह सब पंखे की गर्म हवा और कोठड़े की घुटन से ही तो नहीं— ? तीनों बच्चे हर रोज रोते ही उठते हैं और रोते ही सोते हैं। अगर यह क्लर्की पक्की हो जाए तो किसी अच्छे खुले कमरे की तलाश की जाए... और यही सब सोचता मैं चुपचाप चोर-सा आकर खाट पर लेट गया था—कहीं पत्नी आते ही दवाइयों के बारे में न पूछ ले।

''सिर दर्द है क्या?''

''ये भी कोई पूछने की बात है– सारा दिन टाइप पीटकर और फाइलों में माथा–पच्ची करके सिरदर्द नहीं होगा तो क्या होगा– ?''

''लाओ दबा देती हूँ।''

वह स्टोव पर चाय रखकर सिर दबाने लगी थी। मुझे भय था कि कहीं यह दवाइयों के बारे में ना पूछ ले इसीलिए मैंने भी बिटिया के बारे में नहीं पूछा था। वह सो रही थी। मैं नहीं चाहता था कि इसे कुत्ते वाली बात मालूम हो–क्योंकि मेरी 'क्लर्क बनने' वाली बात से इसे मुझसे भी अधिक खुशी हुई थी। हैल्परी–काले–बदबूदार–कीचट कपड़ों वाले हैल्पर की बीवी, एक खुरदुरे हाथों और काले–काले नाखूनों वाले हैल्पर की बीवी से एक क्लर्क...सफेदपोश क्लर्क की बीवी होने की खुशी।

पर तभी उसने चाय पीते हुए चहककर कहा था–''खुशखबरी नंबर एक मौसम बढ़िया...'' ऊपर सोने की खुशी तो तब मुझे भी हुई थी पर लाल–लाल लिजलिजी टिक्स के गड़े पंजे, बच्ची की दवाई, शरीर से चिपका खाजला, झड़े बालों वाला पॅप और यह अँधेरी कोठरी–मेरे दिमाग में गिजाईयों की तरह ऊपर–नीचे पड़े कुलबुला रहे थे। मैं उसके साथ ऊपर सोने वाली खुशी में कतई शरीक नहीं हो सका था। खाना खाकर मैं चुपचाप ऊपर आकर पड़ गया था। मन में था कि आज मैं सम्भोग करूँगा–शायद कुछ राहत मिले–तनाव कम हो–काफी दिन हो गए हैं...

रात ढलने लगी है। मैंने कुछ हिम्मत जुटाकर उसकी खाट पर जाने के लिए चप्पलें पहनी हैं कि तभी सोनी रो पड़ी और तड़पकर उछलने लगी है। उसने पलटकर उसके मुँह में स्तन दे दिया है पर वह रोए जा रही है। मेरा शरीर फिर ढीला पड़ गया है।

मेरा दाएँ हाथ का मुक्का तना है–कुत्ते के और भटनागर के जबड़े पर एक–एक बस–ए यूँ जोर से–पर वह मुक्का मेरे ही हाथ की बाईं हथेली से टकराया है।

सारा बादल एक होकर दैत्याकार लगने लगा है–उसके कई बड़े–बड़े हाथ और मुँह बन आए हैं। पुरवाई रुक गई है। मच्छर काटने लगे हैं–मच्छर? या टिक्स? मेरा मुक्का फिर तना है...

(प्रकाशित : सशर्त जून–जुलाई 1986)

•

दीक्षा

काफी रात हो गई थी पर महंत शिवोनाथ धूनी के बायीं ओर बने ईंटों के चबूतरे पर लगे आसन पर लेटे छत की ओर देखते हुए धीरे-धीरे बुड़बुड़ाए जा रहे थे। पिछले दस दिनों से वे यूँ ही पड़े थे और चेला एकल बार-बार उनकी गंदगी सँगवा रहा था। उनके उल्टी और मरोड़ों में तो कुछ फरक पड़ गया था पर बुखार नहीं टूट पा रहा था। वे पहले तो शांत पड़े रहे थे पर परसों से कराहने के साथ-साथ बुड़बुड़ा भी रहे थे। एकल ने यह साफ महसूस किया था कि गुरु जी का परसों से उगा दर्द पहले वाले दर्द से अलग था– शारीरिक दर्द के साथ-साथ कुछ और भी था जो गुरु जी को तड़पा रहा है। कई बार उसे गंदगी साफ करते हुए वितृष्णा भी हो आई थी, पर गुरु-सेवा के साथ-साथ एक सूक्ष्म-सी और भावना भी उसके दिल में आई थी—गुरु जी के बाद मिलने वाली गद्दी, इस गद्दी से जुड़ा यह डेरा, छोटा-सा तालाब, डेरे के नाम की चार एकड़ जमीन और कर्मेंद्र से एकल हो गए नाम के आगे-पीछे जुड़ने वाले दो शब्द—महंत और नाथ।

पर एकल को यह अफसोस भी था कि अभी उसके चीरा पड़ने की रस्म भी अदा नहीं हुई थी। आगामी पूर्णमासी को यह सब होना था। आस-पास के सभी नाथ-संप्रदाय के डेरों पर इस रस्म की सूचना भेज दी गई थी। वह यह सोच-सोचकर कई बार रोमांचित हो उठा था कि ग्यारह दिन सभी नाथ साधु-महात्मा उसकी नव-नाथ के रूप में पूजा करेंगे...उसे बड़ा मानेंगे और फिर ग्यारहवें दिन कानों को चीरकर उनमें कुंडल डाल दिए जाएँगे और वह कर्मेंद्र से महंत एकलनाथ हो जाएगा। पर अभी तो पूर्णमासी के कई दिन पड़े हैं—कहीं गुरु जी इससे पहले ही... वह धूनी के पास बैठा हुआ सोच रहा था...तो क्या हुआ, गद्दी तो उसी की रहेगी। तभी महंत शिवोनाथ ने उसे हाथ के इशारे से अपने पास बुलाया था। दीये की रोशनी में बुलावे का इशारा करते हाथ की उँगलियों की परछाईं एकल के ऐन चेहरे पर पड़ी थी। एकल ने जी कड़ा किया था—शायद फिर कै या मरोड़—पर उसने शुक्र मनाया था—भरी आवाज में उन्होंने केवल धूनी के पास बैठकर चिलम पीने की इच्छा जाहिर की थी। एकल ने उन्हें सहारा देकर धूनी के पास बिछी मृगछाला पर लगे आसन पर बिठा दिया

था। साफी भेकर उनके हाथ में दे दी थी। आसन के नीचे से सुल्फे की मटमैले हरे रंग की डली निकालकर उसे गर्माया था और फिर कुल्हड़े में से तमाखू निकालकर दोनों हथेलियों से मलकर वह सुल्फे की डली उसमें मिलाई थी। अँगूठे से दबाकर चिलम में तमाखू भरा था और धूनी में से एक अंगारी हाथ से पकड़कर चिलम पर रखकर गुरु जी की ओर बढ़ा दी थी। चिलम भरते-भरते एकल सोच रहा था—गाँव की गलियों में घुसने से पहले अलख निरंजन की आवाज जो कि कभी-कभी तो इतनी दूर इस डेरे में भी सुनी जाती थी, इतनी मद्धिम कैसे पड़ गई। आटे से भरी झोली और बाल्टी भर दूध-मक्खन इस ढलती उम्र में भी बिना कहीं बैठे, साँस उखड़े डेरे तक पहुँचते थे—कहाँ गई वह भारी शक्ति... किस रोग ने निचोड़ा गुरु जी के मल्ल से शरीर को?

महंत शिवोनाथ ने अब तक एकल की ओर एक बार भी नहीं देखा था। वे धूनी में सुलग रही एक बड़ी-सी लकड़ी को ही देखे जा रहे थे जिस पर सफेद राख की पर्त जम गई थी। चिलम खेंचते हुए उन्होंने काला-भूरा धुआँ छोड़ा था और उनकी आँखें थोड़ी फैल गई थीं। चिलम एकल की ओर बढ़ाते हुए उन्होंने कहा था, 'ये लकड़ी देख रहे हो एकल? देख रहे हो ना... तूने भी अपने शरीर पर यही सफेद राख पोत रखी है जो इस लकड़ी पर जमी है और मेरे शरीर पर भी अभी तक, बिस्तरे में रहने के बावजूद इस राख के दाग लगे हुए हैं...पर एकल, यह लकड़ी महात्मा तो नहीं ना हुई? एक बात और—राख की इस पर्त का यह मतलब तो नहीं न हुआ कि इस लकड़ी की आग बुझ गई है?' एकल ने कश खींचकर चिलम उनकी ओर बढ़ाते हुए कुछ कहना चाहा था पर महंत शिवोनाथ चिलम लेकर कश खींचते हुए आसन पर पड़ी गोलाई में तहाई हुई गुदड़ी के सहारे लग गए थे और दीये की ओर देखने लगे थे। उनका कभी बायाँ, कभी दायाँ हाथ उठता, भिन्न-भिन्न सवालिया-सी मुद्राओं में उँगलियाँ, जिन पर काले-लंबे नाखून काफी बढ़ गए थे, हिलतीं और हाथ अपने-आप ही गुदड़ी पर गिर जाता था। एकल को लगा था—गुरु जी बहुत कुछ कहना चाहते हैं पर कह नहीं पा रहे।

अभी परसों रात ही जब महंत शिवोनाथ बुखार में अधिक बोल रहे थे तो स्वयं स्वीकार किया था, 'एकल, मेरे मानवीय चोला छोड़कर किसी और चोले में प्रवेश के किस्से तुमने भी सुने कभी?' दीये की ओर देखते-देखते ही उन्होंने पूछा था जैसे दीया ही एकल हो। एकल ने गाँव वालों से काफी सुना था कि तेरा गुरु कभी शेर, कभी बकरी, कभी साँप बन जाता है... वह तब उस सुनसान वातावरण में इस प्रकार का सवाल सुनकर डर गया था...कभी गुरु जी अभी कोई

चमत्कार ना दिखा दें। वह कुछ हाँ या ना कहता तभी गुरु जी फिर हाथों को लहराते हुए पहले तो हँसे थे फिर बोले थे, 'वो क्या हुआ एकल... एक दिन शिखर-दुपहरी में गाँव का लंबरदार सरूपा डेरे की ओर आ रहा था। वह बड़ा चिपकू है और एक बार आकर साँझ होने तक उसने यहीं मेरा दिमाग चाटते-चाटते सुल्फा खींचते रहना था—पर मेरा मन उस समय एकांत चाह रहा था। मैंने...' वे फिर मुस्कराए से थे, 'मैंने पता है क्या किया? भीतर वाली कोठरी में एन सामने मृगछाला ओढ़ी और घुटनों-हाथों पर चौपाया बन गया। सरूपा लंबरदार ने 'गुरु जी आदेश' कहकर भीतर झाँका ही था कि ज्यों भागा... ज्यों भागा... गाँव में जाकर ही पीछे देखा होगा बेचारे ने।' वे फिर हँसने लगे थे...हँसते रहे थे। और खाँसी में उलझ गए थे। जब शांत हुए तो गंभीर भी हो गए थे, 'एकल, जब मैंने भी यह चर्चा किसी के मुँह से सुनी कि मैं खोड़ बदलता हूँ तो इससे मुझे अहं से भरी तुष्टि होने के साथ अपने-आप से नामालूम-सी घृणा भी हुई थी। पर न जाने क्यों मैंने उस अहं को और बढ़ाने के लिए एक दिन अपनी काली लँगोटी का साँप बनाकर उस पर सफेद राख के चकत्ते बना दिए थे और कोने में बैठकर उसे धागे से संचालित किया था। उस दिन वह वाकया देखा लाला शंकरलाल ने।' वे चुप हो गए थे...हँसे नहीं थे। काफी देर तक हाथों को लहरा-लहराकर बुड़बुड़ाते रहे थे... क्या मिला... लंबी दाढ़ी...जटा-जूट...साँड़-सी पतली देह...क्या हासिल किया... किसी और को भी क्या दे सका... और हाथ निर्जीव-से होकर जटाओं में उलझ गए थे।

एकल को उनकी इस स्वीकृति से एक नई श्रद्धा गुरु जी से हुई थी—एक सच्चे आदमी के प्रति होने वाली श्रद्धा।

और हाथों की उँगलियों की वही मुद्राएँ आज फिर बन रही हैं। एकल ने देखा कि धूनी में जल रही वह राख वाली लकड़ी कुछ ज्यादा ही जल रही है—मन किया कि थोड़ा पानी डाल दे पर कुछ सोचकर विचार को छोड़ दिया।

'एकल तुम भी तो पढ़े-लिखे हो—एक बात तो बताओ...महात्मा बुद्ध कभी दुबारा राजमहल में अपने बेटे और अपनी पत्नी को मिलने गए थे?' एकल अब तक समझ गया था कि गुरु जी मानसिक रूप से पीड़ित हैं और उन्हें कोई भी जवाब अपेक्षित नहीं है—अत: चुप ही रहा।

'खैर छोड़ो, यह तो अपने कमजोर तर्क के पक्ष में गवाह पेश करने वाली बात है... और फिर वे तो, कहते हैं कि, पूर्णता को प्राप्त हो चुके थे। गए भी होंगे तो लोगों ने, जो कि स्वयं उनके राज्य की ही प्रजा थे, और उनके शिष्यों ने उनकी इस मानवीय कमजोरी को भी दैविक या आध्यात्मिक घटना कहा होगा...प्रजा का कर्तव्य भी यही है कि अपने राजा के उज्ज्वल पक्ष को ही देखे, ह...ह...ह...'

वे फिर हँसने लगे थे। 'पर मैं, महंत शिवोनाथ... बिना किसी हिचक के स्वीकार करता हूँ एकल कि मुझे अपनी पत्नी की बड़ी ही तीव्रता से आवश्यकता महसूस हो रही है...हँसना नहीं एकल...कभी मत हँसना... आवश्यकता के रूप बदल सकते हैं पर उसके मायनों में कोई फर्क नहीं पड़ता... कोई फर्क नहीं पड़ता...स्वयं तो मैं यह सब पहले ही स्वीकार कर चुका हूँ पर आज तुम्हारे सामने भी यह सब स्वीकार करते हुए मुझे संतुष्टि मिल रही है—यहाँ इस धूनी के पास बैठे हुए अपनी पत्नी और बेटे—जिन्हें छोड़कर मैं भाग आया था—तन को भभूती रमा ली थी, कानों में कुंडल और तन पर काला चोला धारण कर लिया था—कभी नहीं भुला पाया, कभी नहीं भुला पाया एकल...भूलकर भी नहीं...' वे जैसे सब कुछ स्वयं से ही कह रहे थे। वे चुप तो हुए थे पर उनके हाथों की मुद्राएँ यूँ ही बन रही थीं।

एकल को उनके इस स्वीकार से कुछ आश्चर्यजनक नहीं लगा था, क्योंकि यही उद्विग्नता वह यहाँ इस डेरे में दिन-दो दिन ठहरने वाले हर साधू के चेहरे पर कम-ज्यादा देख चुका है। लेकिन उनके किसी के चेहरे पर भी इस कमजोरी के प्रति स्वीकार नहीं होता। हर कोई चिलम खींचता-खींचता ही सोता और चिलम खींचता-खींचता उठता हुआ 'जै भैरोंनाथ—जय गुरु गोरखनाथ' कहता रहा है मोह-माया त्याग के भर्तृहरी, भक्त पूरणमल आदि के बड़े-बड़े संदर्भों पर चिलम के धुएँ में बातें होती रही हैं पर प्रत्येक दाढ़ीदार चेहरे पर मोह की छाप भी मोह का जिक्र आते ही और गहराती रही है।

'थोड़ा पानी दे एकल और एक चिलम और पिला, मसाला थोड़ा ज्यादा मिला देना...'

एकल ने इस बार कुछ बड़ी डली की चिलम बनाई थी और अंगारी रखकर उनकी ओर बढ़ा दी थी। पानी का कमंडल भी बढ़ाया था पर गुरु जी 'अभी रखा रहने दो' का इशारा कर चिलम खींचने लगे थे। लगातार तीन...चार... पाँच कश काफी लंबे-लंबे खींचे थे। जिससे पूरी कोठड़ी सुल्फे के धुएँ और गंध से भर गई थी और चिलम में आग जल उठी थी। एक ही साँस में सारा तमाखू-सुल्फा धुआँ होकर बिखर गया था। उन्होंने खाँसते-खाँसते चिलम धूनी के पास औंधी कर दी थी। पर उसकी नली से अभी भी धुआँ निकल रहा था। एकल चाहता था कि उठाकर पानी दे दे ताकि इस सुल्फे से पैदा हुई गर्मी और प्यास बुझने से गुरु जी की खाँसी रुके पर उन्होंने खाँसते-खाँसते ही फिर शुरू किया था, 'पानी ?... ह... एक बात याद आ गई... एक बार बादशाह अकबर और बीरबल शिकार के लिए जंगल में घूम रहे थे। बादशाह को प्यास लग आई और प्यास

के साथ ही एक सवाल उभरा... बीरबल वह कौन-सी चीज है जो पीठ से लगे तो आदमी कलेजे में सीलक महसूस करे? बीरबल को जवाब तो सूझ गया था... पर कहा—समय पर बताऊँगा, महाराज! दोनों महल लौटे तो बादशाह का प्यास के मारे कलेजा धधक रहा था। नौकर पानी लाया। पर बीरबल ने उसे 'अभी ठहर' का इशारा किया था और नन्हें सलीम को लाकर बादशाह की पीठ पर चिपका दिया था। नौकर को कहा था अब दे, पर बादशाह ने पानी की ओर देखा तक नहीं था—नौकर को रख जाने का इशारा किया था। तब बीरबल नन्हें सलीम को इंगित कर बोला था...ये है वो चीज महाराज़...पीठ पर जिसके कोमल-स्पर्श मात्र से आप अपनी प्यास तक भूल गए... सुन रहे हो एकल...उसी नन्हें स्पर्श के लिए मेरे दिल की तड़प को मैं कभी नहीं मार सका... ये कुंडल भी नहीं मार सके...ये धूनी...ये काली अल्फी...ये भैरोंनाथ की मूर्ति...गुरु गोरखनाथ का नाम कुछ भी...कुछ भी उस तड़प को खत्म नहीं कर सका, मार नहीं सका। मेरा नन्हाँ-सा बेटा...प्यारा-प्यारा...नन्हाँ सा बेटा।' महंत शिवोनाथ की आँखों से आँसू गिरे थे, चमके थे और सुल्फे से रची दाढ़ी में खो गए थे।

उन्होंने बिना पिए ही कमंडल एक ओर सरका दिया था। उनके हाथों की उंगलियाँ, जिन पर लंबे-लंबे काले नाखून और भी बढ़ गए थे...फिर—क्या... कुछ नहीं...हत...आदि की मुद्राएँ बनाने लगी थीं।

उनके आँसू तो दाढ़ी में खो गए पर एकल के भीतर उनकी इस उद्विग्नता से कुछ जागा था। उसने अपने-आपको गुरु के मुकाबले में तौलना चाहा तो वह हिल गया था। कुछ भी तो फर्क नहीं...गुरु जी से मोह, डेरे से मोह...डेरे के बायीं ओर कुछ दिन पहले लगाए बड़-नीम-पीपल की त्रिवेणी से मोह...तालाब के वृक्षों के झुरमुट में रहते, सुबह-शाम उसकी एक पुकार पर नाचते-भागते आते मोरों से मोह। उसके मन ने सवाल किया था—फिर कौन-से मोह-त्याग की बात कही साधू-सन्तों ने? उसने अपने-आपको फिर टटोला था... कंधे पर झोली लटकाकर भिक्षाटन के लिए गया जब वह अलख-निरंजन की पुकार लगाता है तो क्या वह कभी भी भौतिकता से ऊपर उठ पाया है? अलख-निरंजन केवल शब्द और आवाज बन गले से निकलते हैं लेकिन मनवा तो इस आवाज से मिलने वाले चुटकी-भर आटा, पलिया-भर दूध—एक अँगुली घी की भिक्षा पर टिका होता है।

वह और गहरे गया तो उसने जाना कि अलख जगाने जाते समय उसके पाँव अजुधा पंडत के घर के आगे जाकर क्यों भारी हो जाते हैं। इसीलिए न कि उसके बेटे की बहू का कद-काठ, नैन-नक्श स्वयं उसकी पत्नी से हैं इसीलिए न चाहते

हुए भी वह घर के धुर भीतर तक झाँकता है। तब आगे बढ़ता है।

शिवोनाथ के नन्हें–कोमल स्पर्श के सन्दर्भ से उसे भी एक वैसी ही काल्पनिक–सी अनुभूति हुई थी। जब वह गरीबी से तंग आकर जिम्मेदारियों के बोझ से डरकर अपनी पत्नी को भूखे मरते अपने माँ–बाप, छोटे भाई–बहनों के बीच छोड़कर भागा था तो वह गर्भवती थी, क्या हुआ होगा उसे ...लड़का या लड़की...छह–सात साल का हो गया होगा...कैसा होगा...क्या वह भी हर माँ की तरह अपने बच्चे को थपकाकर सुलाते हुए झूठ–मूठ कहती होगी—सो जा मेरे राजा—मेरी रानी बेटी—कल तेरा बापू आएगा तेरे लिए रोटी–दूध लाएगा! और उसका यह स्वयं का झूठ उसे भीतर तक नहीं रुला देता होगा? यदि सयाना होने के बाद कभी बच्चे ने पूछ लिया—माँ कैसे हैं बापू...कहाँ गए हैं? तो क्या वह कह पाएगी भाग गया है हमें छोड़कर? उसे अपने–आप से घृणा हुई थी। और साथ ही आँखों में पानी आया था। कहीं गुरु जी उसकी इस कमजोरी को देख न लें—मुँह फेर लिया था। पर मुँह फेरते ही कोने में खड़ी भैरोंनाथ की काली मूर्ति, जिस पर उसने आज ही दोनों हाथों से सरसों का तेल चुपड़ा था—बड़ी भयंकर लगी थी और उसे लगा जैसे भैरोंनाथ के पाँव में बैठा काला भयानक कुत्ता अपनी सिंदूर लगी जीभ उसी की ओर निकाल रहा है।

कुछ दिन पहले ही तो सभी डेरों में उसके चीर पड़ने की सूचना देने के लिए तिथि निर्धारित करने से पहले गुरु जी ने उसे कहा था—देख ले एकल—फिर सोच ले...अभी बहुत वक्त है...भोग छोड़कर भागना तो आसान है पर यह जोग–बरत बड़ा कठिन है बच्चा! पर एकल के चेहरे पर पीछे हटने या नकार की रेखा नहीं आई थी। आज गुरु जी ने ये क्या कर दिया...क्यों मैं भीतर–ही–भीतर टूट–जुड़ रहा हूँ। उसने आँख का पानी पीने की कोशिश की तो वह गले–नाक में भर आया। और जब उसने उसे सुड़का तो महंत शिवोनाथ, 'रो रहे हो एकल?' पूछने के से स्वर में कहकर फिर दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए होंठों–ही–होंठों पर शिवो३म्... शिवो३म्... शिवो३म् कहकर चुप हो गए थे। थोड़ी देर बाद पूरी जलने जा रही उस लकड़ी को देखते–देखते फिर बोले थे, '...अच्छा... ला अब ला पानी और बढ़िया–सी दिल लगा के एक चिलम और भी पिला दे...हाँ, पिला ही दे एक चिलम तो...' एकल अब पहली बार कुछ हैरान–सा हुआ था... यह सीधे रूप में न कहकर कैसे कहा, 'हाँ पिला ही दे एक चिलम तो।' कहीं आज सुबह तक ही ये...?'

एकल ने पानी का कमंडल उनके हाथों में थमाया था और खुद अनमने दिल से चिलम तैयार करने लगा था। गुरु जी ने थोड़ा पानी पीकर कमंडल अपने पास

ही रख लिया था। एकल ने चिलम गुरु जी के हाथ में देकर साफी फिर भेई थी। इस बार एकल का भी दिल था एक–दो कश वह भी खींचेगा... पहले भी गुरु जी अकेले ही खींच गए थे... पर इस बार भी एकल के देखते–ही–देखते उन्होंने कई लंबे–लंबे कश लगाए थे। उनकी आँखें बाहर निकलने को हो गई थीं–भैरोंनाथ की लाल–लाल डरावनी आँखों की तरह। तभी उन्होंने चिमल को धूनी के पास लगभग फेंकते हुए एकल को कहा था, 'ब्रह्म मुहूर्त शुरू होने वाला होगा–वैसे तो कृष्ण पक्ष चल रहा है पर फिर भी देख के आ, चाँद कुछ दिखा या नहीं।'

एकल उठकर बाहर सुनसान में चला आया था। उसे ठंड–सी लगी थी। जब उसे तालाब के पेड़ों के झुरमुट में से कहीं भी चाँद नहीं दिखा तो वह जल्दी–जल्दी डेरे के ऊपर चढ़ने लगा ताकि चाँद देखकर फटाफट धूनी की गरमाई के पास पहुँच जाए; तभी उसे भीतर से सन...सं...सनं की–सी आवाज आई थी–वह वापिस ही एकदम दौड़ा था–कहीं गुरु जी...पर वह डेरे में नहीं बढ़ पाया था। वही महंत शिवोनाथ जो बुखार के मारे उठ भी नहीं पा रहे थे–एकदम नंगे खड़े थे–हाथ में कमंडल लेकर धूनी पर पानी छिड़क रहे थे, 'रुक जाओ एकल–वहीं रुक जाओ...' कमंडल एक ओर फेंककर उन्होंने घड़ियाल और हथौड़ी उठा लिये थे। और घड़ियाल को जोर से पीटने लगे थे। घड़ियाल की आवाज से तालाब के मोर 'म्याओं–म्याओं' करने लगे थे।

अभी से घंटा–घड़ियाल? इतनी रात गए? एकल को बड़ा अजीब लगा था पर गुरु जी उसी की ओर बढ़ रहे थे–बड़े ही धीरे–धीरे पर चीखते हुए, 'घंटा–घडियाल लोगों को नींद से जगाने के लिए होता है बच्चा, पर तू जागकर भी जान–बूझकर नहीं जागना चाह रहा...भाग जा... जल्दी कर...जैसे खड़ा है वैसे ही उल्टे पाँव...जल्दी कर...अगर एक कदम भी भीतर रखा तो ये घड़ियाल की हथौड़ी तेरा सिर फाड़ देगी...भस्म कर दूँगा भूतनी के...।' शिवोनाथ चीख रहे थे...जोर–जोर से चीख रहे थे... और घड़ियाल की टनन टें–टन्न–टें–टन्न के साथ–साथ मोरों की 'म्याओं...म्याओं...' से वहाँ कुछ और ही प्रकार का वातावरण बन गया था–बिल्कुल वैसा ही, एकल को याद आया जब गुरु मच्छंदर नाथ जोग से भटककर भोग में रमण करने के लिए वेश्या के पास चले गए तो उनके चेले गोरखनाथ ने उन्हें इस भटकाव से वापिस लाने के लिए वेश्या के दरवाजे पर मृदंग पीटना शुरू कर दिया था... गोरखनाथ की योग–साधना से भीतर लेटे मच्छंदर नाथ को मृदंग की हर थाप शब्द बनकर सुनी थी–चल मच्छंदर गोरख आया...चल मच्छंदर गोरख आया। यह कैसी विचित्रता है, दोनों स्थितियों में कितनी साम्यता है... वहाँ चेला, गुरु को भटकाव से निकाल रहा था और यहाँ गुरु चेले को।

महंत शिवोनाथ भी घंटा जोर-जोर से बजा रहे थे—टन टन! टन-टन! जो कि एकल के जहन में 'लौटो एकल, लौटो एकल!' बनकर उभर रहा था।

धूनी पर पानी पड़ने के कारण मद्धिम-मद्धिम-सा भापनुमा धुआँ उठ रहा था। पर वह बड़ी लकड़ी अभी भी सुलग रही थी। 'सुना नहीं बच्चा...मैं यह घड़ियाल इसलिए भी जोर-जोर से पीट रहा हूँ ताकि कोई हमारी इस तू-तू मैं-मैं को न सुन सके—और सुन...जाना तो तुझे पड़ेगा ही क्योंकि मैं तेरे भीतर का जगा आदमी देख चुका हूँ और यह धूनी भी मैंने इसीलिए बुझाई है...जय भोलेनाथ... ताकि जलती धूनी किसी और करमेन्दर को एकल बनने के लिए आकर्षित ना करे...अलख निरंजन...जय गोरखनाथ...हाँ एक बात और...' वे चीख रहे थे—टन्न...टें...टन्न...टें...गुरु गोरखनाथ के मृदंग की थाप-सा घड़ियाल का कंपन वह अपनी छाती-पेट में महसूस कर रहा था। उसके कानों में इस आवाज के साथ-साथ मोरों की 'म्याओं-म्याओं' से खुजली-सी होने लगी थी—पर वह अभी हिला नहीं था— सिल-पत्थर का हो गया था जैसे। 'मेरा गाँव तेरे गाँव के रास्ते में ही पड़ता है—जै भैरोंनाथ—मेरी पत्नी अब तक बूढ़ी हो चुकी होगी और हो सकता है मेरे वियोग में तड़प-तड़पकर पूरी हो चुकी हो...जय जलंधर नाथ...जय मच्छंदर नाथ... मेरा नन्हां-सा वह प्यारा-प्यारा बेटा अब तक तेरे जितना हो चुका होगा... जो भी मिले कहते जाना कि मैं मिलना...नहीं...नहीं, अलख निरंजन... नहीं एकल तू भाग जा बस...मेरे कान फट चुके हैं...तू अभी यहीं खड़ा है... ठहर मैं बनाता हूँ तुझे नवनाथ...जय गुरु गोरखनाथ...जय बाबा भैरोंनाथ।' और महंत शिवोनाथ लकड़ी की हथौड़ी तानकर उसकी ओर बढ़े थे पर तभी उन्होंने घड़ियाल और हथौड़ी दीवार पर दे मारे थे, घड़ियाल दीवार से टकराकर भन्नाता हुआ उसके पाँव पर आकर लगा था। एकल डर के मारे काँप गया था। उन्होंने चिलम उठाई थी—यह भी तुझे इधर ही खींचती रहेगी— कहते हुए उसे भी दीवार पर दे मारा था। वे काँप रहे थे। 'सँभल जा भूतनी के...सँभल जा... यह सब झूठ है... झूठ है... तू अपना नाम याद कर—क्या नाम है तेरा? याद आया? ...लेता जा अपना नाम वापिस जो सारी उम्र यहाँ इस धूनी और सुल्फे की चिलम में सुलगता रहता...नहीं याद आया तो मैं याद दिलाऊँ...कर्मेंदर... करम।...करम...। तू अभी यहीं खड़ा है... ?' और देहरी पर पत्थर बनकर दरवाजे के साथ लगे खड़े एकल को उन्होंने जोर से बाहर धिकाया था और और भड़ाक से दरवाजा बंद कर लिया था।

(प्रकाशित : वर्तमान साहित्य अप्रैल 1987, बणछटी 1987)

•

पर्यावरण

सोमवार को मास्टर जगदीप जब स्कूल के लिए चला तो खाली जरीकेन के साथ उसकी गृहस्थी की कुछ चिंताएँ भी साइकिल के पीछे लद गई थीं। वह उस उम्र को पार कर चुका है जब वे 'मेरे देश की धरती सोना उगले, उगले हीरे–मोती' गुनगुनाता हुआ चला करता था। अब तो उसे अगले गाँव में स्कूल तक पहुँचने का यह छः कि.मी. का सफर ही थकाने लगा है। साइकिल के चक्कों की तरह उसकी चिंताओं का सिलसिला भी चलता ही रहता है। चिंता में से चिंता, चिंता में से चिंता जब निकलती ही जाती है और हल कोई नहीं निकल पाता तो उसके मुँह से निकल जाता है—छोड़ यार जगदीप! तू कौन–सा अकेला है जो सबके साथ बनेगी तेरे साथ बन जाएगी। उसका दिमाग इस तर्क से आमतौर पर सहमत नहीं होता और मास्टर उलझा ही रहता है।

असाढ़ पूरा गुजर चुका है पर बरसात का कहीं भी नामोनिशान नहीं है। शनिवार की रात कुछ आसार बने थे, लेकिन कुछ कनियाँ–सी डालते ही बादल बिखर गए थे। जिनके खेतों में ट्यूबवैल है या नहर का पानी लगता है, उन्होंने जैसे–तैसे धान की रोपाई का काम या तो पूरा कर लिया है या शुरू किया हुआ है। मास्टर जब अपने दो एकड़ के क्यारों में धूल उड़ती देखता है तो उसका लहू जलता है। उसके पड़ोसी खेत वाले ने उसे शुरू में ही कह दिया था कि तेल की किल्लत है। पानी लेना है तो तेल का प्रबंध कर ले और ट्यूबवैल चला ले। पर कहाँ है तेल? पैट्रोल पंपों पर ट्रैक्टरों की ही मील–मील लंबी लाइनें लगी रहती हैं। खूब ब्लैक चल रही है। पिछले दस दिनों से छुट्टी के बाद वह शहर जा रहा है और खाली जरीकेन वापिस ले आता है। आज वह निश्चय करके चला है कि कितनी ही ब्लैक देनी पड़े वह खाली नहीं आएगा।

मास्टर के दिमाग में धुँधला–सा एक शब्द उभरा और फिसल गया है। उसने दिमाग पर जोर डाला लेकिन उस शब्द की जगह बेटे की चिंता ने ले ली।

बड़े बेटे का क्लर्क का इंटरव्यू आया है। कई दिनों की भागदौड़ के बाद मास्टर इस नतीजे पर पहुँचा है कि बिना पैसे के काम हो ही नहीं सकता। 'कैसा जमाना आ गया है' वाली खीझ हल्के से उभरी और दब गई। उसकी

जगह मास्टर सोच रहा है, 'पैसे दे या न दे? कितने दे और किसको दे? इतने पैसों का जुगाड़ एकदम होगा कैसे? पैसे फँस गए तो?'

चालीस के आस-पास की उम्र की एक विडंबना होती है कि इस समय आदमी कुछ फँसा हुआ और उलझा-उलझा हो जाता है। ना वह पुराने को एकदम नकारता है और न पूरे मन से नए को ही स्वीकार पाता है। बड़े-बूढ़ों में बैठकर वह क्रांतिकारी और नए विचारों वाला होता है लेकिन युवाओं में आते ही वह दकियानूसी लगने लगता है। मास्टर जगदीप भी ऐसी ही उलझन से गुजरते हुए सोचने लगा है—लड़की ने दसवीं कर ली है। कालेज के दाखिले भी लगभग खत्म होने वाले हैं। दाखिला दिलवाए या न दिलवाए? अभी तक वह लाख झख मारकर भी निर्णय नहीं ले पाया है।

गाँव से सुबह एक बस चलती है। वह इतनी ठुक जाती है कि सवारियों का तेल निकल जाता है। ऐसे में लड़कियों का उस बस में हर रोज कॉलेज जाना और आना क्या ठीक रहेगा? साइकिल पर आने-जाने का तो बिल्कुल ही टेम नहीं रहा। बिना पढ़ाई के अच्छा लड़का नहीं मिलता। कोई डिप्लोमा बगैरा करवाएँ तो उसके लिए भी शहर ही जाना पड़ेगा। लड़की कहती है पढ़ूँगी। गाँव की चार-पाँच और लड़कियाँ भी तो बस में ही जाती-आती हैं। ठीक कहती है वह। अभी शादी की उम्र भी तो नहीं हुई है। लेकिन उसकी माँ (मास्टर की पत्नी) तो नहीं मान रही। वह तो कहती है 'जमाना खराब है'। लड़का देखना शुरू कर देना चाहिए। प्राइवेट भरवा दें तो कैसा रहेगा? लेकिन सारा दिन घर का काम करने के बाद कहाँ टेम मिलता है किताबें देखने का?

अपने गाँव के एकाध छोटे लड़के की नमस्ते लेता और उसके हमउम्रों के सवालों के संक्षिप्त से उत्तर देता चलता है मास्टर जगदीप। 'राम-राम मास्टर! और के हाल हैं? दिखता नहीं आजकल? जीरी लगा दी क्या? छोरे की नौकरी का क्या रहा? आज तो दिखे तेल लेकर आएगा?'

मास्टर को पता ही नहीं चलता कि कब उसके मुँह से 'बढ़िया है भाई। अच्छी गुजर रही है' निकल जाता है। बैलगाड़ियों, डंगर-ढोरों, घास के गट्ठर उठाए औरतों को पीछे छोड़ता मास्टर स्कूल वाले गाँव की सीमा में प्रवेश कर जाता है। उसकी चिंताओं के जोहड़ पर तेल अभी भी सतरंगा बनकर तैर रहा है। तेल नहीं मिला तो क्या खाएँगे? इतनी तनखा में क्या पूरे साल मोल का अनाज खाया जा सकता है? कहती है लड़का देखना शुरू कर देना चाहिए— जैसे कि लड़के कहीं यूँ ही धरे हैं। चारों कूंठ हिल जाती हैं घर की लड़का

देखने तक ही।

चौराहा आ गया है। यहाँ से पूर्व की ओर शहर को सड़क जाती है। मास्टर पसीने से भीग गया है। हवा एकदम बंद हो गई है। उसने पूर्व की ओर देखा। सूरज से काफी नीचे धरती में से एक बड़ा-सा बादल उग रहा है। उसे आशा बँधी। उसने ध्यान से देखना चाहा कि यह किधर बढ़ रहा है। सूरज तेज तप रहा था—उसकी ओर देखने के कारण मास्टर की नाक में कुछ सरसराहट-सी हुई और छींक आ गई। साइकिल का संतुलन बिगड़ गया। सँभलते-सँभलते भी वह गिर गया। जरीकेन खड़खड़ाकर दूर जा गिरी। बैलगाड़ी वाले को नजर-अंदाज करने के लिए उसकी ओर पीठ करके पहले जरीकेन उठाई। साइकिल खड़ा किया तो देखा उसका हैंडिल टेढ़ा हो गया है। 'चोट तो नहीं लगी मास्टर जी?' बैलगाड़ी वाले ने पूछा तो मास्टर झेंप गया। उसे उसका यूँ पूछना अच्छा नहीं लगा क्योंकि जब तक कोई नहीं देखता या यूँ नहीं पूछता तब तक आदमी को गिरने का कोई मलाल मन में नहीं होता। उसने साइकिल की ओर देखा जो मदारी के रूठे हुए बंदर की तरह टेढ़ा होकर अकड़ा खड़ा है और कहा, 'ना भाई ना। यो मनें जाणै, मैं इसने जाणूँ, चोट क्यूँ मारेगा?'

चेहरे पर मुस्कराहट लाने की कोशिश करते हुए उसने अगला पहिया अपनी दोनों टाँगों के बीच कसा और हैंडिल सीधा किया है। सफेद धुला पाजामा पसीने से भीगा होने के कारण रेत-मिट्टी लगते ही खराब हो गया है। उसने खीझ और बेबसी की हालत में जरीकेन साइकिल के पीछे जँचाई और चलने को हुआ तो शहर की ओर से आ रहे लड़के ने दूर से ही नमस्ते की और जल्दी-जल्दी पैडल मारकर उसके पास पहुँचकर उतर गया। मास्टर जानता है इस लड़के को। इसने शहर में नाई की दुकान की हुई है। बाहरली चुंगी से थोड़ा आगे इसने एक खोखा टिकाया हुआ है जिसमें से रोज की रोज दाल-रोटी निकालकर लाता है।

'आज यो जरीकेन कहाँ उठाई जी? शहर तो बंद है।' मास्टर को लगा जैसे वह फिर धम से गिरा है। उसे ध्यान ही नहीं रहा था कि यह लड़का रोज सुबह गाँव से शहर जाता है लेकिन आज आ रहा है तो पूछ ले कि लौट क्यूँ आया? उसने सामान्य बने रहने की कोशिश करते हुए पूछा 'क्या बात हुई?'

'बात क्या होनी थी मास्टर जी। यो तो रोज-रोज का राग हो गया। कल फिर पंजाब में चालीस भून दिए उग्रवादियों ने। यू.पी. में भी बता रहे थे कि कई शहरों में कर्फ्यू लगा हुआ है।' मास्टर उसकी खबरनुमा बात सुनते हुए अपनी

तेल की चिंता में डूबने लगा तो लड़के ने कहा 'आप तो पढ़े-लिखे हो मास्टर जी। इस देश का क्या होगा?' न तो सवाल नया था न मौका ही, अतः मास्टर को बना-बनाया जवाब देने में कोई दिक्कत नहीं हुई 'देश तो भगवान भरोसे है, भाई। उसे तो वही चला रहा है।' लगता था लड़का संतुष्ट नहीं हुआ है। उसने एक और सवाल किया 'वो तो ठीक है मास्टर जी। आप फिर भी विद्वान हो। सब समझते हो। गरीबों का ये हाल होगा?' मास्टर ने देखा कि लड़के के चेहरे पर चिंता के साथ-साथ मायूसी भी है। शायद आज की रोटी को लेकर हो। मास्टर ने तैयार-शुदा जवाब फिर से उसकी झोली में डाल दिया 'गरीबों का भी वही रखवाला है। बाकी ये है कि कुछ भी हो मरता है गरीब ही।' लड़का अब भी संतुष्ट नहीं हुआ। फिर भी उसने कहा 'हाँ यो तो सही कही जी आपने।' लड़के को यूँ खाली हाथ लौट आना निरर्थक लग रहा था शायद। उसने एक कीकर के नीचे साइकिल को स्टैंड पर खड़ा किया और उकड़ूँ बैठकर बीड़ी पीने लगा।

मास्टर को ऐसे मौकों पर गर्व भी होता है कि वह विद्वान है लेकिन पछतावा भी होता है कि वह गाँव में होने के कारण अखबार वगैरह नहीं पढ़ पाता। खबरें सुनने का भी उसे खास शौक नहीं है। उसे ऐसी सभी खबरों का पता इसी तरह इधर-उधर से सुनकर ही लगता है। वह अपनी पढ़ाई को लेकर भी कभी-कभी कुढ़ता है। मैट्रिक के बाद दो साल का बेसिक कोर्स किया। दो-तीन साल बेकार घूमने के बाद मास्टरी में नंबर पड़ गया। तब से मास्टर ही है। जबकि उसके बाद लगे कई लोग प्राइवेट पढ़-पढ़कर या तो और कहीं अच्छी नौकरियों पर चले गए हैं या हाई स्कूलों में मास्टर लग गए हैं। कई बार तो उसे हिंदी में आए सरकारी सर्कुलर भी दूसरे अध्यापक से पढ़वाने पड़ते हैं। अब वह भी बी.एड. करने के लिए लंबी छुट्टी चला गया है। कभी-न-कभी वह भी हाई स्कूल में पहुँच जाएगा। 'क्यों पछतावा है जगदीप? तू कौन-सा अकेला है ऐसा?' सोचकर उसने पैडलों पर जोर दिया। स्कूल की धुँधली-धुँधली पछीत दीखने लगी है।

बैलगाड़ियाँ, साइकिल वाले, डंगर-ढोर अब सामने से आ रहे हैं। 'नमस्ते मास्टर जी, राम-राम मास्टर जी। तेल मिल रहा है क्या जी? कुछ बूँद पड़ी जी परसों? और जी मास्टर जी कोए नई ताजी?'

मास्टर सबके उत्तर देता हुआ बार-बार उभरते, धुँधलाते और गायब होते उस शब्द को स्पष्ट याद करने के लिए झुँझलाता है, तभी उसके ध्यान में बच्चे

और स्कूल छा जाते हैं।

सैशन के शुरू में ही जनगणना का काम आन पड़ा था। मई में लोकसभा और असैंबली के चुनाव करवाने पड़े। अब दूसरा अध्यापक लंबी छुट्टी लेकर चला गया है। सारे बच्चे उसे ही सँभालने हैं। लेकिन वह जल्दी ही दिमाग को ज्यादा शर्मिंदा होने से बचा लेता है, 'छोड़ यार जगदीप। तू कौन-सा अकेला ऐसा कर रहा है? और फिर इसमें तेरा क्या कसूर है? सरकार को बच्चे पढ़वाने हैं तो और मास्टर भेज दे।'

बेशक उसने यह सोचा जरूर लेकिन फिर भी उसने आज थोड़ा-बहुत पढ़ाने का विचार बना लिया है। कुछ बच्चे तो ऐसे हैं कि अगर उनको ठीक पढ़ने का माहौल मिले तो वे पक्का आगे निकल सकते हैं। ऐसी बात भी नहीं कि वह पढ़ाना नहीं चाहता। लेकिन वह खुद नहीं जानता कि ऐसा क्यूँ नहीं हो पा रहा। उसका ध्यान तभी अपनी योजना पर चला गया है। कई दिन हुए उसने कुछ अति उत्साहित होकर निर्णय लिया था कि वह बच्चों के लिए नक्शे और ग्लोब जरूर लाएगा चाहे अपने ही पैसों से लाने पड़ें। वह ला ही नहीं पाया। फिर उसके दिमाग में आया कि क्यों न इस बार 14 अगस्त को लड्डू कुछ कम लाए जाएँ और पैसे बचाकर नक्शे और ग्लोब लिये जाएँ। उसे बात कुछ जँची नहीं। पंचों ने और सरपंच ने जो कहा, मानना है। उनकी तो राजनीति ही खत्म नहीं होती।

वह अकेला क्या-क्या सोचे? ऊपर से सरकार के ऊँटपटाँग काम। कभी फैमिली प्लानिंग के केस दो तो कभी लोगों को फिक्स डिपाजिट करवाने के लिए कहो और उनका अकाउंट नंबर आगे भेजो। और इनसे भी ऊपर पूरे साल सिर पर लटकती बदली की तलवार। उसे गुस्सा आता है अपनी यूनियन पर कि अभी तक वह तबादला-नीति लागू नहीं करवा सकी है। हर समय बदली का भय कहाँ मन से काम करने देता है।

नजदीक पहुँचने पर मास्टर ने देखा कि स्कूल के बाहर सड़क पर ही चौकीदार खड़ा है। मास्टर का माथा ठनका। लेकिन वह जल्दी ही मन को समझा लेता है। 'कुछ करवा लो। चाहे तो अपने घर के बालक पिटवा लो प्यारो! नौकरी करनी, तनखा लेनी।' चूँकि यह एक ईमानदार तर्क नहीं है अत: उसे यह मुहावरा भी साथ ही याद आ जाता है—'छुरी खरबूजे पर गिरे या खरबूजा छुरी पर, नुकसान खरबूजे का।' फिर निश्चय करता है—'आज तो पढ़ाना ही है।'

'राम-राम मास्टर जी' कहकर चौकीदार ने साइकिल पकड़ा तो मास्टर को अच्छा लगा। चौकीदार ने साइकिल ले जाकर काफी आगे एक कमरे की दीवार के साथ छाँव में खड़ा कर दिया और आकर मास्टर से ऐसे ही पूछा– 'तेल लाओगे जी आज?'

'देखेंगे। हाँ, कैसे आया?' मास्टर ने उसे झटपट टालने के लिए पूछा। दो-तीन बच्चे चाबी लेकर कमरों में टाट लेने चले गए हैं। एक बड़े से लड़के को मास्टर ने नल से ठंडा पानी निकालकर पिलाने को कहा है।

'आज लंबरदार के पोते की छठी है। जीम्मणवार होवेगी। टाट मँगवाए हैं।' चौकीदार ने बताया तो मास्टर ने कहा, 'अरे भई, बड़ी मुश्किल से तो सरपंच से लड़-झगड़कर चार टाट मँगवाए हैं। वही तू ले जाएगा। बच्चे कहाँ बैठेंगे?' मास्टर जानता है कि कोई नई बात नहीं है और उसका विरोध भी कहीं दर्ज नहीं होगा फिर भी उसने अपनी असहमति चौकीदार को सुना दी है।

इनकी कहीं नी पुसाक मैली होती जी। ये सारा दिन इसे माटी में खेलें हैं। मास्टर ने चौकीदार की बात का कोई जवाब नहीं दिया। बच्चे टाट उठा लाए और छीना-झपटी करने लगे तो चौकीदार ने उनसे टाट झपटे, कंधे पर डाले और चला गया। बच्चे ऐसे देखने लगे जैसे कि तख्ती पोतते-पोतते खड़िया की डली हाथ से छूटकर जोहड़ में फिसल गई हो।

मास्टर का पसीना सूखने लगा है। पाजामे के दाग भी खूब गहरा गए हैं। उसने साफ करने की कोशिश की लेकिन वे और फैल गए। कुछ बच्चे मास्टर के मुँह की ओर देख रहे हैं कि कब मास्टर जी घंटी बजाने को कहें और वे भागकर खूब जोर-जोर से टन्न-टन्न करें। इधर-उधर कुछ बच्चे अभी भी खेल रहे हैं।

मास्टर योजना बना रहा है आज इन्हें कैसे बिठाया जाए, क्या पढ़ाया जाए और कैसे पढ़ाया जाए?

'चलो रे लाइनें बनाओ, चलो।' मास्टर ने काफी ऊँची आवाज में कहा है और फिर धीरे से साथ खड़े लड़कों की ओर बिना देखे ही उन्हें घंटी बजाने को कहा है। सुनने की देर थी कि वे कई जने एक साथ दौड़े हैं। मास्टर उन्हें तेज दौड़ते देखकर हमेशा खुश होता है। वह कितने सालों से बच्चों को दौड़ते हुए देख रहा है। वह हैरान भी होता है कि ये बिजली की तरह दौड़ने वाले बच्चे बड़े होकर कहाँ गायब हो जाते हैं। घंटी बजाते-बजाते बच्चे उलझ पड़े हैं। मास्टर ने उन्हें वहीं से धमकाया और लाइनों में खड़े होने को कहा है।

प्रार्थना होने लगी है लेकिन हाजरी हमेशा की तरह काफी कम। कुछ बच्चे अभी भी आ रहे हैं—अकड़े, रूठे हुए, टेढ़े-टेढ़े चलते हुए। एक बच्चा अपनी दादी से हाथ छुड़ाकर घर भागने के लिए पाँव पटक रहा है। एक थोड़ा-थोड़ा लाइनों की ओर बढ़ रहा है, लेकिन रोता-रोता और घूँघट काढ़े खड़ी अपनी माँ की ओर बार-बार देखता हुआ। मास्टर उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता क्योंकि वह जानता है कि यह सिलसिला काफी देर तक चलेगा।

मास्टर ने प्रार्थना के बाद आज सावधान-विश्राम भी नहीं करवाया है। पहली-दूसरी को एक पेड़ के नीचे बिठा दिया है। आज उनके पुराने टाट भी छिन गए हैं। उनसे कुछ हटकर एक पेड़ के नीचे तीसरी बिठा दी है। और अपने पास चौथी-पाँचवीं रख ली हैं। वे फटे टाटों पर बैठ गए हैं। मास्टर ने तीसरी के दो बच्चों को पहली-दूसरी को काम करवाने और शोर न करने देने की कहकर तीसरी को खड़े होकर ऊँची-ऊँची आवाज में बारह और तेरह का पहाड़ा याद करने को कहा। चौथी-पाँचवीं को झटपट अपनी कापियाँ निकालने को कहा। जगदीप मास्टर एक-एक बच्चे की कापी चैक कर रहे हैं और समझाते हुए पैन से गलती भी निकाल रहे हैं। पाँचवीं खत्म हुई तो उन्हें हिसाब की प्रश्नावली के सवाल करने देकर चौथी कक्षा की लाइन की ओर घूमे। वे उन्हें समझाते हुए एक-एक का कान भी मरोड़ रहे हैं। 'काम अधूरा क्यूँ है? हाँ, भैंस चराने चला गया था! अच्छा तो स्कूल में अपने बापू को भेज देता। हाँ, तूने थोड़ा-सा घी कापी को भी खिला दिया—ये चिकनी कैसे हुई? सँभाल कर क्यूँ नहीं रखते। हाँ, हल की मूठ पकड़ोगे? सीरी लगोगे? सिपाही बनोगे, मास्टर बनोगे, पटवारी बनोगे, तुम डी.सी. क्यों नहीं बनते? नालायकों के दिमाग का लघुत्तम निकला पड़ा है।' बोलते-बोलते मास्टर को लगा जैसे वह गलत कह रहा है। इनमें कई बच्चे तो ऐसे हैं कि अगर इन्हें ठीक वातावरण मिले तो कहीं तक भी जा सकते हैं। अतः मास्टर ने भूल सुधारी, 'नहाकर क्यों नहीं आते... तेल क्यूँ नहीं लगाते? सरसों भी ब्लैक में मिलता है क्या?' बोलते-बोलते ही मास्टर का ध्यान पूर्व की ओर चला गया है। उसकी आँखें बादल पर ही अटक गईं। इतनी घुटन है फिर भी यह इधर क्यों नहीं बढ़ रहा। सोचते-सोचते मास्टर बोल रहा है, कान मरोड़ रहा है लेकिन बादल पर से ध्यान नहीं हटा पा रहा है।

काफी दूर सड़क पर खड़ी कीकरों के बीच से धूल का एक गुब्बार उठा और मास्टर को कार जैसी झलक दिखाई दी। गाँव में कारें आना कोई विशेष

बात नहीं है अत: उसने कोई ध्यान नहीं दिया। पर कार की ही तरह एक झलक के रूप में यह अंदेशा भी उभरा कि कही कोई अफसर न हो? उसे अपना यह अंदेशा फिजूल भी लगा क्योंकि पिछले तीन सालों से वह इस स्कूल में है और इस दौरान कभी भी कोई अफसर यहाँ नहीं आया है। उसने बादल पर से भी नजरें हटाईं और पढ़ाने लगा। पाँचवीं वालों ने वह प्रश्नावली कर ली है। उसने दो-तीन बच्चों की कापियाँ चैक कीं। वह आह्लादित हो रहा है कि ये बच्चे किसी भी हाई स्कूल में जाकर उसे गालियाँ नहीं दिलवाएँगे। मास्टर को पाँचवीं से विशेष स्नेह है क्योंकि उसने इन्हें दूसरी क्लास से पढ़ाना शुरू किया था। उनकी कापियाँ कुर्सी पर इकट्ठी करवाकर पूरे स्नेह, आह्लाद और उत्साह से उसने उन्हें अपने चारों ओर खड़ा किया और उनके बीच खड़े-खड़े ही अगली प्रश्नावली समझाने लगा। पहली-दूसरी की ओर से शोर उभरने लगा तो उसने वहीं से चिड़िया उड़ाने की तरह दबका मारा। अन्य बच्चों को कभी पानी, कभी पेशाब की छुट्टी देता और उनकी शिकायतें सुनता हुआ वह पढ़ा रहा है।

कार उससे कुछ दूर सड़क पर आकर रुकी तो वह चौंका। कार से एक लड़का भागकर उतरा। उसके हाथ में कुछ कागज है। उसने आते ही पूछा कि यहाँ का इंचार्ज कौन है—डी.ई.ओ. मैडम बुला रही हैं। मास्टर डी.ई.ओ. का नाम सुनकर औसान भूल गया। वह हैरान हुआ कि वह अंदर चैकिंग के लिए क्यूँ नहीं आई। स्लेट पुस्तक वापिस करते हुए सभी बच्चों को शोर ना करने की हिदायत दी और अपने भीतर विश्वास इकट्ठा करता हुआ चल पड़ा है। उसे पाजामे पर लगे दाग अखरने लगे हैं, जिन्हें कि वह भूला हुआ था। उसे प्रसन्नता हो रही है कि डी.ई.ओ. ने उसे पढ़ाते हुए जरूर देखा होगा। वह सोचने लगा है, 'अगर मूड ठीक हुआ तो दूसरा अध्यापक जल्दी भेजने की प्रार्थना करूँगा।' बेटे के इंटरव्यू के बारे में भी बात करने में क्या हर्ज है। मौका मिला तो तेल की पर्ची के बारे में भी कहा जा सकता है। स्कूल की चारदीवारी, गेट और एक कमरे की छत के बारे में भी इन्हें ही कहना चाहिए। यहाँ की पंचायत तो सारा दिन राजनीति में ही उलझी रहती है। वह कुछ नहीं करेगी। छोड़ यार जगदीप, तूने कौन-सा यहीं रहना है। पता नहीं कब बदली के आर्डर आ जाएँ अपने बेटे के बारे में ही बात करनी चाहिए। कितना अच्छा हो अगर मैडम पाँचवीं वालों की कापियाँ देख लें। सोचते-सोचते उसने दूर से ही हाथ जोड़कर नमस्ते कहा।

'तुम ही तो यहाँ इंचार्ज?' उसने सीट पर बैठे-बैठे ही पूछा।

'जी-जी हाँ मैडम जी'– दूसरे अध्यापक लंबी छुट्टी–।

'कोई बात नहीं।' मैडम ने चेहरे पर रूमाल को स्याही चूस की तरह लगाते हुए कहा है, 'पीछे-पीछे ट्राली आ रही है। उसमें से चार सौ पौधे तुम उतरवा लेना।' कहकर उसने स्टैनो से रिसीव करवाने के लिए कहा। 'पौधे? मैं समझा नहीं जी?' मास्टर ने हैरान होकर झिझकते हुए कहा। 'क्या बात तुम्हें पर्यावरण वाला सर्कुलर नहीं मिला था?' डी.ई.ओ. ने एक्सप्लेनेशन के लहजे में पूछा तो 'पर्यावरण' शब्द मास्टर के दिमाग ने एकदम ऐसे उगला जैसे स्टेशनों पर भार तोलने वाली मशीन भार और किस्मत का टिकट उगलती है। अब ध्यान आया उसे कि यही शब्द था जो कि सुबह से उसे परेशान कर रहा है 'हाँ वो तो आया था जी मैडम जी, पर इतने पौधे मैं लगाऊँगा कहाँ?' हिचकते हुए मास्टर ने कहा।

दरअसल, जब सर्कुलर आया था तो मास्टर पर्यावरण का इतना ही अर्थ निकाल पाया था कि पेड़-पौधे लगाने चाहिए। उसने बी.ए. पास अपने लड़के से भी पूछा था। उसने भी इसका सरल हिंदी में अनुवाद पेड़-पौधे लगाना ही किया था। एकाध बार उसने कहीं कोई अखबार, पत्रिका उलटते-उलटते हुए भी यह शब्द देखा था। रेडियो पर भी उसके कानों में पड़ा था, लेकिन वह इस शब्द के साथ एकतरफा परिचय ही बना पाया था। ऐसा परिचय जैसे वह तो नाम और शक्ल-सूरत से मुख्यमंत्री, मंत्री, डी.सी. या इस मैडम को जानता है लेकिन इनमें से कोई भी उसे नहीं जानता।

'लो भई लो। हमें देर हो रही है। आगे भी हमने काफी स्कूल कवर करने हैं।' कहकर उसने फिर, हल्का-हल्का रूमाल लगाकर पसीना पोंछा। वह काफी तंग लग रही थी। उसकी तंगी और बढ़ गई जब मास्टर ने कहा, 'ना जी, ना। झुठी हामी भरे-खिंचा-खिंचा फिरे। चार सौ क्या यहाँ तो दस की जगह नहीं है।'

झुँझला उठी है डी.ई.ओ.। उसे इस तरह के उत्तर की तो अपेक्षा ही नहीं थी। ज्यादा झुँझलाहट उसे अपने पद की मर्यादा और इस मास्टर के दिमाग की सीमाओं पर हो रही है। वह साफ-साफ यह नहीं कह पा रही है कि 'सड़ने देना, सूखने देना, बेशक फेंक देना, बच्चों में बाँट देना, खेल लेंगे पर हमारी फाइल का पेट भरो। और यह बुद्धू समझ ही नहीं रहा। किसने मास्टर बना दिया इसे?'

उसे झुँझलाहट इस बात पर भी आ रही है कि जिला प्रशासन की मीटिंग में खुद उसने भी यह सवाल उठाया था कि कई स्कूलों में इतनी जगह ही नहीं है। कुछ स्कूल किराए की इमारतों में चल रहे हैं और उनमें से कुछेक तो दूसरी मंजिल पर हैं। उनका क्या किया जाए? उसका उपहास उड़ाने की तरह कहा था डिप्टी कमीश्नर ने, 'आप नई नहीं हैं, मैडम! इतना तजुर्बा तो आपको हो ही गया है कि सरकारी आदेशों का पालन कैसे करवाया जाता है। हमें दो लाख पौधों का टारगेट पूरा करना ही है चाहे वे छतों पर लगाएँ।' आदेश की सख़्ताई ने मजबूर कर दिया उसे कार से बाहर आने के लिए। धूप तेज है। उसने धूप का चश्मा लगाया और चार रद्दों वाली निशानदेही के भीतर के रकबे को देखा। 'मास्टर सही कह रहा है।' उसकी आँखों ने गवाही दी। वह पहले की अपेक्षा कुछ नरम लहजे में बोली, 'देखो मास्टर जी! आप अपनी जगह सही हैं। लेकिन हमें दो लाख पौधों का टारगेट पूरा करना ही है।' कहकर उसने स्टैनो के हाथ से फाइल लेकर जगदीप की ओर बढ़ानी चाही, लेकिन उसके हाथ नहीं बढ़े। वह अपने पूरे अक्खड़पन पर आ गया, 'पर मैडम जी, जगह भी हो कहीं। चार सौ तो कहाँ, यहाँ तो धान की पौध भी नहीं लग सकती। आप तो पौधों की बात करती हो।'

खीझ उठी वह, 'तुम्हें पता है तुम क्या कह रहे हो? पता है तुम्हें, आज पूरे विश्व में पर्यावरण को लेकर कितनी चिंता है?'

मास्टर का आत्मविश्वास बढ़ता जा रहा है। उसने बीच में ही टोका और बेधड़क होकर बच्चों की ओर संकेत करते हुए कहा, 'और यो पर्यावरण? मैं इस खराब होते पर्यावरण का क्या करूँ? मैं इसकी चिंता करूँगा कि इनसे पौधे गड़वाऊँगा, पानी दिवाऊँगा।'

एक बार फिर डी.ई.ओ. को लगा कि मास्टर सही कह रहा है। लेकिन उसके चेहरे पर अफसरी रोब इस तरह उभरा जैसे वह जिला शिक्षा अधिकारी नहीं है—उसे बच्चों की पढ़ाई से कुछ लेना-देना नहीं है, जैसे कि वह वन विभाग की या पर्यावरण मंत्रालय की कोई आला अफसर है। एक बार फिर सोच लो मिस्टर! तुम राष्ट्रहित को हानि पहुँचा रहे हो। बात ऊपर तक जाएगी। तुम्हें कोई नहीं बचा पाएगा। उसे मास्टर के चेहरे पर उसके कहे की कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई दी। उल्टे उसने सुना, 'यूँ गलत सजा मिलेगी तो मिले जी। स्कूल में जगह भी आप देख चले हो और सजा भी आप ने ही देनी है।' वह एक कुटिल हँसी हँसी और बोली, 'तो ठीक है। सजा का इतना ही शौक

चढ़ा है तो कल ही लैटर आ जाएगा।' कहकर वह मुड़ी तो जाते–जाते कुछ ऊँची आवाज में इतना और जोड़ गई, 'कैसे–कैसे बुद्धुओं से पाला पड़ता है?' पी गया मास्टर इस बेइज्जती को और सोच रहा है कि उससे कहाँ गलती हुई है।

वहाँ आवारा किस्म के कुछ बच्चे कार के चारों ओर इकट्ठे हो गए थे, जो कार जाने के बाद एक–दूसरे से उलझने लगे हैं। मास्टर इनमें से कुछ को जानता है। इसी स्कूल से निकले हुए हैं। इनमें से मास्टर को मजाक की तरह लेने वाले ज्यादा हैं। ये दिन–भर यूँ ही आवारागर्दी करते घूमते रहते हैं। कई बार स्कूल के पिछवाड़े छिपकर बीड़ियाँ फूँकते हैं, एक–दूसरे से लिपटते हुए कुत्ते–कुत्तिया या बंदर–बंदरिया वाली गंदी हरकतें करते रहते हैं। इनकी तादाद दिन–प–दिन बढ़ती ही जा रही है। 'मास्टर जी, इसने कार पर गंदी, गंदी बात लिख दी।'

'ना जी इसने लिखी है।'

'तूने भी तो लिखी है। ओए कुल्फी वाला। चलो पकड़ेंगे।' वे भाग गए हैं। मास्टर जानता है कि अब उस कुल्फी वाले की खैर नहीं। पाँच–सात कुल्फियाँ ये जरूर लूटेंगे। वह उन्हें कार पर जमी रेत पर अश्लील शब्द लिखते हुए देखता रहा था लेकिन क्या कहे। धमकाने पर मैडम तक की स्थिति खराब हो सकती थी।

वह उखड़े, झुँझलाए, खीझे मन से अंदर आ गया। अभी–अभी घटना की तरह आई मैडम, आवारा बच्चों को वह भूलना चाहता है। 'इनको तो पढ़ा ही दूँ, इसमें इनका क्या कसूर? नहीं पढ़ेंगे तो ये भी उन आवारा बच्चों में शामिल हो सकते हैं।' वह जैसे–तैसे फिर से पढ़ाने का मन बना रहा है। तभी फिडर–फिडर करते लितरोंवाला चौकीदार फिर आ गया। 'मास्टर जी, लंबरदार ने कहा है कि या तो छुट्टी कर दो या थोड़ी देर यूँ ही छोड़कर आ जाओ, जीम्मणवार चल रही हैं आप भी खा लो जी चलकर... जल्दी आईयो जी कभी मेरा दूसरा चक्कर लगवा दो।' कहकर वह तेजी से निकल गया है।

जगदीप मास्टर ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने चैक करने वाली कापियों को एक ओर पटका और अपने–आपको कुर्सी में ढीला छोड़ दिया है।

(प्रकाशित : जतन, जनवरी–मार्च, 1993)

•

पीपल

किसी–ना–किसी तरह इधर–उधर से रामराज के पास दो सौ रुपयों का जुगाड़ बन गया तो घर में एक नई खींचतान शुरू हो गई थी। अपनी पत्नी जीतो की एक परात और दो गिलास लाने वाली बात तो उसने मान ली थी, क्योंकि चूल्हे पर परात की जरूरत को वह भी समझता था–थाली में पाँच जनों का आटा बनाने में वाकई मुश्किल होती थी–और फिर थाली भी तो कई नहीं, केवल दो ही थीं। लेकिन अब बात–जग लिया जाए या लोटा– पर फिर खिंचने लगी थी। जीतो कह रही थी कि अब लोटे का रिवाज नहीं रहा। पूरे पड़ोस में कोई भी लोटा नहीं बरतता– स्टील का जग लाएँगे। रामराज कह रहा था कि जग लेने का अब ब्योंत नहीं है–कोई हल्का–सा पीतल का लोटा ले लेते हैं, जग अगली साल या फिर इस फसल पर ले लेंगे। जीतो लोटा लाने से साफ इनकार कर गई थी। उसका तर्क था कि अब हम लोटा लेते ही नहीं, फसल पर जग ही ले आएँगे। अगर अब लोटा ले लिया तो फिर जग नहीं लिया जाएगा।

किसी–ना–किसी तरह यह विवाद खत्म हुआ तो बात सर्दियों के कपड़ों पर अड़ गई। जीतो के पास ओढ़ने लायक कुछ भी नहीं था। वह अपने लिए एक शाल और बच्चों के लिए मोटा मलेशिया लाने के लिए कह रही थी। रामराज शाल की भी आना–कानी कर रहा था। जीतो की दलील थी कि कुरता बेशक अच्छा ना हो, थेगली लगा ही हो, पर शाल ठीक हो तो कुरते को ढक लेगी।

रामराज को पत्नी की एक–एक बात बेशक सही लग रही थी पर अच्छी कतई नहीं लग रही थी। वह झुँझलाकर बार–बार एक ही बात कह रहा था, 'मेरा के दिल नहीं करता थारे नैं अच्छा–अच्छा खवावण–ओढावण नैं, पर ल्याऊँ कित तै?' आखिर में हार–सी मानते हुए उसने जेब से दो सौ रुपये निकालकर जीतो के आगे डाल दिए और खीझकर कहा, 'ले तेरी मर्जी चाहे हवाई जहाज ले आ।'

जीतो ने भी लगभग हार मान ली और समझौते के लहजे में बोली, 'अच्छा, मुनिया खातर एक छोटी–सी गिलासी जरूर ल्यावेंगे। वो गिलासी लेण

तई बोत रोवै है।'

जब चारों भाई अलग-अलग हुए थे तो नक्काशी की हुई छोटी-सी पीतल की गिलासी छोटे भाई के पास ही रह गई थी। वह थी भी उन्हीं की। उसकी बहू छूछक में (बच्चा होने पर) पीहर से लाई थी। गिलासी तो खैर जानी ही थी—उसके हिस्से में बर्तन भी इतने कम आए थे कि एक आदमी मुश्किल से गुजारा कर सके। फिर भी उसने 3-4 महीने यूँ ही खींच दिए थे। पहले तो वह धान की फसल की बाट देखता रहा था, लेकिन उसने हिसाब लगाया कि यह फसल चार जगह बँटेगी और उसके हिस्से में मुश्किल से खाने लायक दाने ही आएँगे तो उसे 200 रुपयों का जुगाड़ कर कुछ बर्तन और बच्चों के लिए कपड़े लाने का मन बनाना ही पड़ा था।

क्योंकि गिलासी के लिए जिद्द करती छोटी बेटी को कई बार वह भी देख चुका था—अत: वह इस बात पर सहमत हो गया।

सुबह शहर के लिए बस में चढ़ने से लेकर बस से उतरकर बाजार में घुसने तक रामराज ने जीतो को कई बार कहा, 'देख दुकान पै बैठ के जिद्द ना करिए...' जीतो केवल 'अच्छा' कहती और चुप हो जाती।

रामराज शहर में यूँ ही घूमता रहा और जीतो बगल में रोटियाँ दबाए उसके पीछे-पीछे चलती रही। एक बार तो वह काफी पीछे भी रह गई थी। अचानक उसका ध्यान किसी टेलीविजन के बड़े से विज्ञापनी गुब्बारे पर चला गया था जो कि धागे से बँधा आसमान में पतंग की तरह उड़ रहा था। वह जब भी शहर में आती है तो कोई-न-कोई अजूबा उसे जरूर आकर्षित कर लेता है। अब वह काफी बड़े उस गुब्बारे को देखे जा रही थी। रामराज रुक गया और बोला, 'आगे देख के न चल—कदे ठोकर ना लग ज्या' जीतो ने उसे गुब्बारा दिखाया तो वह भी बच्चों की तरह खुश होकर देखने लगा।

जीतो ने रामराज के पास लगकर चुपके से कहा, 'देखे, पैसे भी सँभालता रहिए कदे कोई जेब ना काट ज्या।' रामराज ने केवल ठीक है कहा और चलता रहा। फिर भी उसने धोती के बंधेज पर हाथ फिराकर देखा था। पैसे सही थे।

उन्हें यूँ ही घूमते-घूमते काफी देर हो गई लेकिन किसी भी दुकान में घुसने को रामराज की हिम्मत ही नहीं हो रही थी। उसे आश्चर्य भी हो रहा था और खीझ भी उठ रही थी—हमारा नूण-तेल-तमाखू का बाजार कहाँ गया? काँसे-पीतल के बर्तनों से खनकती दुकानें कहाँ गईं? ये इस तरह की दुकानें कहाँ से आ गईं? मंडी जहाँ हम जिन्स बेचते हैं—वह तो नहीं बदली। फिर ये बाजार

किसके लिए है ? वह सोच ही रहा था कि जीतो ने उसे टोका, 'सैर करण तईं आया सै अक कुछ लेगा भी ?' रामराज ने उलझी सी दलील दी, 'मैं कोई छोटी-सी, अपने देसी से हिसाब की दुकान देख रहा था— पर बेरा ना कित खोई गई ?'

जब उसे बेकार घूमना खुद भी गलत लगा तो जो भी बर्तनों की दुकान आगे आई वह उसी के अंदर चला गया। उन्होंने देखा कि शो केसों में चारों ओर स्टील जगमग-जगमग कर रहा है। जीतो मुँह बाए देखे जा रही थी जैसे समझने की कोशिश कर रही हो कि क्या चीज है और क्या काम आ सकती है।

काउंटर पर खड़े दुकानदार ने उन्हें बैठने को कहकर उनकी माँग के अनुसार लड़के को पहले परात दिखाने को कहा। रामराज के सामने परातें आईं तो वह एक-एक परात उठाकर उसे हाथों-ही-हाथों में तोलता और अपनी जेब के मुकाबले में भारी पाकर एक ओर रख देता। आखिर में एक परात उसने पसंद कर ली। वह जीतो से नजरें बचाते हुए उसे तुलवाने के लिए उठने लगा तो जीतो ने खीझते हुए कहा, 'इसतै तो आपणी थाली बी बड़ी सै। थोड़ी-सी तो बड़ी होणी चाहिए।' रामराज ने थोड़ी झेंप और खीझ में वह परात रख दी और बड़ी लेकिन वजन में हल्की परात छाँटने लगा।

'नमस्ते जी...नमस्ते... आओ अंदर आ जाओ...' दुकानदार ने बाहर आकर रुके स्कूटर पर से उतरते आदमी और औरत को मुस्कराते हुए कहा। 'नहीं बैठेंगे नहीं। जल्दी है। आपके पास 'बेबी किचन सैट' होगा इक्कीस बर्तनों वाला ?'

'हाँ-हाँ जैसा मर्जी चाहो...' कहकर उसने काउंटर से बड़े ही सुंदर रंगीन डिब्बे निकालकर खोले जिनमें नन्हें-नन्हें छुरी-काँटे, प्लेटें आदि जँचे हुए थे। ये है जी बंबे स्टील का और ये है जर्मन स्टील का...ओए परात और दिखा चौधरी साहब को...

'प्राईस ?'

'ये बंबे वाला वन थर्टी ये वन फिफ्टी...'

रेट सुनकर औरत ने मुँह बिसूरा और बोली, 'नहीं, ये वाला नहीं। मिसेज खन्ना इम्पोर्टिड लेकर गई हैं। उसकी पैकिंग भी बहुत अच्छी है।'

'अरे भाई छोड़ो ना। बच्ची ने दो दिन में तो खराब कर देना है...'

'आप भी कमाल करते हैं। आपने ही तो उसे प्रॉमिस किया था कि उसकी गुडिया की मैरिज पर आप उसे बढ़िया-सा किचिन सैट देंगे। 'मोरओवर' उसके पास खन्ना की बिटिया इम्पोर्टिड सैट से खेलेगी दैन शी विल फील

इनफीरियर... '

उनकी बातचीत होते–होते उनकी मर्जी का सैट काउंटर पर खुल भी चुका था। जीतो ने पारदर्शी काँच की हंडिया–सी और उसमें से दिखते चमचमाते छोटे–छोटे गिलास–कटोरी देखे तो देखती ही रह गई। वो कभी औरत, कभी आदमी और कभी दुकानदार की ओर देखे जा रही थी, जैसे उनके बीच हो रही बातों से अंदाजा लगाने की कोशिश कर रही हो कि ये इसका क्या करेंगे।

'ये है जी इम्पोर्टिड सैट विद फुल कुकिंग रेंज़.. इसकी पैकिंग भी फाईबर ग्लास में है...।'

औरत ने एकदम निर्णय सुनाया, 'ये ठीक है। पैक कर दो...' आदमी ने बिना किसी प्रतिक्रिया के पर्स निकाला और पर्स खोलते हुए ही कीमत पूछी।

'टू फिफ्टी... तू खड़ा–खड़ा क्या कर रहा है? चल उन्हें परात दिखा। ये पसंद नहीं आई हो तो भीतर से और दिखा...लो जी...हाँ... लंबरदार! आई कोई पसंद?'

आदमी ने सौ–सौ के तीन नोट निकाले और औपचारिक मुस्कान से काउंटर पर डालते हुए कहा, 'एनी कन्सेशन?'

'कन्सेशन क्या जी...ऐसी आइटम में हम पहले ही मार्जन कम रखते हैं...'

रामराज ने जैसे ही उस आदमी को पर्स से सौ–सौ के नोट निकालकर काउंटर पर डाले देखा तो परात तोलते उसके हाथ रुके और उसका दायाँ हाथ धीरे से धोती के बंधेज में बँधे अपने पैसों पर सरक गया।

रामराज ने बायें हाथ में सँभाली परात रखी और उठता हुआ बोला, 'चाल और किसे दुकान पै देखांगे.. ये तो भारी है।'

जीतो कहना चाहती थी कि बेटी के लिए एक गिलासी तो देख लेते लेकिन उसे इतना कहने का मौका ही नहीं मिला। रामराज दुकान के बाहर आ चुका था।

कुछ देर वह जीतो को लिये यूँ ही घूमता रहा। वह दुकान देखता, भीतर जाने की हिम्मत सँजोता पर पाँव मन–मन भर के भारी हो जाते। आखिर उसने कहीं बैठकर चाय के साथ रोटी खाने की इच्छा जाहिर की।

टीन के छप्पर वाली एक पुरानी दुकान के बैंच पर बैठते हुए रामराज ने ज्यादा पानी वाली दो कप चाय बनाने को कहा। बैंच में रखी रोटियों में से दोनों ने एक–एक रोटी हाथ में उठा ली और खाने लगे। रोटी खाते–खाते ही रामराज

का ध्यान उस दुकान के परनाले में उगे पीपल पर गया और साथ ही उसके मुँह से 'सीऽ' निकला।

'के होया?'

'कुछ नहीं। दाँतों में जीभ आग्यी।'

'कोए गाली बकता होगा' जीतो ने थोड़ा हँसकर कहा लेकिन रामराज ने उसकी बात की ओर ध्यान नहीं दिया। वह रोटी खाते कुछ अनमना-सा हो गया। मुँह की बुड़नी को जोर लगाकर गटकते हुए बोला, 'आपणी भीत दिन-पै-दिन घणी तरेड़ खाती जासै न्यूबर करूँ?'

'करेगा के, पीप्पल तो काटणा ई पड़ेगा... कदेसी वो पीप्पल पूरे घर नै ई ले बैठेगा...' जीतो के चेहरे पर उदासीनता की जगह चिंता उभर आई।

'नूण घणा ए गेर राख्या सै रोटियाँ में...'

'पड़ग्या होगा...'

'पड़ग्या होगा? के बात, तनै नहीं लागता?' उसने थोड़ा तसल्ली से कहा।

'कोए ना, ले चा आग्यी... चा में डबो-डबो केन खाले...' रामराज कुछ नहीं बोला। रोटी उसके गले में खाटी-कुड़नी होकर अटकने लगी। उसका ध्यान बार-बार परनाले के पीपल पर जा रहा था।

अलग होते वक्त रामराज ने सोचा था कि अब वो अपने ढंग की जिंदगी गुजारेगा और जिंदगी को नए सिरे से जीना शुरू करेगा। उसके हिस्से में काई लगे पुस्तैनी मकान का दक्षिणी हिस्सा आया था, वह खुश था। उसकी पत्नी जीतो खुश थी। जीतो ने पूरी रात घी का दीया जलाकर रखा था—आजाद होने की खुशी में।

अगले दिन वे उस घर को लीप-पोतकर नया रूप दे रहे थे कि उसका लँगोटिया यार आ गया था। उसने उनका ध्यान दीवार की चौड़ी होती दरारों और उन दरारों का कारण दीवार में उगे दिन-ब-दिन बढ़ते पीपल की ओर दिलाया था। उसने रामराज को चेताया था कि अगर वक्त रहते इसे न सँभाला गया तो पूरे घर को खतरा हो सकता है। रामराज को भी पीपल हल के आगे अड़े किसी मूल-सा लगा।

अगले दिन रामराज कुल्हाड़ी लेकर पीपल काटने के लिए दीवार पर चढ़ने को तैयार था कि रिटायर्ड मास्टर हरिया पंच आ गया। उसने एक पल रुककर दीवार के साथ निकली रामराज की जूती, उसके हाथ की कुल्हाड़ी और साथ में घूँघट काढ़े खड़ी उसकी पत्नी, उनके सिर पर मस्ती से झूमता पीपल और

तरेड़ खाई दीवार देखे तो पूरी स्थिति समझ में आ गई। वह बोला, 'बेटा रामराज! तू तो खुद किसान है। तुझे मालूम है कि खेत में उगी कंडाई को जितना काटो वह उतना ही फैलती है। उसे कच्ची को ही जड़ से निकालना पड़ता है और अगर पक जाए तो पूरे खेत में आग लगानी पड़ती है ताकि कंडाई के साथ उसके बीज भी जल जाएँ...' हरिया पंच रुका, पीपल की ओर देखा और बोला, 'तेरा सारा ध्यान इस खरपतवारी पीपल पर है, इसकी जड़ों पर नहीं जो तेरी भीत की एक-एक ईंट से लिपटने की कोशिश कर रही है। ऐसा ना हो कि तू बाहर दिखते इस पीपल को काटता रहे और जड़ें अपना काम करती रहें...'

रामराज को हरिया की बातों से काफी हौसला मिला। उसने हिम्मत करके पूछा, 'पर ताऊ, मैं करूँ के?'

'भीत गिरा दे, और कोई रास्ता नहीं।'

'भीत तो ताऊ मैं गिरा द्यूँ पर नई बनाणे का भी तो घर में ब्योंत होणा चाहिए' रामराज ने चिंता करते हुए कहा।

'बिलकुल ठीक... लाख टके की बात कही तूने, बेटा। पर जब तक तेरा ब्योंत ना हो—तू इसकी जड़ों पर निगाह जरूर रख' कहकर हरिया पंच चला गया था। रामराज ने कुल्हाड़ी एक ओर रखी और बढ़कर तरेड़ खाई दीवार को नजदीक से देखा। पूरी दीवार में जड़ों के बारीक-बारीक धागे फैले थे। उसे लगा जैसे ये जड़ें नहीं खतरनाक किस्म की डंक उठाए रेंगती बारीक-बारीक कानसलाइयाँ हैं।

रामराज ने हिम्मत कर एक तरेड़ में अँगुली डाली तो उसे लगा जैसे अँगुली किसी कनखजूरे पर जा लगी है। उसने मन कड़ा करके अँगुली को थोड़ा घुमाया और उलझाते हुए बाहर खींचा तो हाथ में कनखजूरा नहीं बल्कि गिलगिली-गिलगिली जड़ थी—बिलकुल केंचुए जैसी जिसमें से कुछ और केंचुए निकलने की कोशिश कर रहे थे।

सोचते-सोचते ही रामराज पूरी रोटी निगल गया।

'ले, और रोटी ले सै के?'

'ना, या हे मुश्किल खाई सै...कड़वी लागी' रामराज चाय उठाकर पीने लगा। वह चाय की दुकान के परनाले में उगे पीपल को देखे जा रहा था। वह अपने घर की दीवार में उगे पीपल के बारे में यहाँ बैठकर सोचना नहीं चाहता था लेकिन पीपल था कि उसके दिमाग से उतर ही नहीं रहा था। 'बापू ने ज्यों नहीं सोचा कि पीपल मेरी औलाद को तंग करेगा। उसे निकाल दूँ। उल्टे वो तो

उसकी छाँव में पसरकर सुख प्राप्त करता था... अब जब तक नया घर बनाणे का ब्योंत नहीं होता अपने सिर पर इसे सहना पड़ेगा...'

जीतो ने भी और रोटी नहीं ली। झटपट चाय सुड़की और बची हुई रोटियों को छन्ने में लपेटकर बगल में दबाती हुई बोली, 'चाल तावल कर...ईब तक लिया तो कुछ भी नहीं... घराँ बालक रोते होंगे, भैंस भूखी खड़ी होगी...'

रामराज ने फटाफट चाय पी और पैसे देकर फिर बाजार में निकल गया। अपने दिमाग से पीपल को हटाने की कोशिश करते हुए उसने मन बनाया कि पहले वह जीतो के लिए शाल खरीदेगा।

सोचता-सोचता वह फिर बड़ी दुकान पर चढ़ गया। आदतन उसने राम-राम की और कोई दरम्यानी-सी शाल दिखाने को कहा। दुकानदार ने पहले अपनी नजरों से उनकी हैसियत को तोला और फिर शालें दिखानी शुरू कीं। वह उनके सामने शाल फैलाता और कहता, 'लो पसंद करो।'

जब वे देख रहे थे तो कार से उतरकर लगभग वैसे ही आदमी और औरत, जैसे उन्होंने परात लेते वक्त देखे थे—दुकान में घुसे। उनका रवैया ऐसा था जैसे सैर-सपाटे पर निकले हों। वे 'चलो ये भी देखते चलते हैं' की तरह दुकान में उचटती-सी नजरें घुमाने लगे।

'आओ सर, क्या सेवा की जाए?' दुकानदार शालें दिखानी छोड़कर उनकी ओर घूम गया।

'अऽऽ क्या लें आप से? खैर जब दुकान पर चढ़ ही गए हैं तो चलो कोईऽऽ हाँ... जर्सी ही दिखा दो।'

'छोड़ो ना, मैंने बंबे ब्रदर को लिख तो दिया है। पाँच-सात दिन तक आ जाएँगी...हो सकता है उनका स्टेट्स जाने का कोई प्रोग्राम ही बन गया तो—यही सोचकर डिले कर दिया हो कि लास्ट ईयर की तरह वहीं से भेज देंगे...'

औरत जीतो की तरफ जाकर खड़ी हो गई क्योंकि वहाँ सामने शीशा लगा था जिसमें देखकर वह अपना मेकअप और बालों को ठीक करने लगी। जीतो ने उसमें से उठती खुशबू को लंबा साँस लेकर सूँघा और रामराज को भी कोहनी मारकर इशारे से ऐसा ही करने को कहा।

'लो सर, ये देखो...एकदम नई आइटम है...परसों ही माल आया है...अभी खोला है...' दुकानदार ने जरसी को अपने कंधों तक ले जाकर पहनने की तरह करके दिखाया और फिर काउंटर पर फैला दी, 'एकदम बढ़िया स्टफ और

लेटैस्ट निटिंग में है सर...' दुकानदार बोले जा रहा था। आदमी ने औरत की ओर देखते हुए कहा, 'वो भी आ जाएँगी, मुझे ये भी कुछ-कुछ जँच-सी रही है...आपको कैसी लगी?'

'एज यू लाइक...' औरत ने होंठों को हल्का दबाकर लिपिस्टिक ठीक करते हुए शीशे में देखा और कुछ शरारती लहजे में फिर बोली, 'सरप्राइजिंग... इस सिटी में हमारी पसंद की चीज अवेलेबल है...'

'चीज तो ले आएँ मैडम, कोई कद्रदान भी हो इस टुच्चे शहर में?' कहकर दुकानदार ने शालों पर हाथ फिरा रहे रामराज की ओर देखा।

जीतो न तो जर्सी देख रही थी, न ही उनकी बातें सुन रही थी बल्कि वह साथ खड़ी उस औरत में से निकल रही भीनी-भीनी महक और झीनी साड़ी में से दिखते उसके गोरे बदन में खो गई। इतनी नजदीक से इस तरह की औरत को उसने पहली बार देखा था। उसने धीरे-धीरे अपना हाथ नीचे-नीचे ले जाकर उसकी साड़ी का पल्ला अँगूठे और अँगुली में बड़े ही हल्के ढंग से मलकर देखा लेकिन तभी उसने अपना हाथ खींच लिया क्योंकि बगल में दबी रोटियाँ नीचे गिरने को हो गई थीं। उसने रोटियों को सँभाला लेकिन साड़ी को हाथ लगाकर अच्छी तरह देखने की इच्छा को वह दबा नहीं पाई। दूसरे हाथ से साड़ी को मला तो उसे कुछ लिजलिजा-सा अहसास हुआ। बिलकुल पिप्पल की गिलगिली जड़ जैसा। उसने हाथ वापिस खींच लिया।

'कितने पीस हैं ये आपके पास?'

'तीन ही पीस लाया हूँ, सर... एक मैरून और...'

'ठीक है तीनों पैक कर दो...'

'तीनों?' औरत ने अपने बालों को कुछ इस तरह झटका कि कंधे पर झूलते उसके आधे बाल आगे आ गए और आधे पीछे रह गए।

'तुम भूलती बड़ा जल्दी हो... उस दिन कनॉट प्लेस में जब तुमने एक साथ एक ही प्रिंट की दो साड़ियाँ खरीदीं तो क्या कहा था?'

'ओह! यस, रीयली, मेरे साथ तो ये प्राब्लम है। मेरी चायस का प्रिंट मैं और के शरीर पर टालरेट नहीं कर सकती...रीयली आई कांट...'

'बस तो मेरी भी यही हैबिट समझो...एक्चुअली मनी फ्लो ही आजकल इतना ज्यादा हो गया है कि छोट-बड़े का फर्क तक करना मुश्किल हो गया है। रिक्शा वाले तक पैंट पहनकर रिक्शा चलाते हैं—वो बात अलग है कि वे रैग्ज से खरीदते हैं...अब, सप्पोज यही जर्सी कोई रिक्शा वाला खरीदकर ले जाए या

कोई टुच्चा आदमी पहने हो तो क्या मैं बर्दाश्त कर पाऊँगा...' आदमी की झुँझलाहट में दुकानदार ने भी, जैसे उसकी बात की और समझदारी की दाद दे रहा हो, सिर हिलाया और तीनों जर्सियों का पैकेट बनाकर उनकी ओर बढ़ा दिया, 'लो सर!'

'हाऊ मच?'

'नाइन हंड्रेड, सर' दुकानदार ने तटस्थ भाव से बताया।

आदमी ने भी बड़े ही तटस्थ भाव से पर्स निकाला और सौ-सौ के नौ नोट काउंटर पर डाल दिए।

अब तक असमंजस में खड़े रामराज ने जब आदमी के पास इतने नोट देखे तो उसका हाथ फिर धोती के पल्ले में बँधे पैसों पर सरक गया। जीतो ने उसे ऐसा करते हुए देख लिया तो उसने एकदम झेंपकर हाथ बाहर खींच लिया। रामराज जीतो को लेकर फिर बिना कुछ खरीदे बाहर आ गया।

बाहर ही सड़क पर भीख माँग रहा एक भिखारी उनकी ओर लपका, 'माई एक रोटी दे दे...तेरे बाल-बच्चे जियें माई...एक रोटी...' जीतो ने बगल से रोटियाँ निकालकर यूँ-की-यूँ समेत छन्ने उसके पसरे हाथों पर रख दीं। रामराज ने कनखियों से देखा पर कुछ नहीं बोला। तभी वह भिखारी रामराज के आगे अड़ गया, 'एक कप चा पिला दे लंबरदार...तेरी कमाई में बरकत दे भगवान...'

रामराज आगे अड़ते भिखारी को बर्दाश्त न कर ताव खा गया, 'ओ तूँ म्हारे ऊपर क्यूँ पिप्पल हो गया...देख्या ना इसा बरकत बख्शणिया...आगै तै हटै सै कि द्यूँ एक?'

जीतो ने रामराज को रोका, 'इस बिचारे नै क्यूँ धमकावै सै? इसनै तेरा के बिगाड़ दिया? कुछ लेणा हो तो ले, ना तै घराँ चाल...' भिखारी सहमकर एक ओर टल गया।

रामराज फिर से हिसाब लगाने लगा, क्या छोड़कर क्या खरीदा जाए?

(प्रकाशित : 'गिरा हुआ ओट')

•

कलगी

'जिस तरह मुर्गे के सिर पर, मोर के सिर पर, घोड़े के सिर पर और दूल्हे की पग पर कलगी की शोभा होती है—चमेला भी इस गाँव की पंचायत की शोभा है, गाँव की पंचायत की कलगी है...' गाँव में आए पंचायत-अफसर ने जब बड़े-बूढ़ों के बीच यह बात कही तो आरक्षित सीट से निर्वाचित चमेला पंच गद्‌गद् हो गया। उससे ऊपर गर्दन उठाए भी नहीं बन पड़ रही थी। उसने बैठे-बैठे ही हाथ जोड़ दिए और मारे खुशी और शर्म के रोने को हो गया। इतनी खुशी तो उसे चार-चार बेटे होने पर भी नहीं हुई थी। दो बड़े बेटों के ब्याह में भी नहीं हुई थी। छोटे बेटे के आठवीं पास कर चपरासी लगने पर भी नहीं हुई थी। इसी खुशी की रौ में एक बार तो वह यहाँ तक भी सोच गया कि अभी सारे पंच और सरपंच उससे गले मिलेंगे और यह पंचायत-अफसर भी उसे अपने बराबर की कुर्सी पर बैठने के लिए बुलाएगा। नीचे देखता हुआ वह जमीन पर लकीरें खींचता रहा।

चमेले की सारी कल्पना आत्मकेंद्रित होने लगी। हमेशा की तरह वह अपने-आपको और अपने घर की बढ़ती इज्जत को गाँव के एक-एक ब्राह्मण से तोलने लगा। आज ही धुलवाकर पहने अपने उजले कपड़ों और इस समय एकदम सामने बैठे दिखाई दिए शिब्बू पंडित के गंदे कपड़े देखकर उसे मन-ही-मन प्रसन्नता हुई। उसने नीचे-ही-नीचे देखा कि शिब्बू पंडित चिलम खींच रहा है। उसकी तमाखू रची हथेलियाँ उसे बड़ी भद्दी लगीं। डोर खींचते-खींचते खुरदरे हो गए अपने हाथ आज उसे शिब्बू के हाथों से अच्छे लगे।

पंचायत-अधिकारी ने पंचायतों को मिलने वाले व्यापक अधिकारों की योजना, पंचायतों में कमजोर तबकों का और अधिक प्रतिनिधित्व आदि सरकारी घोषणओं को हू-ब-हू वहाँ दोहरा दिया पर चमेला तो कुछ भी सुन ही नहीं रहा था।

वह सोचने लगा कि अब तो चौधरी के घर की तरह उसके घर भी अफसर आया करेंगे। हो सकता है डी.सी. भी आ जाए। अब तो घर का सुधार करना पड़ेगा। उसके ठईये के पास पड़ा रहने वाला लचर-लचर हिलता स्टूल उसे

वहाँ बैठे-बैठे ही अखरने लगा। कहीं कोई अफसर अचानक उस पर आकर बैठ गया तो वह चिऊँटी काट लेगा। वह तो जरूर बदलना ही पड़ेगा। अगर वहाँ एक-दो कुर्सियाँ और खाट हो तो कितना अच्छा हो। घर में कोई अच्छा-सा बिस्तर भी जरूर तैयार रहना चाहिए– ये अफसर लोग जात-पाँत थोड़े ही मानते हैं! इनके लिए तो ऐसा ही यह चौधरी सरपंच, ऐसा ही यह शिब्बू या गाँव के और ब्राह्मण और ऐसा ही मैं। शहर में हमारे मंदिर में रैदास के जन्मदिन पर सभी अफसर तो आते हैं।

तालियाँ बजीं तो चमेले ने देखा कि पंचायत अफसर बैठ चुका है। आखिर में चौधरी सरपंच ने सोच-सोचकर कुछ शब्दों में अफसर का धन्यवाद किया और गाँव के लोगों को तथा अफसर को विश्वास दिलाया कि सरकार की नीतियों के अनुसार वह पंचायत के अधिकारों का सदुपयोग करेगा। गाँव के सभी तबकों को पूरा-पूरा न्याय देने की कोशिश करेगा। जैसे कि चौधरियों की आदत होती है–उसने एक बार भी अन्य पंचों को शामिल करते हुए 'हम' शब्द का प्रयोग नहीं किया। वह केवल 'मैं-मैं' ही कहता रहा।

चमेले को लगा जैसे उस समेत सभी 'पंच-परमेश्वर' से 'एक-परमेश्वर' होकर चौधरी में समा गए हैं। उसकी खीझ तालियों में दब गई। उसने भी बेगार में चौधरी के कुनबे की जूतियाँ गाँठने की तरह तालियाँ बजाईं। तभी चौधरी की बिरादरी के सभी लोग अफसर को घेरकर चौधरी की हवेली की ओर बढ़ गए। चमेले का मन था कि वह भी अफसर से बात करेगा–हालाँकि वह सोच नहीं पा रहा था कि वह अफसर को कहेगा क्या। हाँ इतना जरूर उसने सोच लिया था कि वह इस सरकार को धन्यवाद देगा जिसने उस जैसे गरीबों को ताकत दी। वह भी चौधरी की तरह आश्वासन देना चाहता था कि उसके रहते गाँव के गरीबों के साथ कुन्याय नहीं हो सकता। पर उसने देखा कि वह तो उसी जैसे पाँच-सात लोगों के साथ वहाँ खड़ा रह गया है। बाकी सब तो चौधरी की हवेली में पहुँच चुके थे।

वहाँ बचे रह गए लोगों ने जब उसे बधाई दी तो वह कुछ उबरा। अबना नाई ऐन उसके पास ही आकर खड़ा हो गया और अपने स्वर को अपेक्षाकृत धीमा बनाते हुए बोला, 'आज साँझ को बब्लू कुम्हार की दहलीज में मीटिंग है। तुम पहुँच जाना।' चमेले को फिर गुदगुदाहट हुई। उसे पूछा तो जाने लगा। वह इसी गुदगुदाहट और अफसर को मिलने चौधरी के घर जाए ना जाए की दुविधा में अपने घर पहुँच गया। वहाँ एक-एक कर उसके भाईचारे के लोग उसे बधाई

देने आते रहे। कलगी वाली बात को लेकर वे सब खूब उत्साहित दिख रहे थे। उन्होंने चमेले को खूब चढ़ाया और रात को मुर्गे तथा दारू के लिए मना लिया।

चमेले ने ठईये के आस–पास सफाई की। यह उसकी बैठक भी थी और दुकान भी थी तथा मेहमानों के सोने के लिए भी। स्टूल की कुछ कीलें ठोंकी–पीटीं। उसने देखा गोबर–पुते फर्श में कई जगह गड्ढे हो गए हैं तथा उनकी रेत में चिड़ियाँ फुर्र–फुर्र कर नहा रही हैं। काली पड़ गई कड़ियों और फूस की छत में कई जगह उन्होंने घोंसले भी बना लिये हैं और खूब अड़ंगा बिखेर रही है। 'लड़का चपरासी लग गया है। अभी कच्चा है। पक्का हो जाए तो वह छत बदलवा दूँ। फिर तो कुछ नया 'फर्नीचर' भी आ सकता है।' सोचते–सोचते ही उसने बाहर से कुछ मिट्टी लाकर गड्ढों में डाली और ईंट से छेतकर उस पर पानी छिड़का।

उसने काम करने की कोशिश की पर उससे काम हो ही नहीं पा रहा था। उसकी इच्छा थी कि दो–चार लोग आकर उसके पास बैठें और उससे बातें करें। तभी 'चौधरी चमेला राम!' की आवाज ने उसे आह्लादित किया। उसने घर के भीतर से एकदम भौंकते आए कुत्ते को दबकाया और भीतर बढ़ आए हिरदे बढ़ई को राम–राम कर स्टूल उसकी ओर बढ़ा दिया। हिरदे ने भी बिना किसी भूमिका के अबने के लहजे में ही कहा, 'थोड़ी देर बाद बल्लू कुम्हार की दहलीज में जरूर पहुँचना है। भूलना नहीं। पिछवाड़े वाली गली से आना।'

'बस, शहर से छोरा ड्यूटी करके अभी आ जाता है। एक जरूरी चिट्ठी लिखवाकर मैं पहुँच जाऊँगा। बहुत ही जरूरी चिट्ठी है।' वह जानता है कि हिरदा उसकी चाय नहीं पिएगा फिर भी उसने हिम्मत करके पूछ ही लिया, 'और काका, चा–पानी?'

हिरदे ने हँसते हुए कहा, 'सुना है आज रात तेरे घर दारू और मुर्गे की पाल्टी होगी और हमें सूक्की चा में ही टाल रहा है।' चमेला भी जानता है कि इन्होंने कौन–सा उसके घर पाल्टी में आना है–'पाल्टी तो के थी–बस थारे जैसों के सीरवाद से आज दो भाइयों में इज्जत बन गई है। सो मैंने भी कह दिया कि जिसको मीठा मुँह करना है हलवा तैयार और जिसे कड़वा चाहिए–दारू त्यार। थारी दया तै काका भगवान का दिया आज सब कुछ है।'

जब चमेला बल्लू कुम्हार की दहलीज में पहुँचा तो वहाँ काफी गर्मा–गर्मी चल रही थी। हर आदमी के चेहरे पर गुस्सा था और कुछ ना कर पाने की

लाचारी भरी खीझ भी। सब लोग खाटों पर बैठे थे लेकिन चमेले को कुर्सी दी गई थी। खाट पर बैठने की चमेले ने खुद भी कोशिश नहीं की। बात हिरदे बढ़ई ने शुरू की, 'भाइयो, बड़ी खुशी की बात है कि इस बार जो हमारा पंच बना है वह हमारा अपना आदमी है और ईमानदार है। इसका लड़का भी सरकारी दफ्तर में है। इसको चौधरी की कोई दाब नहीं है। इसलिए हम उम्मीद करते हैं कि चमेलाराम कल की पंचायत में हम सबके लिए लड़ेगा और न्याय की बात कहेगा।'

चमेलाराम को लगा जैसे यह उसके अपने मन की बात हो। वह चौधरी का दिया नहीं खाता। वह अब तक बने सभी पंचों से अपने-आपको काफी ऊपर मान रहा था। सब पंच चौधरी के ही होकर रह गए लेकिन वह ऐसा नहीं करेगा। उसने बड़ी ही नरमाई से हाथ जोड़ दिए और बिल्कुल नेता की तरह कहा, 'आप सब लोग मेरे बड़े हो, मेरे बुजुर्ग हो— थारा सीरवाद मेरे साथ रहा तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आज के बाद गाँव के कमजोर तबकों के साथ कुन्याय नहीं होने पाएगा। अगर कुछ गलत हुआ तो मैं परधानमंत्री जी को चिट्ठी लिखकर बताऊँगा कि गाँव के गरीबों के साथ किस तरह की ज्यादतियाँ हो रही हैं।' कहकर उसने जेब से नीले रंग की चिट्ठी निकाली और कहा, 'ये देखो, मैंने अपने लड़के से अभी-अभी परधानमंत्री जी को यह चिट्ठी लिखवाई है। इसमें मैंने अपनी ओर से परधानमंत्री जी को विश्वास दिलाया है कि मैं कुन्याय के खिलाफ लड़ूँगा और गरीबों की सेवा करूँगा।' चिट्ठी दिखाते हुए उसके चेहरे पर गर्व था जैसे यह चिट्ठी उसने प्रधानमंत्री को नहीं बल्कि प्रधानमंत्री ने स्वयं उसे लिखी हो। वहाँ जमा सभी लोगों को चमेले की बातों से कुछ असमंजस भी हुआ और हौसला भी बढ़ा।

बल्लू कुम्हार खड़ा हुआ और कहने लगा, 'भाइयो, आज की मीटिंग हमने अपणी मजदूरी बढाणे तईं बुलाई है। पिछले महीने हमने गाँव से शहर में जिन्स की ढुलाई डेढ़ से बढ़ाकर दो रुपये कर दी थी तो हमारा बाईकाट कर दिया गया। हमसे कहा गया कि तुमने ये रेट किससे पूछकर बढ़ाए हैं। हमारे पशुओं (खच्चरों) को शामलात की जमीन पर चरते हुए लाठियों से पीटा गया। जोहड़ से पानी पीते हुए उन्हें खदेड़ दिया जाता है। हमारी बहू-बेटियों को कुओं से पानी नहीं भरने दिया जा रहा। और तो और, मुझे बड़ी शर्म से कहना पड़ रहा है कि जब वे 'बाहर-कने' जाती हैं तो उन पर डले फेंके जाते हैं। ये लोग हमसे ऐसा व्यवहार कर रहे हैं जैसे यह गाँव इन्हीं का है—जोहड़, कुएँ इन्हीं के हैं,

शामलात की जमीन भी इन्हीं की है—हमारा यहाँ कुछ भी नहीं है। लगता है अब तो इस गाँव से हमारा दाणा-पाणी ही उठ गया है।' बल्लू कुम्हार की आवाज भर्राने लगी तो उसके भाई ने उसे कंधे पर हाथ रखकर बिठा दिया और बोला, 'भाइयो, आप तो जानते हो कि दाणा-चूरी-चणा कितना महँगा हो गया है। पशुओं को पूरी खुराक दे पाणा तो दूर हमारा ही गुजारा मुश्किल हो गया है। भाइयो, सारा निचोड़ यो है कि अब कल की पंचायत में हमारे खिलाफ कुछ हो तो हम सबने मिलकर उसका मुकाबला करना होगा।'

बीरू लुहार उसके बैठने से पहले ही खड़ा हो गया, 'लेण-देण और रेट बढाणे की बात मैंने भी करी थी। जवाब मिला कि चार आने की पात्ती छेत-पीटकर एक रुपया किस बात का? रेट नहीं बढ़ेंगे। हम गाँव में कोई और लुहार ले आएँगे। यही बात गाँव के चमारों को भी कही गई है। दस रुपए का चाम नहीं लागता, जूतियों के दाम चार-पाँच गुणा क्यूँ? भाइयो—बाटा भी तो यही चमड़ा लगाता है। क्यूँ चमेलाराम? पर उससे क्यूँ नहीं जाकर पूछते कि तू दस-पंद्रह गुणा क्यूँ लेता है? और ये क्यूँ देते हैं? पच्चीस-तीस हजार का लोहा पाथकर ट्रैक्टर बना दिया—कीमत लाख से भी ऊपर। क्यूँ नहीं जाकर पूछते उनसे ये लोग? उनके रेटों पर क्यूँ नहीं ऐतराज करते? मैं पूछता हूँ कि हम रेट इनसे पूछकर क्यूँ बढ़ाएँ? महँगाई भी क्या इनसे पूछ कर बढ़ती है।'

लगता था जैसे सबका सब्र खत्म हो चुका था। सभी एक साथ बोलने लगे, 'दिन-भर धूप में तपो, जाड़े में ठिरो और गारा-मिट्टी के साथ मिट्टी होओ—इनके मकान बनाओ। दिहाड़ी बढ़ाने की कहो तो गाँव से निकालने की धमकी। समाजी बायकाट, हुक्का-पानी बंद।'

'शहरों में बालों की कटाई कितनी हो गई है? और यहाँ अभी भी उन्हीं दानों के ऐवज में चल रही है जो वर्षों पहले थी।'

'हम इनका काम छमाही फसल के अनाज पर करते हैं। ये हमें नीचे का गंदा-मोंडा अनाज देते हैं। वह भी इस तरह जैसे कि दान या भीख दे रहे हों।'

'ये हमारी भी तो गलती है कि इनकी देहली पर जाकर भिखारियों की तरह पल्ला फैला लेते हैं।'

'एक ओर तो गरीबों के लिए रोजगार योजनाएँ बन रही हैं और एक ओर किस तरह दबाया जा रहा है—पीसा जा रहा है।'

कुछ भी पता नहीं चल रहा था कि कौन क्या कह रहा है और कौन सुन रहा है? जवान लड़के कुछ ज्यादा जोश में थे। अबने नाई का लड़का जीवन जो

कि शहर में दुकान करता है—कुछ हिचकता हुआ मगर जोश में खड़ा हुआ और बोला, 'बुजुर्गो और भाइयो, इस तरह अपनी-अपनी कहने से बात नहीं बनेगी। हमें आज पूरी गंभीरता से सब कुछ सोचना चाहिए। आप सब मेरी एक अर्ज सुनें सिर्फ दो मिनट चुप हो जाओ...' सब चुप होने लगे लेकिन अपनी-अपनी कहने को सभी कसमसा रहे थे। 'आप सब मेरे से बड़े हो—कोई गलत बात कही जाए तो सौ जूत मारना पर टिकाई से मेरी बात सुन लो।' जीवन के कहने का सब पर असर हुआ और वे चुप हो गए। 'यहाँ सब जात के लोग जमा हैं। कुम्हार, लुहार, नाई, बढ़ई, खाती सब जात के। मेरा बाप, मेरा दादा तुम सबके ब्याह-मुकलावों में नाई-पणा करते रहे हैं। यानी नाई सबका सीर का होता है। तुम सब हमारे जजमान हो। तो जजमानो, जब नाई सीर का हो सकता है तो तुम्हारा हुक्का सीर का क्यूँ नहीं हो सकता। आज हम मिलकर लड़ाई लड़ने की बात कर रहे हैं— पर कैसे? कुम्हार अपना हुक्का अलग गुड़गुड़ा रहे हैं, लुहारों का चिलम अलग बज रही है। बढ़ई अलग और नाई अलग। हम सब एक-दूसरे से बड़ा बनने और दिखाने की कोशिश करते रहते हैं लेकिन चौधरी के पास जाकर सब म्याऊँ बन जाते हैं। किसलिए? इसीलिए ना कि आप सब उसकी ड्योढ़ी में अपना-अपना स्वार्थ लेकर जाते हो और उसकी जी-हजूरी करते हो। हाँ एक बात और हमारी लड़ाई सिर्फ चौधरी से है—उसकी जात के सब लोगों से नहीं। वे तो बिरादरी के नाम पर उसका साथ देते हैं—नहीं तो उनमें से काफी हमीं जैसे हैं। इसलिए जजमानो...' खुसर-पुसर शुरू हो चुकी थी। लगता था जीवन की बात सबको जँची है पर बीच-बीच में विरोध भी बढ़ रहा था।

'यह बात सोलह आने सही है।'

'यह तो होना ही चाहिए।'

'नहीं-नहीं यह कैसे हो सकता है?'

'हम बढ़ई खातियों से हैं ही ऊँचे।'

'दस दिन शहर में बाल काटकर गाँव के रिवाज ही भूल गया है।'

'लड़का बात तो मार्के की कह रहा है।'

'छोड़ो ये सब फालतू की बातें हैं। चौधरी से कैसे मुकाबला किया जाए—यह सोचो!'

'इस हिसाब से तो चमेले को खाट पर बिठाना चाहिए था—अपने बराबर!'

'जो असली बात थी वो सारी गँदला गई है।'

‘ठीक है भाई ठीक है–असली बात करो, छोड़ो इस बात को।’

‘हाँ–हाँ अब हमें यह लड़ाई खड़े होकर लड़नी है। हाँ भाई चमेलाराम अब तू बोल...’

‘मैंने तो शुरू में ही कहा है काका कि मैं आप लोगों के दम पर हूँ। चौधरी के हुक्म का गुलाम नहीं, मैं...मैं...।’

‘ठीक है, ठीक है... कल पंचायत में देखा जाएगा।’

‘मैं देखूँगा इन्हें।’

‘मैं एक–एक को जानता हूँ।’

‘मैं देखूँगा एक–एक को।’

‘मैं...मैं...मैं... मैं...।’

‘हम’ से वे फिर इसी ‘मैं...मैं!’ पर उतर आए और इसी मैं–मैं के बीच मीटिंग खत्म हो गई। अबना नाई, उसका लड़का जीवन और चमेला बाकी सबसे कुछ गंभीर दिख रहे थे। उनके चेहरों पर झुँझलाहट भी थी।

अपने–अपने हुक्के लेकर सब उठ गए। अबने ने चमेले को मजबूत करते हुए कहा, ‘देख ले चमेले–अब यह सारा दारोमदार तेरे पर है।’ चमेले ने हाथ जोड़कर विश्वास दिलाया कि वह अपने हकों के लिए कुछ भी करने को तैयार है।

रात होने तक गाँव में खुसर–पुसर होती रही और पाँच–पाँच, सात–सात में दारू पीने वाले बँटते रहे। लगता था जैसे पूरा गाँव छोटी–छोटी टोलियों में बँट गया है।

चमेले के घर भी मुर्गा बना और आधी रात के बाद तक भी दारू चलती रही! अफसर का चमेले को गाँव की कलगी कहना, बल्लू कुम्हार की बैठक में उस पर पूरा–पूरा भरोसा किया जाना, प्रधानमंत्री को चिट्ठी लिखवाना और अब मुर्गे के साथ दारू! उसका नशा बढ़ता ही जा रहा था। एक–दो बार तो वह छत पर खड़ा होकर लड़खड़ाता हुआ ऊँचा भी बोल गया, ‘एक–एक को...चौधरी को...एक–एक को देख लूँगा...बामणो तुम क्या समझते हो? क्या समझते हो अपने–आपको...चमेले पंच के आगे तुम क्या हो? सारा दिन चौधरियों को...इन चौधरियों को जजमान, जजमान करते रहते हो...कोई अफसर जानता है तुम्हें...लेकिन चमेले को...चमेले को...’ उसके साथ पीने वालों ने उसे कई बार खींचकर बिठाया। पार्टी खत्म होने के बाद वह खाट में पड़ा–पड़ा भी बुड़बुड़ाता रहा–देख लूँगा एक–एक को...तभी उसने सुना कि उसे चौधरी ने

बुलाया है। उसने चारों ओर देखा। सब सोए थे! केवल चौधरी का सीरी उसके पास खड़ा था। उसने ऊपर देखकर समय का अंदाजा लगाना चाहा लेकिन सितारे एक जगह टिक ही नहीं रहे थे। उसने उठकर मुँह पर पानी मारा। सीरी को पहचाना और उसके साथ हो लिया।

इतने तड़के बड़े चौधरी का बुलावा? ज्यों-ज्यों वह हवेली की ओर बढ़ रहा था उसका नशा कम होता जा रहा था।

थोड़ी देर बाद जब चमेला हवेली से निकला तो वह गर्दन नीचे किए हुए था। उसने देखा कि बाहर अभी भी धुँधलका है। फिर भी उसे शंका हुई कि कहीं कोई देख न ले। उसने जल्दी-जल्दी चलने की कोशिश की लेकिन पाँव थे कि उठाए नहीं उठ रहे थे। धीरे-धीरे शंका में डर और झुँझलाहट भी शामिल हो गए थे। 'कहीं अबना नाई ना मिल जाए? अगर मिल गया तो? कहीं बल्लू कुम्हार ना किल जाये? अगर मिल भी गया तो क्या कहूँगा? लेकिन मैं भी क्या कर सकता हूँ? बात ही इस ढंग से कही उसने कि ना-नुकर करते ही नहीं बना। कोई गुंजाइश ही नहीं थी। चौधरी फिर भी बड़ा आदमी है। ताकतवर है। उसकी सब जगह पहुँच है। पर ये लोग यह बात थोड़े ही ना मानेंगे कि उसके सामने चमेला राम है क्या चीज?' वह अपने-आपको चौधरी के मुकाबले खुद ही काफी छोटा सिद्ध करने पर तुला था। और फिर वाकई छोटा पाकर खीझ भी रहा था। 'जो आदमी अफसरों को कहकर मेरे लड़के को पक्का करवाने की बात कह रहा है वह उसे नौकरी से हटवा भी तो सकता है। या कहीं दूर फिंकवा सकता है। उसने बातों-बातों में कहा भी तो था—मुख्यमंत्री से मेरे संबंध होने के कारण सभी अफसर मेरे से चलते हैं, मुझे सलाम मारते हैं। तुम चाहो तो तुम्हारा लड़का हमेशा यहीं मौज से नौकरी कर सकता है। अब बताओ मैं कितना तो अड़ा कि मैं पंचायत में जरूर बोलूँगा—सिर्फ न्याय की बात कहूँगा। किसी का भी पक्ष नहीं लूँगा। पर उसने मेरी सुनी ही कहाँ? साली हमारी तो इन लोगों के आगे हाथ बाँधे खड़े रहने की आदत हो गई है। और ये जो इतना उछलते हैं—कौन-सा है जो उसके सामने जाकर बोले। और फिर बार-बार वह कह तो रहा था कि न्याय-कुन्याय की बात तुम सब हम पर छोड़ दो, तो छोड़नी भी पड़ी। आज कौन-सा इन्होंने पहाड़ तोड़ लिया जो अब चमेले से इतनी उम्मीद लगाए हैं।'

वह अपनी स्थिति पर झुँझलाने लगा, 'सब जानते है कि पंचायत में जब

कोई बात चमेला कहेगा तो वह बात आने-दो आने या मुश्किल से चार आने की होगी। जब वही बात कोई बामण कहेगा तो कम-से-कम बारह आने जरूर होगी। और अगर वही या उससे भी हल्की बात चौधरी या चौधरी की जात का कोई आदमी कहेगा तो वह सवा सोलह आने सही मानी जाएगी। सारा जमाना जानता है कि पंचायतों में वजन कही गई बात का नहीं—कहने वाले की जात का होता है। लेकिन फिर भी चमेले से इतनी उम्मीद? ठीक है मैं आज गाँव में ही नहीं रहूँगा। कल या परसों वापिस आऊँगा और कह दूँगा कि समधन बीमार थी। अचानक बुलावा आ गया तो जाना पड़ा।' धीरे-धीरे तर्कों-वितर्कों से अपने पक्ष को मजबूत करता हुआ वह अपने घर पहुँच गया। उसने शुक्र मनाया कि फसलें कट चुकी हैं और खेतों में कोई काम नहीं है इसीलिए उसे किसी ने नहीं देखा। वह खाट पर बैठ गया। घर में अभी भी सब सोए पड़े थे।

उसने देखा कि सामने घूरे पर पड़ी रात को कटे मुर्गे की हड्डियाँ और पंखों पर कुत्ते और कौवे आ गए हैं। वे छीना-झपटी कर रहे हैं। एक कौवे के हाथ शायद मुर्गे की कलगी लग गई है जिसे वह हवेली की ओर ले उड़ा है। कुछ और कौवे भी काँव-काँव करते उसके पीछे लगे हैं। चमेलाराम ने उधर से ध्यान हटाकर जेब से प्रधानमंत्री को लिखी चिट्ठी निकाली और उसे उलट-पलटकर देखने लगा। कुछ शब्द उसके जेहन से उतर ही नहीं रहे थे। 'गरीब, दलित, मजदूर ही हमारी असली ताकत हैं, हम चाहते हैं कि इन्हें पंचायतों में अधिक-से-अधिक नुमाइंदगी मिले...' हम गरीब तो बस मोम के टुकड़े हैं जो डोर को मजबूत करते-करते कट रहे हैं—खत्म हो रहे हैं। सोचते हुए उसने चिट्ठी के टुकड़े-टुकड़े कर घूरे पर नुचे हुए पंखों के बीच उछाल दिए।

(प्रकाशित : 'गिरा हुआ ओट')

•

फूली

उचटी नींद के ऊल-जलूल सपने और उन सपनों के शुभ-अशुभ विचार। दूली के परिवार में कुछ दिनों से ऐसे ही सपने देखे जा रहे थे। कभी-कभी ये सपने लाल मिर्च की चटनी जैसे चरचरे होते। इसके विपरीत कभी-कभी काली-लाल चाय से भी मीठे लगते। आखिरकार सभी सपने सामने बँधी फूली पर खत्म होते। फूली अगले महीने आसुज (आश्विन) में ब्याने वाली है। इसी के साथ वह सूखी रोटियों पर रखी चटनी को मक्खन में बदल देगी। साथ ही लाल-काली चाय को गाढ़ी और दूधिया बना देगी।

किसानी गाँव में किसी की अच्छी फसल या अच्छे पशु का जिक्र होता ही है। दूली की भैंस की चर्चा भी हर जगह थी। नल पर, बिटोड़ों में, हर जगह उसी की भैंस का जिक्र था। जहाँ भी औरतें इकट्ठी होतीं, भैंस की बात चल पड़ती। भैंस के साथ दूली की बहू का भी जिक्र आता। वे कहतीं–'इतनी मेहनती लुगाई हमने आज तक नहीं देखी।' कई पुरुष तो अपनी पत्नियों को डाँटने लगे थे। कहते–'डंगर-ढोर नहीं सँभालने आते हों, तो दूली की बहू से सीख कर आओ।'

गाँव में भैंसों के व्यापारी आते। उन्हें भी सब से पहले दूली की भैंस ही दिखाई जाती। दलाल बता देते थे वो बेचना नहीं चाहते। पर साथ ही यह भी कहते कि एक बार देखने में क्या हर्ज है। शायद उनका विचार बदल गया हो। बहुत ही गरीब हैं। कब तक ऐसी कीमती भैंस को नहीं बेचेंगे? भैंस को देखते ही व्यापारी ईर्ष्या से भर उठता। काश! यह भैंस उसके घर के खूँटे से बँधी होती। चौड़े पुट्ठे, लंबी पूँछ, गोल-गोल छोटे सींग। इनसे भी बढ़कर भारी आकार लेती बाख पर लटकते अँगूठों जैसे एकसार चार थन। व्यापारी के पूछने के पहले ही दूली की बहू बोल उठती–'ना, हम नईं बेचते।' यह सुनने के बाद भी वे भैंस की चिकनी काली चमड़ी पर अपना हाथ फिराते। चिकनाई के कारण उन्हें हाथ फिसलता हुआ मालूम देता। खूँटे की ओर जाकर वे गोलाई पकड़ रहे सींगों को देखते। उसके माथे पर खिली कपास के फाहे जितने सफेद फूल को निहारते। उस पर अपनी रुपए गिनने वाली अँगुलियाँ फिराते। जाते-

जाते भी एक–दो बार मुड़कर अपनी ललचाई–व्यापारी नजर फूली पर जरूर डालते।

अँधेरा होने पर दूली शहर से दिहाड़ी कर के लौटता। साइकिल खड़ी कर के सब से पहले भैंस के पास जाता। उस पर हाथ फिराते–फिराते वह सुनता–आज फिर कोई व्यापारी आया था, फूली के लिए। मुँह–माँगे दाम देने को तैयार था। दूली गर्व से भर जाता। उसकी दिन की थकान गायब हो जाती।

दूली सोचता कि कितना हँसा था वह हड़ियल कटिया को देखकर। हँसी तो बड़ी बेटी भी थी। लेकिन वह बड़ी थी, जल्दी ही माँ की ओर हो गई। छठी में पढ़ने वाली छोटी बेटी और आठवीं में पढ़ने वाला बेटा बापू की ओर रहे। उन्होंने कई दिनों तक उस मरियल–हड़ियल कटिया का मजाक बनाए रखा। हँस–हँसकर लोट–पोट होते हुए उन्होंने कटिया का नाम ही गिफट रख दिया था। मामा का प्यारा–प्यारा गिफट (गिफ्ट)।

अड़ोसी–पड़ोसी भी दूली की बहू का मजाक उड़ाने लगे थे–

'जैसी हड़ियल आप, वैसी ही कटिया ले आई।'

'तेरे पीहर में सब कुछ ऐसा ही होता है क्या?'

'दूली जब आज तक तेरे हाड़ नहीं ढक सका, इसको क्या झोटी बनाएगा?'

ऐसी बातों के चलते दूली की बहू को अपने निर्णय पर पछतावा–सा होने लगता। सोचती कि यह मैंने क्या माँगा? भाई पक्की नौकरी में है। शहर के एक कॉलेज में चौकीदार है। उसने गाँव में अपना पुराना घर गिराकर दो पक्के कमरे बनवाए हैं। पक्के लेंटर वाले। चिनाई लगते ही उसने बहन को बुला लिया था। नींवों पर चौखट रखी तो रिवाज के अनुसार बहन से चौखटों पर तोते बँधवाए गए। बहन ने गोटा लगे हरे कपड़े के तोते बना रखे थे। बड़े चाव से बारी–बारी उन्हें मौली के धागों से चौखटों पर लटका दिया। इसी के साथ उस की कल्पना में भाई से मिलने वाला संभावित सगन घूमने लगा। मकान पूरा हुआ। भाई ने खुश होकर बादशाह की तरह कहा–'माँग बहन! क्या माँगती है तोता बँधवाई का?' बहन को भाई की हैसियत का पता था। भाई ने ये दो कोठड़ियाँ भी इधर–उधर से जुगाड़ करके बनवाई हैं। उनमें भी काफी काम अधूरा पड़ा है। खिड़कियों को फिलहाल बोरियाँ लटकाकर ढक दिया है। फर्श भी नहीं डलवाया। नीचे से गोबर से लीपकर ही रहने लायक बना लिया है। वह भाई पर बोझ नहीं डालना चाहती थी। उसे पता था कि भाभी अपने संदूक से अच्छे–हल्के पाँच सूट तो जरूर देगी। फिर क्यों ना भाई से सौ–दो सौ रुपए लेने की बजाय

कटिया ले ली जाए। पल जाएगी।

इस कटिया की माँ भी अच्छी बणत की खूब दूध वाली भैंस थी। नींव खुदवाने के समय ही भाई को उसे बेचना पड़ा। कटिया तब एक वर्ष की थी। बहन को इस हड़ियल कटिया में सरर्र-सरर्र बाल्टी भरने वाली भैंस नजर आई। वह भगवान जैसे भाई से माँग लाई कटिया, वरदान की तरह।

हिम्मती इतनी कि कई कोस पैदल चलकर आई। कभी भागती के साथ भागती। कभी रुकती को पीछे से धकियाती। कभी गले की रस्सी खींचती। इस तरह उसने कटिया घर ला छोड़ी।

जितना मजाक होता गया उतना ही उस का निश्चय पक्का होता गया। मन-ही-मन सोचती कि इसे ही पालकर तगड़ी झोटी बना कर दिखाऊँगी।

जेठ के महीने की तपती दुपहरियाँ। गेहूँ कटने के बाद खेत खाली सुनसान पड़े होते। दूर-दूर तक आदमी का नामो-निशान नहीं होता। धूल भरी लूएँ चलतीं। ऐसे में राहगीर खेतों के बीच हिलती-डुलती मानुस-जात की परछाईं को देखते। वे बड़ी हैरानी से सोचते कि इतना हिम्मती ये कौन है? लेकिन जानने वाले सहज ही अंदाजा लगा लेते थे। उन्हें भरोसा होता था कि यह दूली की बहू ही होगी। वही अपनी हड़ियल कटिया के लिए खेत-खेत, मेंड़-मेंड़, नालों-खालों के किनारे हरा ढूँढ़ती फिरती है। कटी गेहूँ की तीखी कीलों जैसी फासों से पैर फुड़वाती। छोटी सख्त घास को निकालते हुए हाथ छिलवाती। अपने सिर की चुन्नी की छोली को एक-एक तिनके से भरती। इस तरह साँझ तक वह गठरी-भर चारा इकट्ठा कर लाती थी।

वह सोचती थी काश! उसकी भी अपनी कोई छोटी-मोटी क्यारी होती। फिर उसे यूँ किसी के खेत में क्यों भटकना पड़ता! वह अपनी क्यारी में ज्वार-ग्वार बीजती। अपनी कटिया को हरा-हरा कचिया-कचिया चारा चराती। वह खूब जुगाली करती और झटपट बाल्टी भर दूध...।

दूली ने भैंस के दोनों ओर कई बार हाथ फिराया। कुरता निकालकर औसारे की छान से बाहर निकले बाँ पर टाँग दिया। फिर बूढ़ी माँ के खटोले के पास पड़ी खटिया पर पसर गया। दूली की बहू चूल्हे पर रोटी बना रही थी। बेटे ने चूल्हे के पीछे से हुक्की उठाकर ताजा कर दी। फिर चिलम भरकर हुक्की बापू को पकड़ाई और उसी के साथ सटकर बैठ गया। थोड़ा रुककर वह अबोधपन के साथ बोला—'बापू! आज बपारी आया था अपनी फूली को लेने। उसकी कमीज के नीचे पहनी बनियान की जेबें भरी हुई थीं। कमीज दो-तीन

जगह से उठी हुई थी। माँ जितने रुपए माँगती, वह दे देता। बिल्कुल तैयार था।'

वह कुछ कहता, इससे पहले ही औसारे से सवाल आया–'पैसे ले आया क्या? तूड़ी वाले को आज जरूर देने हैं।'

'नहीं! आज ठेकेदार नहीं मिल पाया। कहीं बाहर गया हुआ था। कल मिल जाएँगे।' कहकर दूली ने चिलम में चिमटी मारकर अँगारियाँ इधर-उधर हिलाईं। फिर तमाखू को सुलगाने के लिए छोटे-छोटे कश खैंचने लगा। दूली की कल्पना में नोटों की गड्डियाँ आने लगीं। बेटे की बात बीच में ही रह गई।

'अब मैं क्या करूँ? असल में तो वो अभी आ जाएगा। नहीं तो सबेरे तेरे जाते ही आ धमकेगा। बाहर गली में मोटर साइकिल पर चढ़ा-चढ़ा टीं-टीं करता रहेगा। खैर, उसका भी क्या कसूर है। दस गठड़ी तूड़ी के पैसे हम दो बार में भी पूरे नहीं कर पाए। तूड़ी खत्म भी होने वाली है। करार पर पैसे दिए जाते तो आगे भी...तेरे इस ठेकेदार को भी आज ही बाहर जाना था।' दूली की बहू निराशा और लाचारी से फूँकनी पटकती हुई बोली। दूली चुपचाप सुनता रहा। घरवाली ने बात जारी रखी– 'एक बोरी गोसे के पैसे लीलू की माँ से लेने हैं। वो अभी नहीं दे रही। एक बोरी के मगनी की बहू से पहले लेने थे। एक आज भरवाकर ले गई है। वो भी पैसे अभी नहीं देगी। मास्टरनी से मैं ले नहीं रही। कुछ दिनों में उसके पीहर से बाजरा आएगा। कह रही थी कि भैंस की ब्याँत पर परात-भर दे देगी। थोड़ा-बहुत गुड़ भी देने की हाँ कर रखी है। उस से पैसे ले लिये तो एकदम ब्याँत के टैम चाहने वाली ये चीजें कहाँ से लाएँगे?'

दूली का तमाखू ठीक से नहीं सुलगा था। मजा नहीं आया। वह नहाने के लिए उठ गया।

कच्चे आँगन में तूतड़ी (शहतूत) का पेड़ खड़ा है। उसी के पास नहाने-धोने के लिए आठ-दस ईंटें टिकाई हुई हैं। दूली दिन-भर का रेत-सीमेंट-मिट्टी गात से छुड़ाने के लिए रगड़े लगाता है। गिलास के साथ पानी डालता हुआ वह कुछ-न-कुछ कहता रहता है। सुनता रहता है। दिन-भर बाहर रहने के कारण यही थोड़ा-सा समय होता है बोलने-बतलाने का।

'टोकरे वालों पर जा आती...कुछ दे दे तो...!' दूली ने गले पर रगड़ने के लिए गर्दन उठाई थी। नजरें ऊपर तूतड़ी पर गईं और उसे टोकरे वाले याद आ गए। वे टोकरे बनाने के लिए फागुन में तूतड़ी छाँग कर ले गए थे। उनका और कोई कारोबार तो है नहीं। शहतूत की लचीली टहनियों के टोकरे, टोकरियाँ,

बोहिए बना–बेचकर ही गुजारा करते हैं।

'वो बेचारे भी अपने जैसे हैं। फिर भी एक–दो बार जब भी गए हैं, उन्होंने पाँच–दस दिए ही हैं। मैं कल खुद गई थी। उनकी एक बड़ी औरत मिली थी–काली–सी... । स्यात उनकी माँ हो या घर की सब से बड़ी बहू। वह कह रही थी कि थोड़ी–सी गेहूँ ले जाना। कुछ लगी हुई (सुरसी की खाई हुई) है। किसी ने उन्हें टोकरों के बदले काफी सारी दे दी। बोली कि भैंस को दलिया बनाकर देने का यह सही टेम है। दलिए के साथ दो–चार सेर सरसों का तेल भी दिया जाए तो ठीक रहेगा। ब्याँत भी सही रहेगा और दूध भी बढ़ेगा। कह रही थी कि बहू! भैंस का और चाक्की का एक हिसाब होवे। जो डालोगे जैसा डालोगे, वैसा ले लोगे। हम खुद इसी गेहूँ का दलिया खा रहे हैं। घर से पूछ लेना और सलाह बने तो ले जाना, बहू!'

दूली पूरा जोर लगाकर बोला, 'रहने दे। राशन काट की ले आएँगे।'

'तू बस राशन काट का नाम ना लिया कर। डीपू वाला तेरा बाप लगता है या मेरा? जैसे जाते ही बोरी उठवा देगा। कहेगा–कोई बात नहीं...पैसे नहीं हैं तो फिर आ जाएँगे। बड़े खुश हुए थे पीला राशन काट बनवाकर। जैसे कि सरकार से तनखा बँध गई हो। चूल्हे में फूँक दे इसे। एक रोटी तो सिंकेगी।'

दूली सुन रहा था और रगड़े लगा रहा था। बाद की सारी बात उसने दो–चार गिलास पानी के साथ हरि ओम... हरि ओम में घोल दी।

पत्थर–से कानों वाली बुढ़िया को जैसे पैसों की बात सुन गई। उसने अंदाज लगा लिया कि ऐसे में पैसों की ही बातें हो सकती हैं। खटोले पर पीठ रगड़ते हुए वह बोली–'दूली रे! मेरी माने तो बेटा इसे बेच दे। जीते जीव का क्या धन (पूँजी)। जब तक साँस तब तक आस। साँस गई तो चमड़ा और हाड़। अब तो बेटा ये ढका ढोल है। जो माँगोगे स्यात मिल भी जावे। पर ब्याने के बाद बेटा, थन, दूध, बच्चा, सुभाव–सबका तोल–माप होवे। उसी के हिसाब से पैसे लगैं। बाकी थारी मर्जी बेटा।'

दूली की बहू ने कुछ घबराई–सी आवाज में मात्र इतना कहा– 'इसे ऐसी ही माड़ी बातें सूझती है।'

लेकिन इस तरह की बातें दूली या दूली की बहू के लिए नई नहीं थी। गाँव में ऐसी घटनाएँ आम तौर पर सुनने में आती रहती हैं। पली–पलाई भैंसें एकदम यूँ खूँटा खाली कर जाती हैं कि विश्वास ही नहीं होता। मरने के बहाने–कारण ही चर्चा में रह जाते हैं। जोहड़ में पानी के साथ मेढकी पी गई थी। चारे के साथ

कोई जहरीला कीड़ा खा गई थी। ब्याँत में गर्म–सर्द हो गया था। पेट में बच्चा उलटा हो गया था। और यह तो अक्सर हो जाता है कि बच्चा मरा हुआ जन्मा, कीमत आधी। बच्चे को थनों से नहीं लगाया, कीमत कम। कोई थन सिकुड़ गया या मारा गया, तो कीमत कम। दूध कम हुआ तो उसी के हिसाब से कीमत। मेहनत, आशाएँ एक झटके में सब खत्म।

दूली का ध्यान फूली पर केंद्रित हो गया। सही पल गई थी लेकिन अब यह सँभालनी मुश्किल हो गई है। बड़े–बूढ़े कहते हुए सुने थे कि कमजोर के घर तगड़ी भैंस और घोड़ी कब तक रुकेगी? बिकेगी या छिनेगी (चोरी हो जाएगी)।

दूली नहा कर खाट पर आ बैठा। बाहर गली से कोई घोषणा जैसी आवाज सुनाई दी। उसने कुंडी सोटे से खट–खट कर चटनी बना रही बड़ी बेटी को थमने को कहा। खट–खट रुकी तो गाँव के चौकीदार की आवाज साफ सुनाई दी। वह कहता घूम रहा था– 'कल दस बजे सवेरे चौपाल में 'लैकसनों' वाले आवेंगे। वोटों की फोटो खींचेंगे। जिसकी रहती हो खिंचवा लियो रै चौधरियों।'

'बणा ले बेटी फटाफट बणा ले। भूख लगी हुई है। मैंने सोचा था स्यात कोई अपणे काम की बात हो।'

बेटी ने कुंडी में पड़े प्याज–नूण–मिर्च पर सोटे मारने की गति बढ़ा दी। वह बापू के साथ अधिक नहीं बोलती। जब दोनों छोटे बोल रहे हों तो वह चुपचाप उनकी ओर देखती रहती है। हाँ! बीच–बीच में धीरे से माँ से जरूर कुछ कहती रहती है।

छोटों ने बापू की खाट पर पाँयतों की ओर अपनी जगह बनाई हुई है। बेटे की 'बपारी' वाली बात अभी अधूरी थी। उसने चुभती–गड़ती पाँयतों से उकसते हुए पूछा–'बापू! जितने रुपए हम माँगेंगे बपारी उतने ही दे देगा?'

'नहीं देगा तो क्या होगा? बपारी अपणे घर राजी, हम अपणे घर और फूली अपणे खूँटे राजी।'

'फिर हम इतने रुपयों का क्या करेंगे?'

'हम... हम बेटा अपणे घर का बड़ा–सा गेट बणाएँगे। उस पर लिखवाएँगे 'गिफ्ट भवन, पंद्रह सौ पचास बटे अठारह, अर्बन स्टेट।' फिर मैं लेबर चौक से काफी सारे मजदूर लाकर अपणे आँगन को पक्का करवाऊँगा। नहाणे की पक्की चौकी बणवाऊँगा। ...और फिर हम बिजली की मिक्सी की चटनी से रोटी खाया करेंगे।'

गेट की बात, मकान का नंबर, अर्बन स्टेट सुनकर बच्चे हँसे। दूली पिछले 7–8 महीने से शहर में इसी नंबर के मकान में मजदूरी कर रहा है। फिर उन्होंने अपने घर के प्रवेश द्वार पर देखा। वहाँ तो किवाड़–गेट–थंबी कुछ भी नहीं था। बाहरी पशुओं को रोकने के लिए केवल दो बल्लियाँ, 'एक्स' बना कर अड़ा रखी थी।

'फिर तो बापू मैं गेट पर 'वैल्कम' लिखूँगा। मुझे वैल्कम लिखने से गुड मिलता है। और बापू तो गँठे (प्याज) भी इकट्ठे ले आएँगे। ...एक–एक, दो–दो रुपए के लाने पड़ते हैं...। माँ मुझे ही भगाती रहती है,' बेटे ने खुश होते हुए कहा।

'एक साइकिल ले लेंगे। मैं और तू दोनों साइकिल पर स्कूल जाया करेंगे। दीवाली पर मैं एक स्वेटर और फीतों वाले कपड़े के सफेद जूते लाऊँगी।' छोटी बेटी बेटे से भी ज्यादा खुश हो रही थी।

'मैं भी तो लाऊँगा।' बेटे ने छोटी को कोहनी मारते हुए कहा।

बड़ी बेटी चुपचाप उनकी बातें सुने जा रही है। वह कुछ नहीं बोल पा रही। आखिर फूली की संभावित कीमत में उसका ब्याह भी तो शामिल है। इस बात का जिक्र वह माँ–बापू के मुँह से कई बार सुन चुकी है।

'दे बेटी, रोटी, सब को...। थोड़ी–थोड़ी चटनी रख दे...।' माँ ने रोटी की राख दूसरे हाथ पर मारकर झाड़ते हुए कहा।

रोटी खाते हुए भी दूली फूली के बारे में ही सोचता रहा। बच्चों की बातें और फूली से जुड़ी आशंकाएँ उसके दिमाग में घूमने लगीं। साथ ही तूड़ी के पैसे भी याद आने लगे। उसने एक दिन के लिए अपने मिस्त्री से भी पैसे उधार माँगे थे। लेकिन उसके पास भी पैसे नहीं थे। ऐसे में उसे खाली हाथ ही आना पड़ा। दूली की बहू घर के छोटे–मोटे खर्चे खुद ही चला लेती है। इसके लिए वह दूली को कभी नहीं कहती। बच्चों की पढ़ाई का भी सारा खर्च वहीं दे रही है। साथ ही अड़ी हुई है कि बच्चों को आगे तक पढ़ाएगी। वह दो घरों का गोबर उठाती है। आधे का हिसाब है। सुबह जाकर उनके डंगरों का गोबर–मूत सीतती है। सूखा करती है। तसलों में गोबर भरकर गाँव से बाहर उनके बाड़ों में गोसे थापती है। सूखने पर आधे अपने घर ले आती है। बाकी आधों का उन का बिटोड़ा बनवाती (चिनती) है। बड़ी बेटी भी इस काम में उसका हाथ बँटवाती है। गाँव में कई घर दूली की तरह ही भूमिहीन हैं और पशु नहीं रखते। उनमें से कई इसी से गोसे मोल लेकर अपने चूल्हों का काम चलाते हैं। लेकिन

उनके पैसे ठीक से नहीं आ पाते। इसके कारण यह थोड़ा–बहुत ही काम चला पाती है।

दूली खुद शहर में दिहाड़ी पर जाता है। वह कई वर्षों से एक ही ठेकेदार के पास है। उसकी एक साथ कई–कई कोठियों की चिनाई लगी रहती है। वह अपने मिस्त्रियों और लेबर को हफ्तावार पेमेंट करता है। दूली को एडवांस की किस्त काटकर थोड़े से पैसे मिलते हैं। इतने पैसों से चूल्हे पर चटनी–रोटी भी ठीक से नहीं चल पाती। साइकिल खराब हो जाए तो उसकी मुरम्मत भी चिंता में डाल देती है। अर्बन स्टेट में ईंट–गारा ढोता–ढोता वह बूढ़ा होता जा रहा है। वहाँ की कोठियाँ साल–भर में ही पूरी हो जाती हैं। बनने के बाद लगता है जैसे पूरी–की–पूरी मार्बल की बनी हों। वह समझ नहीं पाता कि कहाँ से आता है उनके पास इतना पैसा? ऐसे कौन से काम हैं जिनमें इतना पैसा है? क्या वे लोग उससे ज्यादा मेहनत करते होंगे? खुद ठेकेदार ही उसके देखते–देखते लखपति बनता जा रहा है। जब कि वह सारा काम लेबर से करवाता है। वह भगवान की लीला है या इन आदमियों की?

मच्छर बहुत हो गए हैं। फूली के पास कोठियों से लाए लकड़ी के बुरादे से धुआँ कर दिया गया है। वे खुद भी बीजणे ले–लेकर कोठड़ी में लेट गए हैं। हवा बिल्कुल नहीं चल रही। कोठड़ी में उमस और घुटन है। बच्चे संभवतः सो गए हैं। लेकिन वे दोनों धीरे–धीरे बीजणे हिलाते हुए पड़े हैं। बाहर बूँदा–बाँदी शुरू हो गई है।

इधर–उधर करवटें बदलने के बाद उसे लगा कि दूली अभी जाग रहा है। वह बोली—'कभी माँ सही कह रही हो। बच्चों के दूध की तो दूर कभी यह घर भी अपना न हो पाए?' उसने अपने नीचे इकट्ठी हो रही पतली दरी को सीधा करते हुए कहा।

दूली जागता पड़ा था। वह भी वही सोच रहा था। अब तक फूली को ले कर तमाम शंकाएँ दबी–दबी थीं। अब माँ ने उन्हें शब्दों के रूप में सामने खड़ा कर दिया था। अपनी शंका बाहर से शब्द बनकर सुनाई दे तो ज्यादा परेशानी होती है। उसके अर्थ और ज्यादा दिक्कत पैदा करने लगते हैं। अब फूली की शंकाओं में यह घर वाली शंका भी शामिल हो गई थी।

दूली का घर देखकर कोई भी अचंभे में पड़ सकता है कि इन्होंने गली पर कब्जा करके घर बनाया हुआ है। पचहत्तर फुट लंबा और ग्यारह फुट से भी कम चौड़ा। इतनी तंग तो आजकल कोई गली भी नहीं रखता। लेकिन मिल

गया था ठीक भाव में। बस, ये अपनी दड़बे जैसी पुश्तैनी कोठड़ी छोड़कर यहाँ आ बैठे।

असल में यह तीन भाइयों का पैंतीस–पचहत्तर का एक बाड़ा था। छोटे भाई की शहर में नौकरी लग गई। जमीन–घर को लेकर तीनों में तकरार हो गई। तकरार इतनी बढ़ी कि वह दुश्मनी में बदलने लगी। छोटे भाई ने हर जगह के तीन–तीन हिस्से करवाए। बाड़े के बँटवारे में कुछ ज्यादा ही बदले की भावना से काम ले गया। भाइयों ने कहा था कि अपना हिस्सा दाएँ या बाएँ एक ओर से ले ले। इससे उन दोनों का इकट्ठा बड़ा हिस्सा रह जाता। परंतु वह नहीं माना। उसने अड़कर बीच वाला हिस्सा ले लिया। तीन हिस्से, तीनों गली जैसे। वह यह भी नहीं चाहता था कि उसका हिस्सा खाली पड़ा रहे। उसे डर था कि कहीं भाई उस पर कब्जा न कर लें। दूली पाँचवीं तक उसके साथ पढ़ा था। फिर वह स्कूल छोड़कर गाँव के ही एक जमींदार का सीरी लग गया। इसके बाद भी इनके बीच बराबर राम–रमैया बनी रही। जब भी मिलते एक–दूसरे की राजी–खुशी पूछने के लिए जरूर रुकते। उसने दूली को इस हिस्से का मालिक बनने के लिए कहा। दूली ने अपनी गरीबी के चलते लाचारी जताई। इस पर वह बोला– 'दूली ! अब तू गरीब कैसे है ? तेरी झोटी पल रही है। तू आकर बैठ जा इस घर में। कोई ना–वा नहीं। आधे पैसे झोटी के ब्याँत पर दे देना। बाकी के चार सलाना किस्तों में पूरे कर देना।'

डरते–डरते दूली की बहू ने भी उसकी हिम्मत बढ़ा दी– 'देखा जाएगा, ले ले।' और ये यहाँ आ बैठे। कब्जा लेने से पहले दूली ने भाइयों की सहमति ले ली थी। भाइयों के पास भी और कोई चारा नहीं था। उन्होंने दूली को उदासीन–सी सहमति दे दी। इधर उन्होंने अपने हिस्सों में भी रुचि लेना छोड़ दिया था। अब सुना है कि वे यहाँ अपनी कारें खड़ी करने के लिए गैराज बनाएँगे।

जिस कोठड़ी में ये अब पड़े हैं, वह बरामदेनुमा एक कड़िया जगह है। यह छोटे भाई ने अपने पशुओं को बाँधने के लिए बनाई थी। बिल्कुल कामचलाऊ–सी। दूली ने कुछ ईंटें जोड़कर चौखट खड़ी करके इसमें किवाड़ लगा लिये। हिस्सा लेने के समय जो कंधोड़ी (छोटी व कच्ची–पक्की दीवार) वह खींच गया था, वही यूँ–की–यूँ हैं। चूल्हे के लिए छान डालकर छोटा–सा औसारा बना लिया। इसमें चूल्हे के साथ थोड़ा–बहुत ईंधन रखने की जगह भी बना ली। इसके बाद भी माँ के छोटे–से खटोले के लिए जगह निकल आई। पुश्तैनी घर में फूली को गली में बाँधनी पड़ती थी। दूली और उसका बेटा कुछ दूरी पर

खंडहर होती एक हवेली में जा सोते थे। यह हवेली सुनसान पड़ी रहती थी। इसके मालिक वर्षों पहले गाँव छोड़कर दिल्ली चले गए थे। वहाँ वे अब करोड़पति हैं। इसकी छतें लगभग सारी गिर चुकी हैं। थोड़ी–बहुत आधी–पराधी बची हैं और गिरने वाली हैं। वहीं दूली ने कुछ जगह अपनी भीड़ी–सी खाट के लिए सुरक्षित कर ली थी। बरसात में हमेशा छत गिरने का डर रहता। इसी डर से दूली ने कई रातें हवेली में अधजगी बिताई थीं।

अब वे सब इकट्ठे एक कोठरी में सोते हैं। केवल माँ का खटोला बाहर रह जाता है। कोठरी में केवल तीन खाटें ही आ सकती हैं। एक पर दूली बेटे के साथ सोता है। दिन–भर काम करके बड़े होते बेटे के साथ वह बढ़िया नींद नहीं ले पाता। एक पर दोनों बेटियाँ सोती हैं। दोनों में काफी धक्का–मुक्की होती रहती है। यहाँ तक कि वे दोनों नींद में भी लड़ती हैं–

'तू मेरे ऊपर पड़ी है।'

'मैं कहाँ, तू मेरे ऊपर लातें रखे हुए है। तेरी ओर जगह ज्यादा है। तू उधर हो ले।'

'नहीं होती जा...।'

खाटों की हालत भी कुछ ठीक नहीं है। केवल दूली की खाट ही कुछ ठीक है। बाकी दोनों तो झोली की तरह हुई पड़ी हैं। वह भी बूढ़ी माँ ने साँठ–गाँठ कर किसी तरह अटकाई हुई हैं। वह स्वयं एक दिन पूरी हसरत के साथ दूली से कह बैठी– 'बेटा सारी उम्र गुजर गई खटोले पर गोडियाँ मोड़कर सोते हुए। अब तो एक खाट बनवा दे मेरी। बुढ़ापे में तो पाँव पसारकर सोकर देख लूँ।'

दूली ने हाथ से उसकी ओर 'कुछ दिन ठहर जा' का इशारा किया था। साथ ही फूली की ओर भी हाथ किया था कि इसे बिक जाने दे। फिर तेरे लिए पलँग बनवा दूँगा।

'अच्छा बेटा, भगवान तुझे लंबी उम्र दे,' माँ ने लंबी साँस भरकर कहा था। इसके साथ ही खुद भी बड़ी उम्मीदों से फूली की ओर देखा था।

माँ के लिए खाट की वह कभी नहीं सोच पाया। लेकिन दो खाटों के लिए बान लाने की उसने कई बार सोची। पर वह भी नहीं ला पाया। इस तरह खाटें भी फूली के बिकने की प्रतीक्षा में ही हैं।

कोठरी का मुँह भी उत्तर में है। पुरवा–पछवा कोई भी हवा कोठरी में नहीं लगती। इसी वजह से बाहर बूँदा–बाँदी शुरू होने के बाद भीतर घुटन और बढ़

गई है।

इसके बावजूद एक तरफ फूली के लिए छान डल गई है। साथ में तूड़ी के लिए छोटी-सी छतड़ी बना दी गई है। आँगन के बीच में तूतड़ी का पेड़ गर्मियों में छाँव देता है। सर्दियों में धूप में बैठने को फिर भी काफी आँगन बचा रहता है। चौमासे में दिक्कत कुछ बढ़ जाती है। पूरा आँगन गारा-गारा हो जाता है। यही नहीं, इसमें केंचुएँ भी निकल आते हैं। वे पूरे आँगन में लकीरें बनाते हुए चूल्हे तक आ पहुँचते हैं। दूली यही सब सोच रहा था। दूली की बहू ने फिर दोहराया—'कभी यह इतना अच्छा घर भी हाथ से न निकल जाए! बड़ी मुश्किल से घर वाले हुए हैं।... ये ठीक-ठाक ब्या जाए, बस। केवल पंद्रह-बीस दिन बच्चों को दूध की डकारें दिलवाकर इसे बेच देंगे...।' माँ की बातों से उपजी शंकाएँ उनका पीछा नहीं छोड़ रही थीं।

दूली ने हँसी जैसी हँ-हँ के साथ कहा— 'सपने तो सभी को बुरे-बुरे आ रहे हैं। बाकी देखो। बच्चों के करम में दूध और घर होगा तो सब ठीक बीतेगा।'

माँ की बात के साथ-साथ सपनों की बातें भी इन्हें परेशान कर रही हैं। कल बड़ी बेटी ने सुबह उठते ही बताया था— 'ऐसा सपना आया जैसे कि एक औरत मुझे बहुत बढ़िया कढ़ाई वाला सूट दे गई। मैंने वह सूट दरियों में छिपा दिया। थोड़ी देर बाद देखा तो सूट वहाँ नहीं मिला। मैं खूब रोई। खूब रोई।'

आज बेटे ने बताया कि गाँव के मंदिर में गुलगुले बँट रहे थे। उसने झोली भरकर गुलगुले लिये और चल पड़ा। सोचा कि घर जाकर इकट्ठे बैठकर खाएँगे। इतने में एक बुढ़िया आई और उसने सारे गुलगुले छीन लिये। जाते-जाते वह उसे गारे में धक्का दे गई।

सभी सपने फूली पर पूरी बुराई के साथ लागू हो रहे थे। सपने में बच्चों को कुछ मिल रहा था। लेकिन साथ ही छिन भी रहा था।

'हे भगवान! हमारी फूली को दिन पूरे होने तक कुछ न हो। और ब्याने के बाद भी... महीने से भी कम रह गया है...,' कहते-कहते छाती पर रखे जुड़े हाथों के साथ ही उसकी आँख लग गई।

शाम के वक्त वह फूली को जोहड़ में पानी पिलाने जा रही थी। उसके हाथ में कमची थी और वह फूली के पीछे-पीछे थी। तभी गली में सामने से दो साँड़ लड़ते हुए भागे आए। पतली-सी कमची से उसने उन्हें वापिस मोड़ने की कोशिश की। लेकिन वे फूली को गिराते हुए उसके पेट पर पाँव रखते हुए भाग

निकले। वह स्वयं भी भैंस के नीचे दब गई थी। वह चीख रही थी– 'मेरी फूली को उठाओ...मुझे खींचो... मेरी फूली को उठाओ...कोई मुझे निकालो...मेरी फूली को उठाओ...।'

वह एकदम उठ बैठी। घबराकर इधर–उधर देखा। दूली को उठाने के लिए हाथ बढ़ाया। उसे लगा जैसे वह खाट पर नहीं है। चप्पलें पहनकर वह सीधी फूली की छान में पहुँची। फूली पर हाथ फिराया। दूली पहले से ही वहाँ खोर पर उकड़ूँ बैठा बीड़ी पी रहा था। अँधेरे में उसे ऐसा भी लगा कि दूली फूली के सींगों से लिपटा कुछ बुड़बुड़ा रहा था। वह बहुत अधिक घबराई हुई थी। कंठ सूख रहा था। वह अपनी चुन्नी से पसीना पोंछती हुई दूली के पास सट कर जा खड़ी हुई। वह सोच रही थी कि इतना खतरनाक सपना दूली को कैसे बताए। तभी दूली ने बीड़ी फेंककर बताया कि वह अभी–अभी यहाँ आया है। उसे काफी डरावना सपना आया। जैसे कि वह अर्बन एस्टेट की एक कोठी में काम कर रहा है। वहाँ के किचन में चिनाई कर रहे मिस्त्री को ग्रेनाइट की स्लैब देने जा रहा है। तभी लॉबी में मार्बल के चिकने फर्श पर उसका पाँव फिसल गया। स्लैब के कई टुकड़े हो गए।... और ठेकेदार ने उसके मुँह पर थप्पड़ मारा।... इतनी महँगी चीज का यूँ हाथ से छूटकर टूटना अपशकुन है। मैं यहाँ फूली के पास आ बैठा...। इतना बताकर उसने अपना हाथ फूली के माथे के सफेद फूल पर फिराया। अँधेरा होने के बावजूद यह फूल उनकी आँखों में बसा था।

दूली का सपना सुनकर उसने अपना सपना नहीं बताया। केवल इतना बोली– 'फसलों का नुकसान होने पर सरकार मुआवजा देती है। अपनी फूली को कुछ हो गया, तो क्या सरकार हमें भी कुछ देगी?'

दूली ने कुछ जवाब नहीं दिया। खोर से नीचे पाँव धरता हुआ बोला– 'चल, सो जा। सुबह उठकर दिन–भर दिहाड़ी भी करनी है।'

तभी गरज के साथ बिजली चमकी। उन्होंने देखा कि फूली जगर–जगर कर जुगाली कर रही है।

(प्रकाशित : 'बया', दिसम्बर 2006)

•

फोटो में बच्चा

कई दिनों से टी.वी. पर 'शहर में बच्चा' शीर्षक से फोटो-प्रतियोगिता की विज्ञप्ति आ रही थी। जब भी पाली उस विज्ञप्ति को देखता तो उसकी कल्पना में ऐसी बहुत-सी स्थितियाँ घूमने लगतीं जिनमें बच्चे होते और उन स्थितियों की फोटो इस विज्ञप्ति के अनुकूल बैठती। उसने फोटो भेजने का पता भी लापरवाही से लिख लिया था, लेकिन वह इस प्रतियोगिता में भाग लेने का मन नहीं बना पा रहा था।

पाली की आदत बन गई थी स्थितियाँ बनाने की। उन स्थितियों में कभी वह खुद को, कभी अपनी पत्नी और कभी अपने बच्चों को रखता और फिर कैमरे की आँख से उस काल्पनिक स्थिति का फोटो में अनुवाद करता रहता। यह आदत उसे निठल्ला बनाती जा रही थी और उसकी कल्पना को धार भी दे रही थी। फोटोग्राफी को वह न तो पूर्ण रूप से कला की तरह लेकर अमेच्यर फोटोग्राफर बन पा रहा था, न ठीक से व्यवसाय की तरह लेकर अपने परिवार का पेट पाल रहा था और न ही वह इन दोनों का सामंजस्य बिठा पा रहा था। महान और जाने-माने फोटोग्राफरों के बारे में जानना, हर तरह की विशेषकर सामाजिक समस्याओं पर आधारित फोटोग्राफी की बारीकियों को समझना तथा साहित्य पढ़ना उसके शौक बन गए जिससे समाज व लोगों को देखने के उसके नज़रिये में विकास हो रहा था।

वह ग्राहकों से कम बात करता था और ग्राहक आने पर काउंटर से उठकर भीतर स्टूडियो तक इस तरह जाता था जैसे कि ग्राहक पर कोई अहसान कर रहा हो। ग्राहकों को उचित मान-सम्मान न मिलने के कारण उसकी दुकान का काम ठप्प होता जा रहा था। इसके बावजूद जिन्हें जीवंत भाव-भंगिमाओं की फोटो बनवानी होती-वे पाली के धूल पड़े स्टूल पर बैठकर आश्वस्त होते कि वे सही कैमरे, संतुलित प्रकाश-पुंज और अपर्चर के भीतर झाँकती कलात्मक और अनुभवी आँख के सामने बैठे हैं। निश्चय ही उन्हें अलग कोण से अपने व्यक्तित्व के दर्शन होते। ऐक्सीडेंट केस के फोटो, नेताओं-मंत्रियों के जलूसों-उद्घाटनों के फोटो आदि के सरकारी अनुबंध कभी-कभार पाली को मिल जाते थे, क्योंकि पाली

की दक्षता के कारण इसमें पुलिस और प्रशासन की वाहवाही शामिल थी। नाजायज कब्जा करने वाला और जिसकी जमीन या मकान पर कब्जा है– वे भी पाली की सेवाएँ ले लेते थे, क्योंकि कोर्ट में पेशियों का लंबा सिलसिला चलता जिससे शहर के बाकी फोटोग्राफर हिचकते थे। पाली को कोर्ट के कटघरे में खड़े होकर केवल यही कहना होता था, ''यह फोटो मैंने फलाँ समय खुद मौके पर जाकर लिया है।'' कोई झूठ नहीं, कोई फरेब नहीं। लेकिन ये सभी अवसर इतने सीमित व अनिश्चित थे कि घर में तंगियों की वजह से झगड़ा रहने लगा था। आज भी वह अपनी पत्नी से झगड़कर दुकान पर आया है।

उसने खिन्न मन से दुकान खोली और अपने आस-पास की कुछ धूल उड़ाकर बैठ गया। उसने सामने रेहड़ी वाले को दो स्लाइस और एक कप चाय बोला और काउंटर पर पड़ी धूल में अँगुलियाँ फिराने लगा। आज उसके दिमाग में बार-बार फोटो प्रतियोगिता में भाग लेने की इच्छा पैदा हो रही थी। उसने धुल में अँगुली से लिखा 'शहर में बच्चा' और हथेली से रगड़ दिया। फिर वह उस धूल में फूलों की तरह का कुछ बनाता रहा था। फिल्म के खाली कार्टरिज को घुमाता रहा। चाय के बाद उसने अपने कैमरे के लेंस को साफ किया। उसके फिल्म, बैटरी, फ्लैश आदि जाँचे और शहर में निकलने की तैयारी करने लगा। बैटरी कुछ डाउन थी फिर भी न जाने का बहाना बनते-बनते रह गया, क्योंकि सभी फोटो दिन में ही तो लेने हैं। अपनी अस्त-व्यस्त दाढ़ी और बाल जिनमें सफेदी आने लगी थी, अँगुलियाँ फिराकर सँवारे। लंबे कमीज को झड़काया, आस्तीनें ऊपर खींची, चैस्टर जैसा एक पुराना-सा लबादा फंसाया और कैमरा उठाकर बाहर निकल गया।

पाली उस प्रतियोगिता में भाग लेने के प्रति अनमना था, लेकिन इसके विषय को लेकर वह काफी गंभीर था। अनमना होने के बावजूद एक प्रतियोगी की भाग्यवादी मानसिकता उस पर बार-बार हमला कर रही थी। पंद्रह हजार रुपयों का प्रथम पुरस्कार, अखबारों में उसका फोटो, टी.वी.-रेडियो पर खबर लगने की संभावना, उसकी फोटोग्राफी की प्रदर्शनी और राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति आदि के विचार उसके दिमाग में कभी फोटो की तरह साफ और कभी नेगेटिव की तरह धुँधले-धुँधले आ-जा रहे थे, और वह चले जा रहा था। उसकी कल्पना में महान बन चुके फोटोग्राफर और उनके कैमरों द्वारा ली गई महान फोटुएँ भी आ रही थीं कि तभी उसके पाँव ठिठके और हाथ कंधे पर लटके कैमरे पर गया।

एक हफ़्ते बाद दीपावली होने के कारण दुकानों की सफाई चल रही है। दुकानें अभी खुलनी शुरू हुई हैं। नगर-निगम के सफाई-कर्मचारी पहले दिन

वाले कूड़े के ढेरों को एक जगह इकट्ठा कर रहे हैं। दो–तीन नंगे पाँव बच्चे मैले कमीजों में कूड़े के ढेर में हाथ मार रहे हैं। वह ठिठका जरूर था लेकिन उसके हाथ कैमरे पर ही रह गए। उसे यह दृश्य सामान्य लगा और वह चल पड़ा। उसके दिमाग में कल्पना जारी थी। वह फिर रुका और उन बच्चों को ध्यान से देखने लगा। उसने कल्पना की कि अभी कोई स्कूटर वाला साहबों जैसा जोड़ा अपने सजे–सँवरे बच्चे के साथ शापिंग के लिए आएगा। जैसे ही वह सुंदर बच्चा अपने मम्मी–पापा की अँगुली थामे दुकान में घुसने के लिए इन बच्चों के पास से गुजरे तो 'क्लिक'। बहुत बढ़िया फोटो आएगा। शानदार कंट्रास्ट। ऐसी ही फोटुएँ तो इन प्रतियोगिताओं में स्थान पाती हैं। सोचते–सोचते ही पाली का हाथ अपने मुँह पर चपत लगाने को उठा और उसके मुँह से 'उई' निकला। 'वाह रे पाली उस्ताद! बड़े–बड़े फोटोग्राफरों और कलाकारों जैसा वेश बनाकर यही बने–बनाए घिसे–पिटे दृश्य दिमाग में लेकर चला था फोटो खींचने।

उसका मन अवसाद से भर गया, क्योंकि ऐसी तमाम प्रतियोगिताओं या प्रदर्शनियों में हमेशा ये गरीब बच्चे, झुग्गी–झोपड़ियाँ, मैले–कुचैले गरीब–मजदूर ही शहर के सुंदर चेहरे पर बदसूरत दाग की तरह दिखाए जाते रहते हैं। फोटो देखकर या तो इनके प्रति हमदर्दी उपजती है या फिर ऐसा भाव कि ये लोग शहर में नहीं रहने देने चाहिए।

उसकी कल्पना में एक पुरानी बहस भी बार–बार बाधा बनकर आ रही थी कि फोटोग्राफी थमी जिंदगी का एक 'स्टिल' मात्र ही तो है। हरेक स्टिल को जुबान कैसे दी जाए? कैसे किसी फोटो में जिन्दगी थमी हुई नज़र नहीं आए? क्योंकि कोई भी फोटो अपने समय का दस्तावेजी सबूत होता है इसलिए आमतौर पर आस–पास छूट जाती तमाम चीज़ें बैकग्राउंड में कैसे आएँ और उन चीज़ों से मुख्य 'स्टिल' का संबंध कैसे दर्शाया जाए? क्यों कोई भी स्टिल शीर्षक के बिना ऐसी प्रतियोगिताओं या प्रदर्शनियों में नहीं जा पाता या अधूरा कहकर रद्दी में फेंक दिया जाता है? यह बाधा उसे विचलित नहीं कर रही थी बल्कि दिमाग, आँख और लैंस के साथ और अधिक सामंजस्य बिठाने के नए–नए तरीके सुझा रही थी और वह सार्थक फोटो में परिवर्तित हो सकने वाले दृश्यों के बारे में भी सोचता हुआ चल रहा था।

अचानक पाली के दिमाग में एक स्थिति उभरी। यह स्थिति उसे काफी स्पष्ट थी जिसे उसने हमेशा एक सवाल की तरह लिया है। वह जब भी अपने किसी बच्चे को सुबह स्कूल में छोड़ने गया है या किसी मौके पर किसी अन्य सरकारी

स्कूल में फोटो लेने गया है तो हमेशा उसे इस सवाल का सामना करना पड़ा है। अब फिर यह सवाल पाली के दिमाग में आ टकराया कि सरकारी स्कूलों के बच्चे प्रार्थना कहते वक्त निश्चल क्यों नहीं खड़े रह पाते?

सोचते–सोचते वह राजकीय पाठशाला ने छह में जा पहुँचा जहाँ उसके मुख्य द्वार में प्रवेश करते ही प्रार्थना की घंटी बज चुकी थी। बच्चे अभी भी आ रहे थे। वे रोते, झींकते, ठुकनते कभी छोड़ने आए अपने अभिभावक और कभी स्कूल की ओर डबडबाई आँखों से टेढ़े–टेढ़े देखते चले आ रहे थे। मैडमें भी अभी आ रही थीं। पाली ने सीधे मुख्याध्यापिका से अनुनय–विनय, चालाकी और झूठ से उसकी तथा स्कूल की प्रशंसा करके तथा उसकी फोटो अखबार में देने का लालच देकर उससे फोटो लेने की आज्ञा ले ली।

सिनकले–सुबड़े बच्चे, एक–दूसरे को धक्के मारते हुए लाइनें बना रहे थे। मैडमें भी वहाँ आकर खड़ी हो गई थीं। एक मैडम उन्हें सावधान–विश्राम करवाने लगी। दो बच्चों ने प्रार्थना शुरू की 'ए मालिक तेरे बच्चे हम'।

पाली का सारा ध्यान बच्चों की टाँगों पर था। अधिकतर बच्चे प्लास्टिक के टूटे हुए चप्पल या जूते पहने हुए थे। जुराब तो कुछ ने ही पहन रखी थी। उनमें बिना नहाए भी काफी थे। उनके पाँव पर धूल और पानी के धब्बे दिख रहे थे। उसने उन सभी टाँगों के स्नैप लिये। आँख के आगे से कैमरा हटाकर पाली ने देखा कि उन बच्चों में एक बच्चा अँग्रेजों जैसा सफेद था। उसके बाल भी भूरे–सफेद थे और पलकें भी। उसकी टाँगें उन सभी टाँगों के बीच से ऐसे दिख रही थी जैसे कीकरों के जंगल में एक केला उगा हुआ हो। कुछ बच्चों के घुटनों–टखनों पर चोटें लगी हुई थी, जिन पर मक्खियाँ बैठ रही थीं और वे दूसरे पाँव से उस चोट पर से मक्खियाँ उड़ा रहे थे। पाली ने सोचना शुरू ही किया था कि टी.वी. पर दिखाई जाने वाली बैंडेड इन बच्चों ने चोट लगते ही क्यूँ नहीं लगाई कि तभी कई बच्चों ने अपनी पिंडलियों पर खुजलाना शुरू कर दिया। कुछ सेंकेंड स्थिर–चित्त खड़े रहने के बाद ही उन्होंने अपनी पिंडलियों पर सरकती काल्पनिक कीड़ियों को दूसरे पाँव से रगड़ना–मसलना शुरू कर दिया था। फुर्ती से पाली उनके स्नैप लेने लगा। बीच में एकाध लड़की का फ्राक अड़ने के कारण उसे दो–एक स्नैप फालतू लेने पड़े। जहाँ भी बच्चे खाज करते उनकी पिंडलियाँ वहीं से सफेद हो रही थीं।

यह प्रार्थना खत्म हुई तो मैडम ने उन्हें मरियल और सुस्त आवाज़ में विश्राम–सावधान करवाया और साथ ही 'जन गण मन अधिनायक' शुरू करवा दिया।

अब तो लगभग सभी बच्चों की पिंडलियाँ खुजलाने लगी थीं।

पाली इस फोटोग्राफी की सीमाओं पर अब फिर छटपटा रहा था। काश वह इन बच्चों पर स्कूल में आने से लेकर छुट्टी होने तक की एक डोक्यूमेंट्री बन पाता! इस कैमरे में तो एक बार में एक–दो बच्चे ही हरेक स्नैप में आ पाए हैं। कैमरे का शटर हटने और गिरने के पल में तो सभी बच्चे एक साथ पिंडलियाँ खुजलाने से रहे। अत: उसने और स्नैप नहीं लेना ही उचित समझा। फिल्म भी बचानी थी। उसे मजबूरी वश मैडमों की ओर भी ध्यान देना पड़ा।

अपने कहे के अनुसार जैसे ही उसने मैडमों की ओर कैमरा घुमाया तो वे सचेत हो गईं। अभी परसों करवा चौथ थी। उन सभी के मेंहदी रचे हाथ चूड़ियों और कंगनों से भरे थे। करवा चौथ को किए गए सिंगार और अभिसार के बाद उनके चेहरे दिन–भर पूजनीय बने रखे पानी से भरे लेकिन रात को रिताकर औंधा दिए गए मिट्टी के करवों की तरह लग रहे थे। इसके बावजूद वे सब इन बच्चों में ऐसे दिख रही थीं जैसे काफी सारे नेगेटिवों में कुछ फोटो पड़े हों। पाली ने चेहरे पर व्यावसायिक मुस्कान के साथ उनका एक स्नैप लिया और धन्यवाद कहकर बाहर निकल गया। कुछ एक बच्चे अभी भी रोते, झींकते, थमते–चलते, टेढ़े देखते स्कूल में प्रवेश कर रहे थे।

स्कूल से वह सीधा बैंक कॉलोनी पहुँचा। एक सर्कुलर रोड पर हुए एक एक्सीडेंट के फोटो लेकर वह इधर से गुज़रा था तो उसकी इच्छा कुछ स्नैप लेने की हो रही थी। लेकिन उसे देर हो रही थी। इतवार होने के कारण उसके पड़ोसी दुकानदार ने दारू के साथ कहीं बैठने का कार्यक्रम बनाया हुआ था। पाली को रात–भर पछतावा भी रहा और दारू के प्रति अपनी कमज़ोरी पर भी कुढ़ता रहा। वाकई किसी भी अमेच्यर फोटोग्राफर के लिए श्रेष्ठ (लेकिन सामाजिक दृष्टि से विद्रूप) स्थिति थी कल। संभव है वैसी ही स्थिति आज भी बनी हुई मिल जाए।

नई तकनीक आ जाने से टेलीफोनों के लिए खंबों पर से तारें हटाई जा रही थीं। अब बाल जितने बारीक आप्टीकल फाइबर के माध्यम से हज़ारों संदेश एक साथ इधर–उधर आ–जा सकते हैं जो कि सीधे उपग्रह से नियंत्रित हो रहे हैं। इसी के लिए जमीन में खाई खोदकर केबल बिछाई जा रही है।

बैंक कालोनी पहुँचते ही पाली के हाथों ने झटपट कैमरा सँभाल लिया और वह चारों ओर की बैकग्राउंड देखने लगा। सूरज की स्थिति के हिसाब से दिमाग में कोण बिठाया और अपनी जगह तय की। वह खुश हो रहा था, क्योंकि फोटो

के लिए आज उसे कल से बेहतर (यानी विद्रूप) स्थिति मिली।

मजदूर दंपत्ति ने खोदी जा रही खाई के साथ ही अपनी पुरानी साइकिल बिछा रखी है। साइकिल के डंडों के बीच में एक बोरी डालकर उस पर अपने बच्चे को बिठा रखा है। कल यही बच्चा रोता हुआ घुटना घिसटकर बार-बार खाई के किनारे जा रहा था। आज वह साइकिल के डंडों के बीच कैद होने के कारण एक डंडे के सहारे खड़ा होने की कोशिश करता हुआ ज्यादा रो रहा है। आँसुओं से अधिक उसकी नाक बह रही है तथा मुँह से लार गिर रही है जिसे वह मुँह पर लीपे जा रहा है। गर्मी नहीं है लेकिन उसका झगला पसीने से भीगा हुआ है। माँ की ओर देख-देखकर रोने के बावजूद उसकी माँ कुदाल से मिट्टी खोदे जा रही है और उससे कुछ बड़े बच्चे को जो वहीं मिट्टी से खेल रहा है, उसे गोद में खिलौने को बोल रही है। बड़ा बच्चा चुप कराने या गोद में उठाने की रिश्वत के रूप में माँ से टॉफी की माँग कर रहा है। माँ गुस्से में भरकर ताज़ी गीली मिट्टी को हाथों से दबाकर लड्डू बनाती है तथा उसे फेंक कर मारती है। बच्चा अपने मुँह के आगे हाथ अड़ाता हुआ बचता है लेकिन मिट्टी का लड्डू उस तक पहुँचने से पहले ही बिखर जाता है। पीछे-पीछे खुदाई करता चल रहा उसका बाप भी उसे धमका रहा है, लेकिन वह टॉफी की रट लगाए जा रहा है।

पाली को उस मजदूर की बातों से पता चला कि उन्हें जो पैसे मिलने हैं वे दिहाड़ी के हिसाब से नहीं पैमाइश के हिसाब से मिलने हैं। इसका मतलब है वे दोनों चढ़ती हुई, सिर पर आ चुकी और ढलती धूप को मिनटों-घंटों में नहीं बल्कि फुटों में माप रहे हैं। यही कारण है कि बच्चा रोए जा रहा है। बैठकर उसे दूध पिलाने का मतलब है फुटों में कमी। जबकि जितनी ज्यादा-से-ज्यादा नाली वे खोदेंगे उतनी ही कुछ अच्छी साँझ की रोटी होने की उम्मीद बन जाएगी और सुबह की रोटी के साथ की चाय में दूध-चीनी की मात्रा बढ़ जाएगी।

पाली ने दो स्नैप लिये तथा प्रतीक्षा करने लगा कि वह मजदूर महिला खाई से बाहर निकल कर अपने रोते बच्चे को जब दूध पिलाएगी तो एक स्नैप लिया जा सकता है। लेकिन वह कुदाल चलाती रही और बीच-बीच में बड़े बच्चे को ही उसे चुप करवाने को कहती रही। उसने उस पर मिट्टी का एक और लड्डू बनाकर फेंका, लेकिन ममता जैसी भुरभुरी मिट्टी ने उस बच्चे को भयमुक्त कर दिया। नीचे सरकती अपनी कच्छी को एक हाथ से पकड़े वह हँसे जा रहा है।

साथ ही दुकान किए बैठी एक औरत से पाली ने सिगरेट लेकर सुलगाई और वहीं खड़ा होकर पूरा दृश्य देखने लगा। उसने वहाँ खड़े होकर एक स्नैप

और लिया। उस स्नैप में उसने बैंक कालोनी की आधुनिक कोठियों, कुछ दूर अपने स्कूटरों के सहारे खड़े ठेकेदार और अफसर, एक भारी–भरकम लकड़ी के स्पूल को हाथों तथा बारियों से ठेलते हुए तथा उस पर लिपटी केबल को खाई में डालते आ रहे आठ–दस मजदूर और उस स्पूल को छूते या अपने बापों द्वारा धमकाने पर पीछे हटते उनके बच्चे आदि सब समेटने की कोशिश की। वह पूरी तरह उस परिदृश्य में खोया हुआ था कि उसने अचानक उधर पीठ कर ली और दुकानदार औरत से इस तरह बातें करने लगा जैसे काफ़ी देर से उसके साथ गप्पें मार रहा हो। लेकिन उसकी यह चालाकी काम नहीं आई, क्योंकि आज़ाद उसके साथ आ खड़ा हुआ था। आज़ाद ने भी जान–बूझकर उसकी ओर देखे बिना तीन सिगरेट लिए। एक खुद सुलगाया, एक जेब में डाला और एक पाली के लबादे में डालता हुआ बोला, ''उस्ताद जी, लगता है आज तो दिन–भर यूँ ही खड़े रहने का इरादा है?''

पाली उससे इसीलिए बचना चाहता था। पता नहीं कैसे वह कई बार तो सब यूँ का यूँ टेप कर देता है जो वह (पाली) सोच रहा होता है। जब आज़ाद पाली के पास काम करने और सीखने आया तो इतना तेज़ नहीं था। लेकिन पाली की बहसों के साथ ही पाली की पढ़ने की आदत ने उसे भी पढ़ने का शौकीन बना दिया। वह पाली के भीतर की जानने लगा था।

पाली ने इसका नाम स्वतंत्र कुमार की बजाय आज़ाद रख दिया। इसने अपना नाम तो कहीं नहीं बदला लेकिन जब काम सीखने के बाद अपना काम शुरू किया तो साइनबोर्ड पर 'आज़ाद स्टूडियो' ही लिखवाया था। पाली इससे स्नेह भी करता है और बचता भी है। यही एक आदमी है जिससे पाली चलता है वरना तो वह किसी को कुछ नहीं समझता। इनके साथी फोटोग्राफर इसे आज़ाद की दारू का प्रभाव भी कहते हैं जो वह कभी–कभी पाली को पिलाता रहता है, लेकिन आज़ाद ऐसा नहीं मानता। बल्कि उसे तो यह डर रहता है कि कहीं उस्ताद ने यह बात सुन ली तो उसके साथ बैठना तक छोड़ जाएगा।

आज़ाद एकदम पीछे मुड़ा और बोला– ये पूरा सीन देखो उस्ताद? क्या बात है। मेरे पास फालतू कैसेट और समय और कुछ साधन होते तो आज ही एक फिल्म बनाकर ले जाता।

जैसे ही उसने बोलना शुरू किया पाली जरकने लगा। उसे मालूम है कि वह जो भी कहेगा व्यंग्य में कहेगा, लेकिन होगा सब उसकी (पाली की) कल्पना का हिस्सा। इसीलिए उसके व्यंग्य का प्रतिवाद तो दूर पाली हैरान–परेशान–सा

शिथिल होता जाता है कि उसे उसके दिमाग में घुसने का ऐसा कौन–सा दरवाजा मिल गया है ?

''लेकिन एक बात है उस्ताद! यह केबल, इस केबल से जुड़े जर्मन से आयात किए गए आधुनिक आटोमैटिक को–आक्सियल एक्सचेंज, एक्सचेंज से जुड़े मधुर संगीत में परिवर्तित कर दी गई घंटियों वाले रंग–बिरंगे टेलीफोन और इस सारे नेटवर्क को जोड़ने वाले आकाश में घूमते करोड़ों–अरबों की लागत से बने उपग्रह–इस पूरे नेटवर्क में इन मजदूरों की स्थिति को या नेटवर्क के साथ इनके संबंध को अपना कैमरा दिखा पाएगा क्या ?''

पाली और डूब गया। आज़ाद का वीडियो कैमरा उसकी बगल में लटक रहा था और उसका लैंस उसी की ओर था। उसे लगा जैसे वह उसके दिमाग की कैसेट बना रहा हो। सिगरेट खत्म हो गई तो पाली ने एक ओर फेंक दी, तभी आज़ाद ने अपनी जेबवाली उसे थमा दी और दुकानदार औरत से माचिस लेकर सुलगा भी दी! पाली सोच ही रहा था कि वह आज़ाद की बातों का क्या जवाब दे, क्योंकि यही सब कुछ वह सोच रहा था। आज़ाद भी और कुछ कहने की भूमिका बना रहा था और घड़ी भी देख रहा था कि तभी उस औरत ने बड़े बच्चे को बुलाया और रोते हुए बच्चे को देने के लिए एक टॉफी दी। बड़े बच्चे ने टॉफी वहीं खड़े–खड़े दाँतों से काटकर बड़ी अपने मुँह में डाल ली और छोटी छोटे जाकर दे दी।

''एक काम हो सकता है उस्ताद दी! और यह काम केवल आप ही कर सकते हैं। इन जैसे सारे बच्चों को इकट्ठा करके बोट–क्लब पर ले जाओ। इन्हें बताओ कि इस सारे नेटवर्क के अलावा कॉर्ड लैस, सैल्यूलर और इंटरनेट वगैरह में इनका भी पैसा लगा हुआ है। वित्तमंत्री से उस पैसे का हिसाब माँगो।'' सिगरेट का लंबा–सा कश खींचकर आज़ाद ने पाली की अँगुलियों में धुँआती सिगरेट को देखा और जोड़ दिया 'देखना कभी बुझ जाए', सुनते ही पाली ने सिगरेट होठों में रख ली। आजाद ने अपने उसी लहजे में कहना जारी रखा, ''वैसे वित्तमंत्री वहाँ आ भी गया तो वह कह सकता है कि ये बच्चे उसके देश के हैं ही नहीं, क्योंकि उसके स्वागत में खड़े अपने स्कूलों की पूरी वर्दी में, टाई लगाए झंडियाँ लिये बच्चों की लाइनों में उसने इन्हें कहीं नहीं देखा होगा तो आप जनगणना ऑफिस से रिकार्ड ढूँढ़ने की कोशिश करना। शायद आपके प्रयासों से इन्हें दो–दो, तीन–तीन रुपए मिल जाएँ। फिर लालकिले और चाँदनी चौक से आस–पास इन्हें गन्ने के रस, भुने हुए मकई के भुट्टों, डबलरोटी, टॉफियों पर टूट पड़ते हुए

देखना और खूब फोटो खींचना...आओ रसगुल्ले खाने हों तो? एक बच्चे की छठी की कैसेट बनानी है। ठंडे-गर्म के साथ लेडी-संगीत भी सुनने को मिलेगा। कहो तो आज कुछ मँगवा कर रखूँ.... अच्छा उस्ताद जी ग्यारह बजे पहुँचना है जच्चा-बच्चा इंतजार कर रहे होंगे।''

पाली ने जैसे उसे बुलाया नहीं था वैसे जाने को भी नहीं कहा। जाते हुए को भीतर-भीतर गाली जरूर दी ''साला, दाई की औलाद!'' इसके साथ ही पाली ने मुड़कर भी नहीं देखा कि साइकिल में फँसा वह रोता बच्चा चुप हुआ या नहीं और उसकी माँ ने उसे दूध पिलाया कि नहीं। वह वहाँ से छूट लिया। उसका दिल किया कि आज़ाद की दी हुई सिगरेट निकालकर वहीं फेंक दे, लेकिन वह ऐसा नहीं कर सका क्योंकि उसके पास आज पैसे कम थे। वह आज़ाद को दिमाग से झटकने की कोशिश भी कर रहा था और उसके बारे में सोच भी रहा था, ''अगर यह पैसे कमाने के चक्कर में न पड़ता तो मुझे ही शायद इसे उस्ताद कहना पड़ता। और खूब पैसे कमाने के कारण ही मेरी पत्नी इसके प्रभाव में आई रहती है। लगभग हर इतवार को अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर इस्टमैनकलर बातों और इधर-उधर घूमने के आकर्षक प्रोग्रामों के साथ जमा रहता है मेरे घर। इसकी ऐसी बातें सुनती हुई मेरी पत्नी इसको यह कहना कभी नहीं छोड़ पाती कि अपने उस्ताद को भी समझाओ न कुछ कमा-खा ले तो... या अपने उस्ताद को भी लाओ न लाइन पर। वह इन सबसे स्नेह भी इतना करती है कि इसे प्यार आने से रोका भी नहीं जा सकता। वरना तो जब यह अपने बच्चों के जन्मदिन के एलबम मेरे बच्चों को दिखाता है और वे ललचाई नज़रों से एक-एक फोटो देखते हैं तो मन करता है उसके एलबम को बाहर फेंक मारूं।''

उसने लबादे की जेब से सिगरेट निकालकर सुलगा ली और आज़ाद को दिमाग से झटकने की कोशिश करने लगा।

कई जगहों पर अपने छोटे-छोटे कंधों पर रद्दी पोलीथीन के बोरे लादे, कूड़े के ढेरों में कुत्तों के बीच बीनते, लड़ते बीड़ी पीते अधनंगे बच्चों ने तथा कारें साफ करते, ठेले खींचते, अखबार, बीड़ी-सिगरेट, पानी बेचते और चाय की दुकानों के इधर-उधर भागते बर्तन माँजते बच्चों ने उसका ध्यान खींचा, लेकिन पाली 'शहर में बच्चा' को लेकर अपनी सोच को स्पष्ट कर चुका था। प्रतियोगिताओं, प्रदर्शनियों तथा आर्ट-गैलरियों के स्टॅफ के हिसाब से बेशक यही सब्जेक्ट-मैटर अब भी ज्यादा माँग तथा बिकने वाला है लेकिन यह भी सही है कि इस तरह के दृश्यों के सभी बच्चे और ढके रहने वाले अंगों पर से फटे कपड़ों वाली औरतें हमदर्दी बटोरते-बटोरते उच्च वर्ग के ड्राइंग रूमों की सामने वाली दीवारों पर

मोनालीसा या अन्य किसी पेंटिंग के साथ जगह पा चुके हैं। ऐसा बहुत कुछ जो बहुत असामान्य है बहुत ही सामान्य व सहनीय बन चुका है।

एक जगह होटल के आगे से निकलते हुए उसके पाँव जरूर ठिठके। वह एक उपनगर के बीच की एक खाली-सी सड़क पर आ गया है। इस सड़क पर ट्रक ही अधिक चलते हैं इसलिए कॉफी होटल हैं। होटल के थोड़ा अंदर रंगीन टी.वी. चल रहा है। बाहर खड़े दो बच्चे अपने पीछे रद्दी के बोरे लटकाए टी.वी. देख रहे हैं। ये बच्चे मैगी, सेरेलेक, बोर्नवीटा, कम्पलान आदि के विज्ञापनों को कहानी की तरह देख रहे हैं। पाली ने उन बच्चों, टी.वी., होटल, बाहर नल पर पतीले माँजता उन्हीं बच्चों जैसा एक बच्चा, मौज-मस्ती में पसरे-बैठे ग्राहक आदि को कई कोणों से देखा, लेकिन इस पूरे दृश्य का अधिकतर भाग छूटकर ही कैमरे में आ रहा था। बुत बने खड़े वे दो बच्चे जिनमें संभवतः एक लड़की थी व्यूफांइडर में टाँगों वाले बोरे बनकर आ रहे थे जिनके थोड़े-थोड़े सिर बोरों के ऊपर से दिख रहे थे। नल पर पतीले माँजते उन्हीं जैसे बच्चों को वह फोटो में जरूर लेना चाह रहा था, क्योंकि वह बच्चा हर समय उसके लिए प्रयोग की जाने वाली मालिक की मौलिक गालियों को अपनी बनाकर अब इन बच्चों पर फेंक रहा था और उन्हें भगाने का हर प्रयास कर रहा था जैसे कि वह होटल, टी.वी. उसी के हों और इन बोरा बच्चों के इस तरह लार टपका-टपकाकर देखने से होटल तथा टी.वी. के सारे खाद्य और पेय-पदार्थ खराब हो रहे हों।

पाली कैमरे का फोकस ठीक कर रहा था जिससे गाली सहते और गाली देते बच्चे का चेहरा पूरे-का-पूरा फोटो में आए तभी होटल के मालिक ने आकर पाली का कैमरा पकड़ लिया। वह काफी गर्म भाषा में पेश आ रहा था। पाली के माफी माँगने पर उसने बताया कि उसके इस होटल का मुकदमा कोर्ट में है।

पाली को लगा जैसे यहाँ आज़ाद खुद आकर इस मालिक से फोटो न लेने देने के लिए बोल गया है। उसने उसे एक गाली दी और तेज-तेज चलता हुआ गंदे नाले की ओर बढ़ गया।

गंदे नाले का दृश्य पाली के दिमाग में प्रिंट-आउट की तरह साफ आता जा रहा था। वह लोकल ट्रेन में इस पुल पर से बहुत बार गुजरा है। कई बार ट्रेन यहाँ आउटर पर रुकी है। पाली ने खिड़की में से झाँककर इस काफी गहरे नाले को ध्यान से देखा है। पाली की कल्पना में हमेशा इस नाले की फोटो का शीर्षक 'शहर का चरित्र प्रमाण-पत्र' आया है। फूटे पेटों वाले, बिना सिर के हाथ-पाँव के प्लास्टिक के गुड़ियानुमा खिलौने, आस-पास खड़ी झाड़ियों में अटकते चलते तैरते निरोध, खून सने पैड, साबुनों के रैपर, टूथपेस्टों की ट्यूबों के साथ मिट्टी

खाने वाले बच्चे के पेट की तरह फूले पोलीथीन, अभिनेत्रियों के रंगीन अर्धनग्न चित्रों वाली फिल्मी पत्रिकाओं के पृष्ठ काले पानी में डूबते-तैरते पाली ने बारीकी से देखे हैं। लेकिन उसका ध्यान यदि किसी चीज़ पर ज्यादा अटका है तो वह होती थी रूई या कपड़े की खून-लगी पोटली। एक बार उसने ऐसी ही एक पोटली में से बाहर दिखता लाल-लाल छोटा-सा हाथ जैसा भी कुछ देखा था और कुछ कौवे पानी के साथ गति पकड़े उस पोटली के साथ-साथ भटकते-कूदते भाग रहे थे।

पुल पर पहुँचकर पाली को अहसास हुआ कि वह गलत समय पर आया है। सुबह या शाम का समय यहाँ के लिए उचित रहता जब नाला पूरे वेग से बह रहा होता है। इस समय पानी लगभग थमा हुआ है और उमस के साथ गंधा भी रहा है। फिर भी पाली पुल पर पेट के बल लेट गया। उसने पाँव रेल की लाइन में अड़ा लिये और नज़रें नाले के भीतर गड़ा दीं। काफी प्रयास के बाद उसे पुल से कुछ आगे किनारे के साथ एक झाड़ी में उलझा बड़ा-सा फाहा नज़र आया जो कहीं से सफेद, कहीं ये कीचड़ लगने से काला और कहीं से लाल नज़र आ रहा है। ऐसा लग रहा है जैसे कि प्रयोग के लिए चीर-फाड़ करने के बाद कोई खरगोश फेंक दिया गया हो। उस फाहे पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं और कुछ कौवे एक-दूसरे पर झपटते हुए काँव-काँव कर रहे हैं।

पाली ने उस पूरे दृश्य का स्नैप लिया और फिर नज़रें इधर-उधर घुमाने लगा। वह इस दृश्य में इस कदर खो गया कि वह भूल गया कि वह पंद्रह हजार की फोटो प्रतियोगिता के लिए कुछ फोटो लेने निकला हुआ है।

ऐसे दृश्यों में खो जाना पाली की विशेषता है इसीलिए वह अपने दूसरे फोटोग्राफर साथियों के साथ बातें करते हुए घमंडी हो जाता है। सभी फोटोग्राफरों को वह रुपए कमाने की मशीन, अन्न के कीड़े आदि कुछ भी कह देता है। उनसे बात करते हुए वह उपदेशक जैसा लगने लगता है। व्यंग्य में मुस्कुराता हुआ वह उनसे कहता रहता है—'रंगीन गुब्बारों, कीमती उपहारों के बीच रखे केक वरमालाएँ पहनाते सजे-धजे दूल्हा-दुल्हन बाजे के आगे फूहड़ से नाचते-मटकते शराबी लड़के आदि से हटकर भी एक बहुत बड़ी दुनिया है। डोरोथिया लिंजे की 'द डैमेज्ड चाइल्ड' जानथामसन की 'दी स्ट्रीट लाइफ इन लंदन', जैकब आगस्ट रिईस की 'हाऊद अदर हॉफ लिव्ज ?' तथा 'चिल्ड्रन ऑफ द पूअर' यूँ ही नहीं बन गईं। ये सब विषय पहले से ही उनकी चिंता के विषय थे। लेकिन तुमने तो क्या तुम्हारे गुरुओं ने भी इनके नाम तक नहीं सुने होंगे। ऐसे में पाली के दिमाग में आज़ाद का चेहरा घूम जाता। जिसे इन्हीं लोगों ने अपनी इस्टमैनकलर

दुनिया में खींचा है। वह उन्हें और भी नीचा दिखाने की कोशिश में कहता तुम्हारा फोकस दृश्यों पर नहीं रुपयों पर होता है।

एकाध फोटोग्राफर भड़ककर जवाब में पाली पर हमला करता और उसे अपने से बड़ा कीड़ा बताता जो केवल गंद–ही–गंद ही ओर भागता है। कोई उससे और छेड़खानी करने लगता– 'भाई आर्टिस्ट सा 'ब, उस्ताद जी, गुरू जी, क्या नाम लेते हो आप उसका जो वो फोटो है आपकी फेवरिट – डैमेज्ड बच्चा– आपको वो अच्छी लगती है, लगती रहे। लेकिन मोनालीसा की मुस्कान का भी तो कोई कद्रदान होना चाहिए कि नहीं? मुस्कान! यानी स्माइल! मुर्दे की फोटो खींचते हुए भी कहेंगे—स्माइल प्लीज! कर्जा लेने के लिए पासपोर्ट साईज का फोटो बनवाने आए गरीब किसानों को, रेहड़ी या रिक्शेवालों को भी कहेंगे–स्माइल प्लीज़। क्या खाकर मुस्कुराएँगे वे?' पाली अपने गुस्से को दबाता हुआ केवल सोचकर रह जाता। उसके आस–पड़ोस के तीन–चार फोटोग्राफर पाली की खीझ का मज़ा लेने के लिए उसके पास आ गए थे। एक ने कह दिया कि भाई उस्ताद जी हमें भी पढ़वा दिया करो जो आप पढ़ते हो। शायद हमें भी कुछ देखना आ जाए अपर्चर में से। बस सुनते ही पाली का घमंड जाग गया। वह इन्हें इस काबिल भी नहीं मानता कि ये पढ़कर कुछ समझ सकेंगे। वह खड़ा हुआ और लगभग खाली पड़े शोकेस में से फ्रेम जड़ी एक पोस्टकार्ड साइज फोटो उनके सामने रख दी। यह एक–दस ग्यारह साल की लड़की की फोटो थी। कंधों तक के बहुत बड़े गले का एक पतला–सा झगला पहने हुए थी। आँखों की जगह अँधेरा था जैसे कि माथे की शेड पड़ रही हो। उसके हाथ, ऐसा लग रहा था जैसे कि टूटे हुए या बेजान होकर लटके हुए हों। कुल मिलाकर मालूम होता था जैसे कि किसी अनाड़ी ने फोटो लिया हो। किसी भी कोण से देखने पर भी जब उनकी समझ में कुछ नहीं आया तो पाली का अहं बहुत संतुष्ट हुआ। उसने उनके लिए चाय का आर्डर दिया और बड़े ही सम्मान से उन्हें बताया कि यह डोरोथिया लिंजे की 'द डैमेज्ड चाइल्ड' है।

एक आदमी ने भागकर पाली को बताया कि गाड़ी आ रही है। पाली मुश्किल से बचा। वह पुल के एक कोने के साथ कुछ सोचता–सा खड़ा हो गया। उसके दिमाग में उस दृश्य के साथ थोड़ी बेइमानी करने की योजना आ रही थी! जब उसकी कल्पना एक मेनीपुलेटिड फोटो लेने के लिए तैयार हो गई तो उसने आस–पास नज़र दौड़ाई। साथ ही खड़े एक सफेदे पर वह बिना अभ्यास के पहली बार में ही बंदर की तरह चढ़ गया और एक लंबी–सी शाखा तोड़ लाया। उसका साँस चढ़ने–उतरने से कुछ फूल गया फिर भी वह झटपट एक हाथ में शाखा और दूसरे

से नाले की झाड़ियों का सहारा लेते हुए धीरे–धीरे पाँव जमाता हुआ थोड़ा–सा नाले में उतर गया। वह डर रहा था कि अगर थोड़ी–सी भी चूक हो गई तो वह सीधा नाले की दलदल में पूरे–का–पूरा धँस जाएगा। लेकिन उसके सिर पर मेनीपुलेटिड फोटो की धुन सवार हो चुकी थी। उसे यूँ नाले में उतरता देखकर एक–दो बच्चे और आदमी वहाँ रुक गए थे और वे कुतूहल से किनारे पर रखे उसके कैमरे और कोट को तथा साँस रोके उसके पागलपन को देखने लगे।

पाली ने पहले तो सफेदे की छड़ी से फाहे पर थोड़ा–सा जोर लगाया ताकि फाहा कुछ हट जाए लेकिन छड़ी बहुत लचीली थी। नन्हीं–नन्हीं अंकुर जैसी अँगुलियों वाला चिह्न मात्र लाल–नीला हाथ ही वह नंगा कर पाया। फिर उसने कुछ आगे पड़ा फटा हुआ एक खिलौना जो संभवत: चिड़िया थी, उस फाहे के पास खींचा। अब उसने कीचड़ पर पड़ी अन्य चीज़ों को उलट–पलटकर पहचानने की कोशिश की। एक बच्चे ने बाहर खड़े–खड़े ही कहा, ''अंकल जी, एक खिलौना वो पड़ा–थोड़ा उधर।'' पाली ने बच्चे की ओर बगैर देखे कहा, ''खिलौना नहीं निप्पल दिखे तो बता।'' वहाँ खड़े सभी लोगों ने इधर–उधर नज़रें दौड़ाकर निप्पल ढूँढ़नी शुरू कर दी। जब कीचड़ से भरी निप्पल मिल गई तो पाली ने उसे एक जगह खड़े और कुछ निथरे पानी में से अपनी ओर खींचा तथा उसे उस फाहे में से दिखते हाथ जैसे चिह्न के पास स्थापित कर दिया। अब उसकी कल्पना और तेजी से दौड़ने लगी। वह धीरे–धीरे ऊपर आ गया। वह अब इस दृश्य को पूरी कलाकृति में परिवर्तित करना चाहता था। उसने नाले के साथ–साथ खदानों में फिर घूमना शुरू कर दिया और उसे चिथड़ा हुई एक लेडी कमीज ढूँढ़ने में ज्यादा देर नहीं लगी। उसने उसको एक झाड़ी को पहनाने की तरह फँसाया और उसकी स्लीवलैस या गायब हो गई बाजुओं की जगह अपनी सफेदे की छड़ी को तोड़कर इस तरह उलझाया जैसे उसका एक हाथ उस फाहे को उठाना चाहता हो और एक हाथ पीछे कोई खींच रहा हो। पाली जब बाहर किनारे पर आया तो वह आश्वस्त होने के साथ अपनी कल्पना–शक्ति पर गर्व भी कर रहा था।

उसने पूरे मनोयोग से उस पूरे दृश्य को आत्मसात किया और उसे कई कोणों से देखा। वहाँ जमा हो गए लोगों को पीछे हटने की प्रार्थना की और फिर अलग–अलग कोणों से दो स्नैप लिये। स्नैप लेने के बाद उसे लगा जैसे पंद्रह हजार का प्रथम पुरस्कार नहीं बल्कि पंद्रह लाख अभी उसकी जेब में आ गए हों। चलने से पहले उसने एक बार और उस दृश्य को देखा और चलते–चलते वह फिर घमंडी हो उठा। साले क्या खाकर करेंगे ऐसी फोटोग्राफी। किसके पास है ऐसी कल्पना? दिमाग में तो रुपए, रसगुल्ले और कागज की रंगीन प्लेटों में रखे केक

और पेस्ट्री घूमते रहते हैं। केक–पेस्ट्री का ध्यान आते ही उसकी भूख चमक उठी। उसे अपनी पत्नी पर गुस्सा आ रहा था। लड़ाई अपनी जगह लेकिन ऐसी भी क्या कि आदमी को बिना कुछ खाए ही सुबह–सुबह घर से निकलना पड़े। उसे अपने–आप पर भी खीझ आ रही थी कि वह भी बिना खाए क्यों निकला? पता नहीं दिन–भर उसने भी कुछ खाया होगा कि नहीं?

आस–पास नज़र दौड़ाने के साथ ही उसने जेब में भी हाथ मारा? न के बराबर कुछ पैसे थे उसके पास। कोई चाय की दुकान या खोखा नहीं दिखा। ''सालो भूखे–प्यासे मरना पड़ता है इस तरह की फोटोग्राफी करने के लिए। आओ देखो मिट्टी सने मेरे कपड़े। पहले मेरे कपड़ों में समाई हुई पूरे शहर की दुर्गंध को सूँघों, नाले में गिरने या सफेदे के पेड़ के चिकने तने से फिसलने का जोखिम उठाओ। लेकिन क्या दागुरे ने कैमरे को परिष्कृत करते हुए कभी सोचा होगा कि हर ऐरा–गेरा कंधे पर कैमरा लादे, एक आँख मीचे एक ही आँख से दुनिया को देखेगा और रुपए कमाएगा।'' अपनी भूख को भूलने की कोशिश करते हुए पाली ने परोक्ष रूप से अपने–आपको दुनिया के तमाम महान फोटोग्राफरों का सच्चा उत्तराधिकारी घोषित किया और लाइन के साथ पड़े पत्थर को बिना यह ध्यान किए कि वह चप्पल पहने हुए है, जोरदार ठोकर मारी जिस कारण उसे कुछ दूर तक लँगड़ा कर चलना पड़ा।

लाइन के दूसरी और इंडस्ट्रीयल एरिया की ऊँची–ऊँची चिमनियाँ दिखाई दे रही हैं। बाल मजदूरों के कुछ फोटो लेने का हल्का–सा विचार पाली के दिमाग में आया, लेकिन वह चलता रहा क्योंकि इस तरह की सरकारी अफसरों तथा सेठों की बीवियों द्वारा बनाई गई क्लबों जैसी समाजसेवी संस्थाओं के रोटी बाँटते, गर्म कपड़े बाँटते, मजदूर बस्तियों की औरतों में मशीने बाँटने वाले आयोजनों जैसी फोटोग्राफी से वह दूर भागता था। यूँ भी उसने अंदाजा लगाया कि समय दो से कुछ ऊपर हो गया होगा। स्कूलों की छुट्टी होने तक किसी स्कूल के पास पहुँचना है।

घुटनों तक लटकता उसका लबादा उसकी चाल में बाधा डाल रहा था। उसने उतारकर कंधे पर डाल लिया। एक कंधे पर कैमरा, एक पर लबादा, पेट में भूख, चाय की इच्छा, सिगरेट तक जेब में नहीं। इस सबसे उसकी कल्पना में बार–बार रुकावट पड़ रही थी। वह ठीक से सोच नहीं पा रहा था कि स्कूल के बच्चों के किस तरह के फोटो लिये जाएँ? फिल्म भी सात–आठ ही शेष रहती हैं। इसी उलझन में उसे पता ही नहीं चला कि उसके कंधे से उसका प्रिय कोट जो कि उसकी पहचान बन चुका था, धीरे–धीरे पीछे सरक गया है। धड़धड़ाती हुई लोकल

ट्रेन उसे और उड़ा गई। वह तो पाली एकदम सँभल गया और उस पर पाँव टिका दिया वर्ना तो ट्रेन में उलझकर फट–फटा गया होता। अब वह अपने इस क्लासीकल कोट को फटने से बचा जाने को भी उपलब्धि मान रहा था। उसने रेलवे लाइन छोड़कर रोज गार्डन वाली पगडंडी पकड़ ली। उसके बीचों–बीच छोटे रास्ते से नेशनल सीनियर सैकंड्री स्कूल की ओर जाया जा सकता है।

पहले तो पार्क में घुसते ही उसने बैठकर घास में पड़े काले पाइप से पेट भर पानी पिया और कुछ पल उसी स्थिति में बैठे हुए उसने पार्क में नज़रें घुमाईं। बेशक नवंबर का सुहाना महीना चल रहा है फिर भी वह पूरे शरीर पर पसीने की चिपचिपाहट महसूस कर रहा था। उसने मुँह पर पानी के छींटे मारे तथा ऊपर तक हाथ धोए। तभी उसके कानों में बेढंगी–सी भाषा के शब्द पड़े ''ना मन्नु–नो। फ्लावर प्लक नईं करना।'' वह खड़ा होकर चल पड़ा। उसके कुछ आगे एक दंपत्ति अपने नन्हें के साथ चले जा रहे थे। पाली ने उस औरत को देखा तो लगा जैसे अभी–अभी ब्यूटी पार्लर से उठकर आ रही है। उसने यह भी देखा कि लड़के से आदमी बन रहा उसका पति उससे कई कदम आगे चुपचाप चले जा रहा है। वह रुक–रुककर चल रही अपनी पत्नी और ठुमक–ठुमक कर चल रहे अपने बेटे के प्रति उदासीन दिख रहा है। उसे यह भी महसूस हुआ कि यह औरत जो भी बोल रही है बिना कोशिश और बिना प्रयोजन के बोल रही है। वह इधर–उधर देखती हुई बच्चे को खामखां टोके जा रही है। ''ध्यान से चलो मन्नु! देखो आपके शूज डर्टी हो गए हैं।'' उसने बिना बच्चे की ओर और बिना उसके जूतों की ओर देखे ही कहा। वे गंदे भी नहीं हुए थे और पीं पीं भी ठीक बोल रहे थे।

पाली को आजाद की पत्नी का ध्यान आया। वह भी बच्चों को यूँ ही कंप्यूटर की तरह फीड करती रहती है। ''अंकल को पोयम सुनाओ, अच्छे बच्चे बनते हैं। माउथ में फिंगर नहीं डालते। फिर आपको चाकलेट दिलवाएँगे अंकल। आपकी नोजी कहाँ है? डोगी कैसे बोलता है? डांसी–डांसी करके दिखाओ। ठीक से बैठो देखो सोफे का कपड़ा गिर जाएगा।'' पाली भागने को हो जाता है वहाँ से लेकिन वह उसकी पसंद–नापसंद समझे बिना बोले जाती है।

उस औरत ने फिर डिस्टर्ब किया है बच्चे को ''देखो मन्नु। बटर फ्लाई...वो उस येलो फ्लावर पर।'' पाली को उस बच्चे पर दया आई जो अपनी धुन में ठुमकता हुआ चलना चाह रहा है लेकिन वह बार–बार खामखां टोका जा रहा है। वह भी बनावटी भाषा में। क्या बनेगा यह बच्चा?

पाली आगे निकलना चाहता है, लेकिन वे आगे अड़े हुए थे। पाली को बाड़

से कूदना पड़ा।

पार्क के एक कोने में जहाँ से बाड़ तोड़कर छोटा रास्ता बनाया हुआ है वहाँ गुलमोहर के पेड़ों का झुरमुट है। इस रास्ते से पार्क पार होते ही नेशनल सीनियर सैकेंड्री स्कूल है तथा नेशनल पोस्ट–ग्रेजुएट कॉलेज है। वह लंबे–लंबे कदमों से गुलमोहरों के झुरमुट के पास पहुँचा ही था कि उसे फोटो लेने का एक विषय अचानक मिल गया। वहाँ कई जने दूध पीते बच्चों को चुप करवा रहे थे, थपकी देकर सुला रहे थे, बोतल से दूध पिला रहे थे, नीचे तौलिए पर सोए बच्चे के मुँह से रूमाल के साथ मक्खियाँ हटा रहे थे। लगता था जैसे वे आस–पास के गाँव या कस्बों से आए हुए थे क्योंकि उनके पास ही उनके अटैची, बैग आदि रखे थे। पाली के पाँव को ब्रेक लग गई और वह सोचने लगा इनसे कैसे पूछा जाए कि यूँ सामूहिक रूप से बच्चों को पालने की ट्रेनिंग करने के पीछे क्या योजना है? कहीं राष्ट्र संघ से अमेरिका ने यह कोई नए तरीके का अंतरराष्ट्रीय वर्ष मनाने की घोषणा तो नहीं करवा दी? उनमें से एक जना बीड़ी खैंच रहा था और बीड़ी–माचिस पास ही रखे हुए थे। पाली को तलब भी थी और बात करने का बहाना भी मिल गया। उसने बीड़ी–माचिस उठा लेने के बाद उससे पूछा 'इजाजत है?

उस आदमी ने कुछ हैरानी से पाली को, उसकी वेशभूषा और कैमरे को देखा और जब तक वह औपचारिकता निभाते हुए 'हाँ हाँ क्यों नहीं' बोला, तब तक पाली बीड़ी सुलगाकर धन्यवाद कहते हुए बीड़ी–माचिस उसे लौटा भी चुका था। बात करने के लिए, पाली को लगा जैसे यह बहाना काफी नहीं है। उसने तौलिये पर सोए बच्चे को देखकर कहा, 'बच्चे की आँखों पर धूप आ रही है। इसकी पुतलियों में कंपन है। लगता है इसकी नींद उचटने वाली है। उस आदमी ने सुनने के साथ ही तौलिया छाँव में खैंच लिया जैसे कि वह बच्चे के जाग जाने से भयभीत हो। अनुकूल माहौल देखकर पाली ने कुछ सांकेतिक–सा पूछा, ''कोई इंटरव्यू वगैरह है क्या?''

''नहीं सामने कॉलेज में कोरेसपांडैंस कोर्स की क्लासें (पर्सनल कंटैक्ट प्रोग्राम) चल रही हैं।'' उसके बताते ही पाली को सारी स्थिति स्पष्ट हो गई। उसने खड़े–खड़े चक्कर लगाते, बाँहों में झुलाते, दूध पिलाते सभी को हमदर्दी की भाषा में वहीं एक जगह बुला लिया। उसने देखा कि एक जने के आस–पास ज्यादा ही मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। उसकी बाँहों पर जिनमें बच्चा सोया हुआ था– काफी मक्खियाँ बैठी हैं। वह कुछ दूर ही रुक गया। पाली समझ गया और उसे यह भी अंदाजा हो गया कि इस बच्चे की माँ ही क्लास से आकर इसकी कच्छी बदलेगी। यह पट्ठा तो इसे धोने से रहा। उसे लगा कि वही सबसे ज्यादा

कुढ़ रहा है। अपनी झेंप कम करने के लिए वह बोला, ''अगर पता होता कि ये सब करना पड़ेगा तो उसे एम.ए. करने से पहले मैं एम.ए. करता बच्चे पालने की। आया बना दिए। कहाँ की एम.ए. थी।'' उसकी बात पर सब खिसियानी हँसी हँसे।

पाली ने एक चीज नोट की कि इन सभी बच्चों के चेहरों पर कोई-न-कोई विकृति उभरने के आसार बन रहे हैं। एक जो संभवत: लड़की है– उसकी पलकों पर लाल-गुलाबी निशान बन गए हैं और पलकें भी झड़ गई हैं। शायद ऐसा लगातार रोने से और आँखें मलते रहने से हो रहा हो। एक की नाक गली-गली-सी हो रही है। एक ने अपने पापा की कमीज जेब के पास से इतनी जोर से पकड़ा हुआ है जैसे कि उसे डर हो कि कहीं मम्मी की तरह पापा भी न छूट जाएँ। पाली ने उन सबका एक स्नैप लिया।

अपनी हिचक और शर्मिंदगी को चुटकुलिया भाषा में उड़ाते उन सज्जनों को छोड़ वह चल पड़ा। उसकी कल्पना में उन बच्चों की मम्मियाँ भी बार-बार आ रही थीं जो कक्षा में बैठी होंगी। लेकिन सारा ध्यान अपने बच्चों में होगा।

काश! फोटो में स्थितियों के साथ-साथ परिस्थितियाँ भी आ पातीं जिनके चलते बच्चे स्वस्थ व सामान्य वातावरण में नहीं पल-बढ़ रहे।

जब वह नेशनल स्कूल के मुख्य द्वार पर पहुँचा तो बच्चे स्कूल के गेट से इतनी भागम-भाग में निकल रहे थे जैसे कि उनके पीछे भेड़िया लगा हो या स्कूल के बाहर प्रसाद की तरह क्रिकेट के बैट बँट रहे हों। पाली ने रेवड़ में तबदील हो गए उन बच्चों की भीड़ का एक स्नैप लिया और फिर एक स्नैप चश्मा लगे मरियल से एक बच्चे का लिया जो बस्ते के बोझ से दोहरा हो रहा था। वह एकाध स्नैप और लेने के लिए अपनी कल्पना में स्थितियों का निर्माण कर रहा था कि तभी उसके मुँह से 'अरे-रे-रे बच गया' निकला। स्कूल के गेट के बाहर ही गार्डर-सरियों और सिमेंट की दुकानें हैं। एक दुकान के आगे सड़क पर एक ट्राली में सरिये लदे हुए थे, पैने सिरे ट्राली के बाहर लटके हुए थे। एक बच्चे को बिल्कुल पास पहुँचकर दिखे कि आगे बिल्कुल उसकी आँख की सीध में सरिये हैं। उसने साइकिल का हैंडल एकदम सड़क की ओर घुमाया। तभी उसके पास से दुकान की तरफ खड़खड़ाता हुआ एक ट्रक गुजरा। इधर सरिये उधर तेज गति से भागते वाहन। पाली के रोंगटे खड़े हो गए। वह भागकर उन सरियों के पास जा खड़ा हुआ और अपना लबादा उतारकर हिलाने लगा। वह भूल गया कि वह 'शहर में बच्चा' शीर्षक से फोटो प्रतियोगिता के लिए फोटो लेने आया हुआ है।

उस ट्राली में सिमेंट लद रही थी और एक ट्रक से सिमेंट उतर रही थी जिस

कारण काफी सिमेंट उड़कर बच्चों के फेफड़ों में जा रही थी। ''दुकानें भी सब स्कूल की हैं फिर मैंनेजमेंट ने ऐसे काम के लिए किराए पर क्यों दी?'' पाली ने पूरी तल्खी से सोचा और सीधा दुकानदार के पास जाकर शिकायत से बोला, ''आपको मालूम है कि आपके ये सरिये किसी भी बच्चे की आँखों से उसकी दुनिया छीन सकते हैं। देखे हैं आपने किस तरह भालों की तरह निकले हुए हैं बाहर?''

दुकानदार और ग्राहकों ने उसे बड़े ही हल्के ढंग से लेते हुए कहा, ''ये तो भाई यहाँ सारा दिन का काम है। अपनी दुकानदारी करें या लोगों की आँखों का ख्याल करें। और फिर बच्चों को तो भगवान बचाता है...आपको तो नहीं लगे?''

पाली को उनसे बात करना निरर्थक लगा। क्योंकि उसने देखा जिला अधिकारी वहाँ से गुजरा है। उसकी कार के पीछे पुलिस की जीप भी थी। ''लगता है सरकार ने भी हर मामले में इसी कथ्य को मान्यता दे दी है कि बच्चों का तो भगवान ही रखवाला है। इन सरियों से, सिमेंट की धूल से, तेज गति वाहनों से बचते कैसे घर पहुँचते हैं ये बच्चे हर रोज?'' वहाँ खड़ा रहना तो दूर पाली को उस दृश्य से ही झुरझुरी आने लगी।

पाली ने मुख्य सड़क छोड़कर पैदल ही कालोनियों में से अपनी दुकान की राह पकड़ ली। उसकी चाल में दम नहीं रह गया है। दिमाग थका होने के बावजूद सोचे जा रहा है। दिन-भर का कैमरे में समेटा कैसेट की तरह आँखों के सामने चल रहा है। वही नहीं बल्कि दुनिया-भर के बच्चे उसके सामने आ खड़े हो रहे हैं जिन पर खतरे-ही-खतरे हैं। माँ-बाप ने भी उन्हें घर में कंप्यूटर चालित रोबोट बना दिया है। गुलमोहरों के नीचे माँ की गोद के लिए तरसते बच्चे। और उनके बाप जो यह निष्कर्ष निकाल चुके हैं कि दोनों की नौकरी के बिना गुजारा नहीं होता और वैसे बच्चों को कुछ देर रखना उन्हें बेगार लग रहा था। गुजारे की उनकी परिभाषा में भी बढ़िया कालोनी में एक कोठी और उस कोठी में अन्य सभी सुविधाओं के साथ एक कार भी है। औरतें अपनी आर्थिक आज़ादी के भ्रम में अपने पतियों के बहकावे में आ रही हैं। इस सारी सोच का खामियाजा भुगतना पड़ रहा है बच्चों को।

सूरज काफी नीचे चला गया है। पाली यह सब सोचता हुआ और एक नई कालोनी के आधे-अधूरे खिड़कियों पर लटके टाटों वाले घरों को देखता चल रहा है। कई घरों के मेन गेट फट्टियाँ जोड़कर बनाए हुए हैं जो केवल कुत्ते आदि को ही रोक पाने में समर्थ थे। पाली के हाथ एकदम कैमरे पर गए। अधूरे-से बने एक मकान के आगे एक मारुति खड़ी थी। कुछ बच्चे उसके चारों ओर इकट्ठे

हो गए थे और उसे हाथ फिरा-फिराकर इस तरह देख रहे थे। जैसे ललचाई नजरों से अपने सहपाठी का नया ज्योमैट्री बक्स देख रहे हों। पाली ने देखा धूप नहीं रही थी। बैट्री भी डाउन थी। फोटो के लिए स्थिति भी महत्त्वपूर्ण थी। उसने दक्षिण की ओर एक पूरी बन चुकी कोठी देखी जिस पर बनी सफेद माउंटी पर धूप पड़ रही थी और वह मांउटी मारुति के पिछले हिस्से को रिफ्लैक्टर की तरह उभार रही थी। पाली को यह बहुत अच्छा एक्सपोज़र लगा। उसने अधूरे मकानों को भी फोकस में ले लिया। स्नैप लेकर चलते हुए पाली ने सुना 'पापा भी लाएँगे मारुति जब हमारा मकान पूरा हो जाएगा।' मारुति को गोद में भर लेने की कोशिश करता हुआ निक्कर वाला बच्चा दूसरे बच्चे को कह रहा था। पाली ने बेबसी से फिर सोचा, "काश! बच्चे की भोली बातों को भी फोटो में लिया जा सकता और मारुति के प्रति उसकी लालसा को जो बड़ा होने पर उससे येन केन प्रकारेण मारुति जरूर खरीदवाएगी-एक्सपोजर दे पाता।"

जब पाली दुकान पर पहुँचा तो वहाँ ताला लगा था। सामने रेहड़ी वाले ने बताया कि उसकी पत्नी आई थी वह लगा गई है। पाली घर की ओर घूम गया। तभी आजाद ने ऐन उसके पास आकर अपनी स्कूटर रोकी। "उस्ताद जी! आज आप घर न जाओ। मैं आपको देखने पहले दुकान पर आया। यहाँ ताला लगा था। मैंने सोचा मेरा दारू का निमंत्रण शायद उस्ताद जी को याद नहीं रहा इसलिए मैं आपको लेने घर चला गया। वहाँ जाकर देखा तो आंटी जी और बच्चे उदास बैठे थे। आंटी ने बताया कि गैस खत्म हो गई है। मैंने दो पैकट ब्रैड के लाकर दिए। बच्चों ने तो खा लिये थे, लेकिन आंटी पूरे गुस्से में थी आज। कह रही थी आने दो उसके कैमरे की रील निकालकर ब्रेडों के साथ न खिलाई तो मेरा भी नाम नहीं।"

पाली की कल्पना से तमाम बच्चे एकदम गायब हो गए। उनकी जगह कैमरे के स्टैंड जैसी पतली-पतली टाँगों वाले उसके अपने बच्चों ने ले ली। उसे सामने ही हंटर की तरह रील को फटकारती अपनी पत्नी भी खड़ी दिखने लगी।

आजाद ने फिर कहा, "चलो उस्ताद जी! मेरे साथ चलो आज। मैं आंटी को कहकर भी आया हूँ।" पाली उलझन में खड़ा है कि किधर जाए। कंधे पर लटके कैमरे की बेल्ट को उसने कसकर पकड़ा हुआ है—गुलमोहरों के नीचे अपने पापा की कमीज को मुट्ठी में भींचे बच्चे की तरह।

(प्रकाशित : 'पल प्रतिपल', जुलाई-सितंबर 2001)

मैं मंदिर के गर्भ-गृह से बोल रहा हूँ

संध्या समय की आरती के घंटा-घड़ियाल, नक्काश पूरे शोर के साथ बज रहे थे। चारों ओर वातावरण में गुलाब, चंदन, मोगरे की धूप-अगरबत्तियों की सुगंध फैली थी। चालीस-पचास भक्त जिनमें अधिकतर छोटे-छोटे दुकानदार, कर्मचारी या गृहणियाँ थे, एक स्वर में गा रहे थे- जय अंबे गौरी, मैया जय श्यामा गौरी। तुमको निशिदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिवरी-ओउम जय अंबे गौरी।

ये सब लोग, कुछेक को छोड़कर संध्या समय की आरती में नियमित आने वाले थे और इनमें से कुछ मंदिर के पुजारी और मालिक पंडित देवीशरण के मुँह लगे थे। ये आरती के पश्चात् अक्सर पिछले दफ़्तर में बैठकर आनंद उठाते थे, गपशप लगाते थे, पंडित जी को नई योजनाएँ सुझाते थे, दूध में पत्ती या जूस पीते थे। इनमें से भी दो-चार ऐसे थे जो पंडित जी के साथ एकमेक थे और इससे आगे का आनंद उठाने का कोई कार्यक्रम बनता तो ये उसके सहभागी थे। पंडित जी की कभी-कभार की अनुपस्थिति पर ये लोग कहते रहे हैं कि पंडित जी, यह मंदिर सिर्फ आपके साथ ही सजता है। आपके बिना तो ये बिना नग की अँगूठी की तरह है जो सोना तो है पर सुंदर नहीं। यही मुँहलगे अब आरती गाते हुए एक-दूसरे से आँखों-आँखों में, सफेद संगमरमर के स्तंभ के शीर्ष पर बने शेर के मुँह के नीचे नक्काशी की बगल वाले खाली स्थान की ओर इंगित कर पूछ रहे थे आज नगीना कहाँ है?

आरती के समय नित्यप्रति आँखें भींचे पेट को गुदगुदाने वाले धम्म-धम्म नाद को सहन करते पंडित जी यहीं विशाल नक्कारे के साथ खड़े होते हैं और पूरी भक्तमंडली पर खुल-मिच आँखों से नज़र रखते हैं। लेकिन आज वो मंदिर के पिछवाड़े दफ़्तर में ही बैठे रहे। अपने सेवक को बता दिया कि किसी कारणवश आज आरती में शामिल नहीं हो पाएँगे।

आरती में शोर भी होता है पंडित जी को यह पहली बार मालूम हुआ। जब उनसे वह शोर बिल्कुल सहन नहीं हुआ तो उठकर किवाड़ मिलाकर बंद कर दिए और सभी पर्दे खींच दिए। वे रिवाल्विंग चेयर में पीठ लगाकर थोड़ा इधर-उधर झूलने लगे।

सभी क्रिया–कलापों, मीटिंगों, खास मेहमानों तथा अति विशिष्ट व्यक्तियों के अनुरूप सजाए गए अपने इस कक्ष की एक–एक चीज़ को वे इस तरह देख रहे थे जैसे कि वह कक्ष किसी और का हो और वे पहली बार इसमें बैठे हों। आधे से अधिक स्थान में पसरी सनग्लास जड़ी टीक वुड की अर्धगोलाकार टेबल, उस पर सजे उपहार–स्वरूप आए सुंदर–सुंदर कमलदान, पेपरवेट, डस्टर, कैंडल–स्टैंड आदि। दीवारों पर भिन्न–भिन्न उत्सवों, अवसरों पर खींचे गए मुख्य अतिथियों या अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के साथ सुनहरी फ्रेमों में जड़े उनके फोटो–चित्र। पीतल, काँसे के नक्काशीदार फूलदान। आकर्षक खिड़कियाँ, दरवाज़े, परदे, टेलीविज़न, टेलीफोन, ए.सी. आदि सब कुछ। सब भव्य।

कुर्सी की पीठ पर गर्दन टिकाकर पंडित जी ने आँखें बंद कर लीं। नहीं खोल लीं। नहीं खड़े हो गए। नहीं उनका जबड़ा कस गया और उन्होंने दूसरे हाथ की हथेली पर मुक्का मारा।

साथ रखे टेलीफोन की तीखी घंटी ने उनकी उत्तेजना में और वृद्धि कर दी। बिना किसी विशेष कारण के यूँ ही देर तक टेलीफोन में इधर–उधर की हाँकते रहने और 'और सुनाओ, और सुनाओ' करते रहने, दूसरी ओर से बिना कुछ सुने अपनी सुनाते रहने वाले पंडित जी ने अब टेलीफोन की ओर सहमी हुई दृष्टि से देखा। कोई और अनहोनी तो नहीं होने जा रही ? सोचकर असमंजस की–सी स्थिति में उन्होंने मुश्किल से 'हैलो' कहा और कुछ राहत की साँस ली। बेटे की आवाज़ सुनकर उन्हें ध्यान आया कि उनके दो–दो बेटे बाहर हैं– एक अमेरिका में, एक दिल्ली में। फोन दिल्ली वाले बेटे का था। जरूरी काम था तभी उसने यहाँ किया अन्यथा वह रात को घर पर ही करता है। एक विदेशी फोटोकॉपियर कंपनी अपनी फोटोस्टेट मशीनों के साथ एक स्टेबलाइज़र फ्री स्कीम घोषित करने वाली है। यह बिजनेस सीक्रेट बेटे ने अपने संबंधों से प्राप्त किया था। बेटा चाहता था कि स्टेबलाइजर उसकी फैक्ट्री के अप्रूव हो जाएँ। यदि ऐसा हो जाता है तो आगे उस कंपनी के अन्य प्रोडक्ट, रेफ्रीजरेटरों के साथ भी यह स्कीम चलवाई जा सकती है। वह टेलीफोन पर बता रहा था कि इस कंपनी का क्षेत्रीय डायरेक्टर यहाँ के एक आई.ए.एस. अफसर का दोस्त है और वह आई.ए.एस. अपने शहर के उपायुक्त के बैच का है। भविष्य में इस कंपनी ने मुख्य–मुख्य शहरों में कंप्यूटर सेंटर भी खोलने हैं। वहाँ इन्हें बड़ी संख्या में यू.पी.एस. की जरूरत पड़ेगी। लेकिन क्षेत्रीय डायरेक्टर कुछ सख्त है। वह चाहता है कि टेंडर की अपेक्षा माल गुणवत्ता के आधार पर खरीदा

जाए। अगर अपना उपायुक्त यहाँ के आई.ए.एस. अफसर को सिफारिश कर दे तो डायरेक्टर कुछ नरम पड़ सकता है। इस तरह एक बड़ा आर्डर हाथ लग सकता है।

लेकिन पंडित जी उद्विग्न थे। स्वयं ऐसी-ऐसी योजनाएँ बेटे को सुझाने वाले पिता अब बिना किसी उत्साह के मात्र हाँ...हाँ किए जा रहे थे और 'ठीक-ठीक' कहने के पश्चात् फोन रख दिया। कुछ देर वे फिर रिवाल्विंग चेयर पर इधर-उधर झूले और अनमने ही टी.वी. का रिमोट दबा दिया। उनका मनपसंद चैनल लगा हुआ था। बैकग्रांउड में धीमी-धीमी अँग्रेजी धुन के साथ फैशन शो के फ्लोर पर कैट-वाक में नग्न-अर्धनग्न चिकनी गोरी युवतियाँ आ-जा रही थीं। इसके साथ ही उन्होंने आरती का आखिरी जयकारा सुना- शेरों वाली माता तेरी सदा ही जय।

उसके कक्ष के आस-पास मँडराती उसकी मित्र मंडली को सेवक टरका रहा था। वही मित्रमंडली जिसकी आहा-आहा इस कैट-वाक के एक-एक दृश्य को और अधिक उत्तेजित बनाती है। उन्होंने टी.वी. ऑफ कर दिया। जेब से चाँदी की डिबिया निकाली और एक पान-तंबाकू लेकर मुँह में रखकर टी.वी. केबिनेट के पास रखे पीकदान में थूक दिया। जितना वे इस ओर से आश्वस्त हो रहे थे कि मित्रमंडली टल चुकी है घड़ी की ओर देखकर उतने ही व्यग्र हो रहे थे। एयर कंडीशनर के पूरे वेग में चलने के बावजूद उन्हें पसीना आए जा रहा था।

अपने भीतर आत्मविश्वास बटोरते हुए इधर-उधर देखकर वे कक्ष से बाहर निकले। मंदिर का प्रांगण खाली हो चुका था। स्थायी सेवक ही इधर-उधर आ जा रहे थे। मंदिर की तेज रोशनियाँ उन्हें अखरीं। दूर से ही उन्होंने 'जय हो देवीमाता' कहा और मुख्य द्वार से बाहर सड़क पर आ गए। वे हिचकते हुए कुछ ही दूर चले थे कि तभी शहर की बिजली गुल हो गई। उन्होंने इसे देवीमाता की अतिरिक्त कृपा माना और जल्दी-जल्दी लंबे कदमों से चलने लगे जैसे कि तीन कदमों में पूरी पृथ्वी नापकर अपने नाम करवानी हो। उन्होंने पान का एक और बीड़ा मुँह में रखा और कदमों की तरह मुँह भी जल्दी-जल्दी चलाने लगे।

बिजली गुल होने के कारण सड़क पर काफी अँधेरा था लेकिन फिर भी आते-जाते वाहनों की तेज रोशनियाँ उन पर पड़ रही थीं। इस अंदेशे से कि कहीं कोई देख न ले, उनकी परेशानी और भी बढ़ रही थी। उनका यह अंदेशा

उचित भी था। जिसे सड़क पर दो कदम भी पैदल चले वर्षों बीत चुके हों। हर समय उनकी सेवा में तत्पर रहने वाला शहर का कोई भी चेला-चपाटा अपनी कार उसके बराबर रोककर पूछ सकता था– 'पंडित जी! आज पैदल कैसे? कहाँ जाना है? चलो मैं छोड़ आता हूँ।'

असल में पंडित देवीशरण मिश्र अब मात्र नाम नहीं रह गया है बल्कि पंडित या गुरूजी हो गया है। और ये पंडित या गुरूजी भी एक संस्था—कई शाखाओं वाली एक विशाल संस्था बन चुके हैं। आज शहर का बच्चा-बच्चा पंडित जी को जानता है। पंडित जी के एक संकेत मात्र से सारे शहर के सेठों की कारों की यहाँ लाइन लग सकती है। मात्र सेठों की ही नहीं, सरकारी वाहनों का काफिला भी इनके कहने भर से हूँ हूँ सायरन बजाता यहाँ पहुँच सकता है। है कोई पूरे शहर में ऐसा जो पंडित जी की आज्ञा की अवेहलना करने की हिम्मत करे। स्वयं पंडित देवीशरण मिश्र तो कम-से-कम यही सोचते हैं।

'यह जो सड़क पर आज पैदल चला आ रहा है– तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट होने के कारण ही पैदल चला आ रहा है... वरना.... तुम भूल रहे हो कि तुम किससे टक्कर ले रहे हो? एक प्रधान से मूर्खों, एक प्रधान से। पंडित देवीशरण मिश्र, प्रधान पुजारी एवं मालिक प्राचीन श्री देवीमाता मंदिर, प्रधान श्री देवीशरण माता काँवड़ सेवा समिति, प्रधान श्री देवीमाता वृद्धाश्रम, श्री देवीमाता गऊशाला, धर्मशाला , धमार्थ औषधालय, मानव सेवा समिति, एंबूलेंस सेवा समिति, राज्य स्तरीय मंदिर-निर्माण परिषद्, रामायण प्रचार समिति, दशहरा कमेटी और प्रधान श्री देवीमाता धर्म प्रचार परिषद् आदि-आदि।'

सोचते हुए, फैलते हुए सिकुड़ गए एकदम पंडित देवीशरण मिश्र। झक्क से बिजली आ गई थी; उन्होंने सिर पर पटका डाल लिया और चारों ओर देखा। आश्वस्त हुए कि उनके कदम मुख्य मार्ग से गली में रखे जा चुके थे।

उसे देखकर खाट पर बैठे माँ-बेटे में कोई हरकत नहीं हुई। हाँ ताऊ को देखते ही बच्चे नमस्ते करके ऊपर चले गए। जेठ को देखकर बहू भी एक बार खड़ी हुई और फिर उनके बैठने के पश्चात् कुर्सी पीछे खींचकर बैठ गई। कुछ देर कोई कुछ नहीं बोला। पंडित जी धीरे-धीरे मुँह चलाते रहे। लगता था जैसे सभी या तो अपने-आपको तैयार कर रहे थे या स्थिति से उबरने की कोशिश। बड़ी बिटिया ऊपर से आकर पानी रख गई तो वे उठे नाली में पान थूका और आकर पानी पिया। सुस्त चल रहे पुराने पंखे को देखा। कालर थोड़ा पीछे करके और बाजुएँ ऊपर खींचकर गर्मी लगने का इज़हार किया। चेहरे पर आत्मविश्वास

लाते हुए भाई की ओर मुँह करके पूछा, 'हाँ तो फिर क्या सोचा?'

'हमने क्या सोचना था? सोचना तो आपको है। हमने जो बताना था सो बता दिया। अब तो आप बताओ। आपने क्या निर्णय लिया है?' छोटे भाई ने बिना किसी हिचकिचाहट के कहा।

'हुम्म! तो तुम लोगों ने बात बढ़ाने का निश्चय कर ही लिया है,' पंडित देवीशरण मिश्र यानी बड़े भाई ने दोबारा बाजुएँ ऊपर खींचते हुए कहा।

'बात हम नहीं, तू बढ़ा रहा है।' माँ थोड़ा तल्खी से बीच में बोली, 'मैंने तुझे दो-टूक फैसला सुना दिया है कि अब तक सब तेरा ही था। तूने बहुत कमा लिया है। कोठियाँ, कारें, कारखाने। तू भी और तेरे बेटे भी अच्छी हालत में हैं। अब और क्या चाहता है तू। क्या पूरा शहर अपने नाम करवाएगा?' माँ के स्वर में गुस्सा साफ दिख रहा था।

'ये सब मैं सुन चुका हूँ। कई बार सुन चुका हूँ। और कुछ, ठीक-ठाक-सा, जो तुम लोगों के भी हित में हो और मेरे भी फायदे में हो वह बताओ।' बिना थोड़ा-सा भी विचलित हुए कहा पंडित जी ने।

'वह तो फिर पंचायत ही बताएगी। हमने तुझे सोचने का समय दिया था। तूने कुछ नहीं सोचा तो तेरी मर्जी। अब हम जानें और पंचायत या कोर्ट जाने। फिर ना कहना कि बेइज्जती करवा दी।' माँ ने टाँगों को आगे-पीछे करते हुए कहा।

पंडित देवीशरण मिश्र पंचायत के नाम से डर गए। बड़े पंडित जी कहा करते थे कि जो भी करना है बंद कमरे में कर लेना- चाहे नाकों लकीर ही क्यों न खींचनी पड़े। लेकिन पंचायत का अर्थ है अपनी सात-पुश्तों को चौराहे पर नंगा करवाना। घर के गुदड़ों की टाँकियाँ-थेगलियाँ तक गिना दी जाती हैं वहाँ। केस अगर कोर्ट में चला गया तो अखबार वाले मिर्च-मसाला लगा-लगाकर वैसे ही गली-मोहल्लों तक में मिट्टी पलीद कर देंगे। और फिर यूँ भी कोई कानून उसके पक्ष में निर्णय नहीं दे सकता। यह एकदम स्पष्ट है। फिर भी उन्होंने उबरने की कोशिश करते हुए कहा, ''यह तुम्हारी ईर्ष्या बोल रही है। जहाँ तक पंचायत और कोर्ट का सवाल है— वह भी देख लेंगे। वहाँ भी मनुष्य ही जाते हैं वहाँ भी मनुष्य ही होते हैं।'' काँपती-घरघराती आवाज़ में कह तो गए पंडित जी लेकिन तभी उन्होंने अपनी इस थोथी चुनौती के साथ और यह जोड़ना पड़ा, ''मेरी तो समझ में नहीं आ रहा कि आखिर तुम्हें कमी क्या रही है आज तक? और मेरे रहते आगे भी कैसे रह सकती हैं? तुम एक बार कहो तो सही। तुम्हें

जो चाहिए मैं दूँगा।'' कहकर पंडित जी ने जेब से चाँदी की डिबिया में से पान निकालकर मुँह में डाला। पीठ कुर्सी से लगा ली। वे कुर्सी की बाजुओं को इस तरह दबाने लगे जैसे कुछ माँगने के लिए शिवलिंग की जलहरी दबा रहे हों।

'ठीक है फिर। अगर हमें जो चाहिए तू देगा ही तो फिर झगड़ा ही खत्म। वह मंदिर इसका है- इसे दे दो। कल भी यही निर्णय था, आज भी यही है और कल भी यही रहेगा।' मां ने दृढ़ता से कहा और साथ ही ऊपर बच्चों को चाय लाने के लिए आवाज़ दी। फिर कुछ शांत और चिंता मिश्रित स्वर में कहने लगी, 'बेटा मैं नहीं चाहती कि तुम दोनों भाइयों में कोई झगड़ा हो और तेरी इस हेठी का लोग तमाशा देखें। तू इसका हिस्सा दे दे बस। बाकी जो तू आज तक बना चुका है वह सब तेरा है। उसमें से एक पैसा भी देने के लिए नहीं कहूँगी।' माँ के वक्तव्य में आत्मविश्वास था जिसमें एक माँ की तड़प भी थी और अनहोनी को टालने की सूझ भी।

यही तो एक निर्णय था जो देवीशरण को उसके सिंहासन से उतारकर सड़क पर ला खड़ा करता था। पंडित देवीशरण का दिल किया कि किसी फिल्मी खलनायक की तरह ठहाका लगाकर हँसे, लेकिन स्थितियाँ उसके पक्ष में होने तक उसे नियंत्रण से काम लेना था, अत: वह गंभीरता का दिखावा करने लगे जैसे कि उनकी बात पर विचार कर रहे हों।

पंडित देवीशरण को वास्तव में खीझ उठ रही थी कि कैसे ये लोग मंदिर को किसी छोटी-मोटी मढ़ी की तरह ले रहे हैं। कैसे समझाएँ वह इन बुद्धुओं को कि मंदिर अब मात्र मंदिर नहीं रह गया है। वह तो बाहर से एक दिखने वाले खरगोश के बिल की तरह सहस्त्रबाहु गहन-गुहा में परिवर्तित हो चुका है जिसकी भूल-भुलैया में फँसकर ही उसके रहस्य को जाना जा सकता है। भव्य और बड़े-बड़े पांडालों में भाइयों, बापुओं, माँओं, बहनों के रामायण पाठ, भगवद्गीता पाठ या अन्य प्रकार के प्रवचन करवाकर और समाचार-पत्रों में समाचार छपवाकर उसने श्री देवीमाता मंदिर को शहर की दिनचर्या का एक आवश्यक अंग बना दिया है। आज पूरे शहर में देवीमाता मंदिर की संस्थाओं का जाल बिछा हुआ है। इन सभी संस्थाओं के प्रधान होने के नाते श्रेष्ठ समाज-सेवी का पुरस्कार भी कई बार प्राप्त कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त वर्ष भर चलनेवाले छोटे-मोटे कार्यक्रम यथा आँखों के, बच्चों की बीमारियों के नि:शुल्क कैंप, गरीब कन्याओं के सामूहिक विवाह समारोह, वर्षा करवाने या वर्षा रुकवाने के लिए और विश्व में शांति स्थापना के लिए एक सौ एक से एक

हज़ार एक कुंडीय यज्ञ व अन्य अनुष्ठान तो वर्ष–भर चलते ही रहते हैं। इसके साथ–साथ श्री देवीमाता मंदिर के नाम से सैकड़ों बिस्तरे, कड़ाहे, कड़ाही, टब, भगौने, टंकियाँ, छोटे बर्तन, गैस भट्ठियाँ आदि भी हैं जो बारह मास किराये पर यानी देवीमाता मंदिर के नाम की दान पर्ची कटवाकर जाते ही रहते हैं।

और तो और, आज शहर–भर के लोग अपने शुभ कारज संपन्न करवाने के लिए उसी ब्राह्मण को सही ब्राह्मण मानने लगे हैं जिसे श्री देवीमाता मंदिर की ओर से भेजा जाता है। जिन ब्राह्मणों ने पंडित देवीशरण मिश्र के आगे समर्पण कर दिया है वे आज भरपेट खा रहे हैं। शेष जो अपने पांडित्य और ब्रह्मतेज के अहं में फँसे हैं– भूखों मर रहे हैं। किसी को भी आज अपने ब्राह्मणत्व को मान्यता दिलवानी है तो उसे पंडित देवीशरण की शरण में आना ही पड़ेगा, क्योंकि ब्राह्मणों को आगे यजमानों तक सप्लाई करने का एकमात्र एवं विश्वसनीय स्थान श्री देवीमाता मंदिर बन चुका है। दिन–भर टेलीफोन पर बिस्तरों या कड़ाहे–कड़ाहियों की तरह ब्राह्मणों की भी बुकिंग होती रहती है।

और ज्योतिषी! वे भी कहते हैं कि अपने चरणों में जगह दे दो पंडित जी। हमारी भी दाल–रोटी चलती रहेगी। पूरा कमरा है मंदिर के साथ जिसमें कंप्यूटर लगे हैं। देवीमाता एस्ट्रो डॉट काम के नाम से सैकड़ों ई–मेल आती हैं विदेशों से– जन्मपत्रियों, दु:खों के निवारण उपायों या भविष्य जानने वालों की। दिन–भर वहाँ से कंप्यूटरीकृत जन्मपत्रियाँ, लग्न, टेवे या अन्य समस्याओं का हल भेजा जाता है।

समारोहों–अनुष्ठानों के उद्‌घाटन–समापन अवसरों पर महत्त्वपूर्ण या विशिष्ट व्यक्तियों का श्री देवीमाता मंदिर में आगमन होता ही रहता है इससे भी पंडित देवीशरण मिश्र स्वत: ही विशिष्ट श्रेणी में आ जाते हैं। शहर के सेठों की अनुकंपा तो लगता है जैसे बनी ही पंडित जी के लिए है। वहाँ 'सामर्थ्य' या 'दान श्रद्धा समान' जैसे सेठाई को चुनौती देने वाले या सीमित करने वाले शब्दों के लिए कोई स्थान नहीं था। जितने की भी पर्ची काटी या मुँह से निकला– उतने ही पंडित जी के हाथ में। लगता था जैसे पंडित देवीशरण का व्यक्तित्व सेठों को भा गया था या उनके स्वादानुसार हो गया था।

पंडित जी का व्यक्तित्व था भी बिल्कुल इस सारे तामझाम के अनुरूप या यों कहें कि या सारा तामझाम उनके व्यक्तित्व के अनुरूप पनप रहा था। लंबा डील–डौल, ताम्रवर्णी–चिकनी चमड़ी, हेयर डाई से रँगे काले चमकीले बाल, थायराइड के मरीज जैसी मोटी–मोटी सामान्य से कुछ बाहर को निकली आँखें

और पान–तंबाकू खाते रहने के कारण लाल होंठ। उन पर कुरता–धोती या सफ़ेद चूड़ीदार पायजामा खूब फबते थे। गले में वे लंबा केसरिया किनारी का सफेद पटका हर समय डाले रहते थे। कई बार तो एक ओर अधिक फिसल कर पटके का पल्ला उनकी चमकदार काली चप्पलों को स्पर्श कर रहा होता है। उन जैसा तिलक पूरे शहर के ब्राह्मणों में आज तक कोई नहीं लगा पाया। कुछ ब्राह्मणों ने नकल भी की लेकिन जँचे नहीं और उपहास का पात्र बने। चौड़े माथे पर दोनों ओर की काली लटों के बीच जहाँ उसकी घनी भवें आपस में मिलने को होती हैं– पहले सिंदूर का एक बड़ा–सा टीका बनाते हैं पंडित जी। फिर उस पर सफेद चंदन का टीका इतनी सावधानी से बनाते हैं कि वह पहले वाले सिंदूर के टीके से छोटा रहे। इस तरह सफेद टीके की बाहरली किनारी के साथ–साथ नीचे वाले सिंदूर के टीके की महीन–सी लाल किनारी नज़र आती रहती है जैसे कि उदय होते सूर्य का तेज किनारों पर तीव्रतर दिख रहा हो। वे अपनी दोनों जेबों में चाँदी की दो डिबियाँ रखते हैं–एक में पान, तंबाकू, सिगरेट, लाइटर और दूसरी में इलायची, लौंग और मिश्री। सबसे पहले सेठों या अन्य विशेष व्यक्तियों के आगे पंडित जी ये दोनों डिबियाँ ही खोलते हैं। ऊ पर की जेब में टेलिफोन डायरी, पैन आदि रहते हैं। मोबाइल भी रहने लगा है। कुल मिलाकर सामान्य से कुछ अलग हैं पंडित जी।

इस प्रकार न तो यह कोई साधारण–सा या एकांगी मंदिर ही रह गया है और न पंडित देवीशरण या देवीमाता ही नागरिकों के संस्कारों में पड़े आदरणीय नाम हैं। ये तो जन्म–मृत्यु, शादी–गमी, शांति –शोर, सुबह–शाम दिमागों में गूँजते रहने वाली ध्वनियाँ बन चुकी हैं। सामान्यतः पूरा शहर मंदिर के आगे से गुजरता हुआ धीरे से फुसफुसाता है 'मेरी हाजिरी लगा लेना माँ।' पंडित जी ने सब दिमागों में कुछ इस तरह का स्थापित कर दिया था कि शहर वाले मानने लगे थे– यह संपन्नता की देवी है और विपन्नता की भी। विद्या की देवी है और प्रज्ञानता की भी। यह निद्रा की देवी है और तनाव की भी। यह शांति की देवी है और उपद्रवों की भी। यह वर्षा की देवी है और सूखे–बाढ़ की भी। यानी शहर वाले यह मान चुके थे कि आज शहर में जो कुछ घटित होता है उसकी नियामक श्री देवीमाता हैं। उसकी इच्छा के बिना शहर में पत्ता तक भी नहीं हिल सकता। सब देवीमाता की इच्छा–अनिच्छा या प्रसन्नता–आक्रोश के फलस्वरूप ही होता है।

लंबी साँस छोड़ते हुए बोले पंडित जी, 'पिताजी ने इसलिए तो यह मंदिर

नहीं बनाया था कि हम दोनों भाई इसे लेकर लड़ें। आपस में झगड़ा करें।' एक-एक शब्द को गहराई और अर्थवत्ता से सहलाते हुए कहते रहे पंडित जी, 'और फिर मुद्दा उठाने से पहले इस पक्ष पर भी तो विचार किया होता कि अब यह मंदिर न तो पिताजी का है न माँ का है। न तेरा है न मेरा है, न तेरे परिवार का है न मेरे परिवार का है। यह तो पूरे नगर का है। नगर के नागरिकों का है। अपितु मैं तो कहूँगा कि पूरे राष्ट्र का है। उनके विश्वास, उनकी भावनाओं, उनकी श्रद्धा का आधार यही मंदिर तो है। नागरिकों से यह सब न मैं छीन सकता हूँ न आपकी पंचायत और कोर्ट के निर्णय।' पंडित जी एक धर्म प्रचारक की भाँति निर्बाध प्रवचन करने की तरह बोलने लगे, 'और फिर मैं... मैं तो इस नगर के महान् सपूत प्रातः स्मरणीय पूज्य पिता के सपनों को ही साकार कर रहा हूँ जो उन्होंने अँग्रेजी शासकों की काल कोठरी के यातनापूर्ण अंधकार में अपने इस प्रिय नगर, इस श्रद्धेय जन्मभूमि के लिए देखे थे। मेरा क्या है। मैं तो मात्र अपने कर्तव्य का निर्वाह कर रहा हूँ। रीढ़ को कँपाने वाली शीत हो या आँखों को जलाने वाली लू—अपने आराम का तनिक-सा भी ध्यान रखे बिना अपने नागरिकों को देय इस ऋण का आयुपर्यंत कर्तव्य के रूप में देते रहने का मैं प्रण ले चुका हूँ। आप तो क्या ब्रह्मांड की कोई भी शक्ति, विश्व का कोई भी कानून मुझे अपने इस श्रद्धायुक्त भावनात्मक निर्णय से च्युत नहीं कर सकते।' कहकर पंडित जी ने कसमसाते हुए कुर्सी में पहलू बदला। जेब से चाँदी की डिबिया निकालकर एक पान मुँह में रखा और फिर कुर्सी की बाजुओं पर अपनी हथेलियाँ रगड़ने लगे। उनके चेहरे पर कुछ इस तरह के भाव कि 'तुम्हें क्या मालूम यह सब क्या होता है?' के साथ खिन्नता भी थी और एक विश्वास भी कि उसने जो भी कहा है, जिस तरह कहा है— और कोई नहीं कह सकता।

लेकिन उसका यह संभाषण सुनकर माँ बिफर गई। वह पीछे की दीवार पर एक ओर टँगी अपने पति की पुस्तकाकार फोटो की ओर संकेत करती हुई गुस्से और व्यंग्य से बोली, ''इसका नाम बीच में मत ला शरण। मेरे से ज्यादा और कौन जानता है कि ये क्या था और क्या थे इसके सपने। और इतना लंबा-चौड़ा भाषण झाड़ने से पहले यह तो सोचा होता कि तू अपने ही परिवार में बैठा है, तेरे भक्त श्रोताओं के बीच नहीं जहाँ तू इसका नाम लेकर उन्हें ब्लैकमेल करता रहता है। इसकी उम्र के किसी बूढ़े से कभी बात करे तो तुझे पता चले कि ये क्या था। तू ही कौन-सा बच्चा था उस समय जो तुझे याद नहीं। बड़े

आए बाप–बेटा सपने देखने वाले।'' कहकर माँ ने टाँगें थोड़ी मोड़ीं। उसके चेहरे की हल्की झुर्रियों में गुच्छे–के–गुच्छे पीड़ा और घृणा उभर आई थी।

एकदम उत्तेजित होकर प्रतिकार किया पंडित जी ने माँ की बातों का, 'अब तुम्हें तो यह भी अच्छा नहीं लगता कि मैं पिताजी को अभी तक जीवित क्यों रखे हुए हूँ। इसके पीछे भी तुम्हें मेरा स्वार्थ ही दिखता है। और लगता रहता है कि मैं उनके नाम की कमाई खा रहा हूँ। जबकि वास्तविकता यह है कि स्वतंत्रता सेनानी को या उसकी संतानों को मिलने वाले सभी कामों–सुविधाओं के बारे में मैं समय–समय पर आप सबसे पूछता रहा हूँ। लेकिन आपको तो अपने आदर्शों से प्यार है। तो क्या मैं भी उन सुविधाओं का लाभ नहीं उठाऊँ? वह सब छोड़ने से किसका लाभ होगा– सरकार का ही ना?'

छोटा भाई अब चुपचाप था। उसने अत्यधिक धैर्य से कहा, 'वह सब छोड़िए कि हम क्या हासिल करते हैं और क्या त्यागते हैं। पिताजी का प्रसंग बीच में न आए तो अच्छा है। आप यह बताइए कि आपके सपने क्या हैं? अगर यह मंदिर हम दोनों में से किसी का भी नहीं है तो क्यों नहीं इसे शहर की जनता या सरकार को समर्पित कर देते? क्यों नहीं इसके बाद मेरी तरह या शहर के सामान्यजन की तरह जीवन–यापन करते? मैं इसमें से एक ईंट भी कभी माँगू तो कहना। कल ही बनवा ले कागज और ले जा मेरे साइन।'

यह सब उसने इतने संयत भाव से कहा कि तंग हो गए पंडित जी। वे फिर कुर्सी में पहलू बदलने लगे। लेकिन जल्दी ही उन्होंने इस स्थिति से उबरने का प्रयास करते हुए बात सँभाल ली, ''यह भी हो जाएगा। उतावला मत हो मेरे भाई। यह भी हो जाएगा। लेकिन तब तक नहीं जब तक माँ है। माँ मेरे बारे में क्या सोचती है इसका मुझे कतई क्षोभ नहीं। मैं तो इन्हें इस सारे तामझाम की स्वामिनी मानता आ रहा हूँ। माँ मेरे सभी उद्देश्यों, आदर्शों, क्रिया–कलापों की प्रेरणा माँ। जिनका कि मैं शैय्या से नीचे धरा पर पाँव रखने से पूर्व हर प्रातः ईष्ट देवी–माता या प्रभु के स्मरण से पहले नाम लेता हूँ। और कहता हूँ कि हे माँ, मैं तेरी इस धरोहर का एक तुच्छ–सा पहरेदार हूँ। मेरे से कभी भी कोई भूल न हो जिससे आप या पिताजी का नाम मलिन हो। लेकिन मुझे केवल खेद है कि इस सबके बावजूद मेरी नियत पर संदेह किया जाता रहा है। और तुमने तो समस्त सीमाओं का अतिक्रमण ही कर दिया है। तुम तो अपने कुल के पूर्वजों की मर्यादा, परंपरा और संस्कार तक भूल चुके हो। माँ बेटे में वार्ता चल रही है और बीच में हस्तक्षेप करने लगे हो।'' पंडित जी की बातों में उपहास उड़ाने

जैसा पुट आ गया। उन्होंने कुर्ते की बाँहें ऊपर खींची। अनमने से पंखे की ओर देखा। उठकर नाली में पान थूककर आए और पटके से मुँह साफ किया।

बेटी चाय रख गई। बहू ने उठकर सबकी ओर बढ़ा दी। पंडित जी ने अपनी तर्जनी से चाय का छींटा माँ धरणी को अर्पित किया और अनमने से घूँट भरने लगे। बहू काफी देर से साड़ी के पल्लू को बटती चुपचाप एक ओर बैठी सब देखे-सुने जा रही थी। वह अब अपने-आपको बोलने के लिए तैयार करने लगी। पंडित जी की बातों का भावुक और अमूर्तन धरातल माँ-बेटे को उतना भर भी कहने से बाधित कर रहा था जितने के लिए वे तैयार होकर बैठे थे। उनकी बातें ब्लैकबोर्ड पर चाक से लिखी इबारत सिद्ध हो रही थीं जिसे कि जेठ जी साथ-ही-साथ अपने अमूर्तन डस्टर से मिटाते आ रहे थे। वह अपने प्रत्युत्तर-प्रतिक्रिया का एक-एक शब्द हिंदी में भी सोच रही थी, क्योंकि एक भी शब्द अँग्रेजी का आते ही पंडित जी पूरी बात को उपहास में फूँक मार कर उड़ा देते और घिसा-पिटा ताना मारते हैं कि अँग्रेजी ने तुम्हारा दिमाग खराब कर दिया है। दूसरे वह इसलिए भी चुप थी कि जेठ-बहू दोनों ही एक-दूसरे को लेकर पूर्वाग्रही थे। दोनों ही अलग-अलग ध्रुवों पर खड़े दिखते थे। पंडित देवीशरण मिश्र के चरित्र, नीयत और विश्वसनीयता को लेकर विद्यालय की अध्यापिका और अध्यापकगण प्राय: बातें बनाते रहे हैं कि पंडित जी हैं भी कुछ ज्यादा ही रंगीन मिज़ाज। यह बात इस शहर का हर आदमी जानता है। लेकिन क्योंकि वे ऊपर उठकर विशिष्ट व्यक्तियों में आ गए हैं, अत: कोई कुछ कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाता।

जेठ भी बहू को सामने देखते ही परेशान और असहज हो उठते हैं। एक तो वह काफी पढ़ी-लिखी है और तर्क से बात करती है और ऐसी ही सामने वाले से अपेक्षा भी करती है। यह बात पंडित जी को उखाड़ देती है। दूसरे वह अपने विद्यालय की प्रधानाचार्य भी है। शहर के लोगों में उसकी प्रतिष्ठा है। पंडित जी को वह सदैव अपने पौरुष एवं पांडित्य के लिए एक चुनौती जैसी लगती है। अत: वे उसे उपदेशात्मक व डाट-डपट वाली शैली में नार्योचित, मर्यादित एवं सांस्कारिक आचरण करने के दिशा-निर्देश जारी करते रहते हैं।

पंडित जी ने चाय का कप रखते हुए फिर पहल की, ''एक बात तो मेरी समझ में नहीं आ रही कि जब तुम लोग मेरे कार्यों से घृणा करते हो, मेरे देवीमाता मंदिर को टकसाल कहते हो, मेरी धर्म की कमाई को लूट-खसोट की कमाई कहते हो, मेरे सारे परोपकारी, कल्याणकारी क्रिया-कलापों व फैले तामझाम को रुपये बनाने का कारखाना कहते हो, मेरा लोगों से चंदा लेना तुम्हें

धार्मिक ब्लैकमेलिंग लगती है– तो अब इस सबको हड़पने की, इस पर अपना आधिपत्य कायम करने की, मुझे यानी अपने बड़े भाई, ज्येष्ठ सुपुत्र को यूँ सड़क पर ला खड़ा करने की क्या आवश्यकता आन पड़ी? जबकि तुम दोनों पति–पत्नी अपना विद्यालय चला रहे हो। प्रतिष्ठा भी अर्जित कर रहे हो। मेरे साथ जब लोगों में तुम्हारी भी अच्छाइयों की चर्चा होती है तो मालूम है तुम्हें मेरा सीना गर्व से फूल जाता है। मुझे लगता है कोई दुश्मन, कोई हमारा घोर शत्रु हमारे बीच दूरी बढ़ाना चाहते हैं। और तुम लोग पढ़े–लिखे होकर भी असुरों, मलेच्छों की भाषा का प्रयोग करते हो। कह सकता है कोई तुम्हारी बातें सुनकर कि तुम किसी ब्राह्मण कुल या भारतीय संस्कृति के वाहक हो सकते हो?'' पंडित जी ने रुककर पान को जीभ से इधर–उधर सरकाया। स्वभावानुसार सभी के चेहरों पर अपने कहे शब्दों की प्रतिक्रिया पढ़ी और कहना जारी रखा, ''अरे भलेमानसो! सोचो जरा कि तुम्हारे बेटे ने कंप्यूटर में इंजीनियरिंग कर ली है। उसे भी मैं येन–केन प्रकारेण किसी अच्छे सरकारी पद पर लगवा दूँगा। मैं तुमसे दूर नहीं हूँ। मेरे से जो भी सहायता चाहिए एक बार संकेत मात्र करें— मैं उपस्थित हूँ। मैं तो तुम्हारे विद्यालय की आर्थिक सहायता करना चाहता हूँ। निस्संदेह तुम्हारी इस पाश्चात्य शिक्षा पद्धति से मैं सर्वदा–सर्वथा असहमत रहा हूँ। मैंने तो तुम्हें कई बार पहले भी कहा है कि अपने विद्यालय की एक प्रबंधन समिति का गठन करो। सदस्यों के नाम मैं सुझा दूँगा। उन सदस्यों में कोई भी तुम्हारे कार्य में हस्तक्षेप नहीं करेगा। न ही कभी हिसाब–किताब आदि के लिए पूछताछ करेगा। उल्टे जितनी राशि तुम्हें चाहिए वे देते रहेंगे। उनका नाम आना चाहिए बस। विद्यालय तुम्हारी ही संपत्ति रहेगा।'' संभवत: यह एक और प्रयास था पंडित जी का मंदिर के हक या उस विषय से उनका ध्यान हटाने का। उन्होंने तरकश से एक तीर और निकाला और छोड़ दिया, ''मैं तो बल्कि ऊपर प्रयास करना चाहता हूँ कि इस वर्ष का सर्वश्रेष्ठ अध्यापक का राज्य पुरस्कार आप दोनों को ही मिले। इससे विद्यालय की प्रतिष्ठा के साथ–साथ आप लोगों की प्रतिष्ठा में भी चार चाँद लग जाएँगे। आज इस संसार में नैतिक–अनैतिक कुछ नहीं रह गया है। येन–केन प्रकारेण समाज में अपना स्थान बनाकर एक बार नगर के सभी क्रिया–कलापों के केंद्र में आ जाओ फिर देखो कैसे स्वत: ही दो–चार आठ सोलह के हिसाब से हर क्षेत्र में आप प्रगति करते जाते हो। कछुए की गति से आप जीवित तो रह सकते हो, कहीं पहुँच नहीं पाओगे।'' कहकर पंडित जी ने चेहरे पर पटका रगड़ा, रगड़ से काला पड़ गया पटका

देखा, बालों में अँगुलियाँ फिराईं और कुछ आश्वस्त दिखने लगे।

जब वे फिर कुछ कहने को आगे की ओर हुए तो बहू ने कुर्सी आगे खींच ली और साड़ी का पल्लू सिर से उतारकर कंधों पर डालती हुई बोली, ''भाईसाहब! खरगोश की तरह तो हम भी दौड़ना चाहते हैं लेकिन अपनी उर्जा, अपने प्रयासों से । प्रयास भी राइट मींस, राईट एंड वाले। यही हमारे स्कूल का लोगो भी है। क्योंकि मंदिर की जगह हमारी है– उस जगह पर हमारा भी अधिकार है इसलिए अपने अधिकारों के लिए लड़ना कोई गलत 'डीड' यानी धर्म विरुद्ध कार्य नहीं है। और फिर नई कंडीशंस में स्कूल को लेकर हमारी भी कुछ प्रोपोजल्स हैं, एंबीशंस हैं जिन्हें हम हमारे हिस्से की मंदिर वाली जगह में फुलफिल कर सकते हैं।''

वह पूरे आत्मविश्वास के साथ बोल रही थी। उसने और सावधानीपूर्वक शब्दों का चयन किया कि अब एक भी शब्द अँग्रेजी का न आने पाए, ''और भाईसाहब! हमें पुरस्कारों आदि की, दिखावों या विज्ञप्तियों की कतई जरूरत नहीं है। हम जो स्कूल चला रहे हैं वह हम अपने लिए चला रहे हैं। अपनी रोजी-रोटी के लिए चला रहे हैं। यह बात अलग है कि हमारे इस कार्य में किसान के फसल उगाने की तरह जनकल्याण निहित है। जनकल्याण हमारी क्रियाओं में रहना चाहिए विज्ञप्तियों में नहीं। जो लोग जनकल्याण का पुरस्कार चाहते हैं वे भटके बहके सैल्फ सेंटर्ड लोग होते हैं। उनके लिए पुरस्कारों की कमी भी नहीं है। कहीं-न-कहीं से जैसे-तैसे वे लेते ही रहते हैं।'' कहकर वह मेज पर से कप उठाने लगी और माँ से पूछा, ''तकिया ला दूँ माँ जी। आप लेट जाएँ। थक गए होंगे बैठे-बैठे।''

पंडित जी सकपकाते रहे और कभी हिकारत से भाई की ओर देख रहे थे और कभी याचनापूर्ण दृष्टि से माँ की ओर कि ये क्या हो रहा है? बहू को बीच में बोलने की क्या आवश्यकता आन पड़ी? आप लोग इसे समझाते क्यों नहीं कि पुरुषों की बातचीत में नारी को यूँ नहीं बोलना चाहिए। लेकिन वे यह भी जानते हैं कि यह मात्र बहू ही नहीं, शहर के प्रतिष्ठित विद्यालय की प्राधानाचार्य भी है जो अपनी निष्ठा, विश्वसनीयता, सदस्यता और दृढ़निश्चयों के लिए विद्यार्थियों में ही नहीं नागरिकों में भी चर्चा में रहती है। पंडित जी क्योंकि हर वर्ष जनकल्याण कार्यों के लिए अपनी ही किसी-न-किसी संस्था द्वारा पुरस्कृत होते रहते हैं अत: बहू के व्यंग्य-बाणों से छटपटा भी रहे थे और धीर-गंभीर बने रहने का प्रयास भी कर रहे थे।

छोटे ने गर्व से अपनी पत्नी की ओर देखा जो सदैव उसके अधूरेपन को पूरा करती है। उसे महसूस हो रहा था कि इतनी अर्थपूर्ण बातें वह नहीं कह पाता।

माँ 'हरे राम' कहकर कुछ लेटने की मुद्रा में हुई तो उसके घुटनों में चटक की आवाज़ हुई। कुछ देर चुप्पी के बाद पंडित जी ने एक पान और मुँह में रखा और फिर कुछ निश्चय से बोले, "अब आप ध्यान से सुनो। मैंने कहा है ध्यान से सुनो! क्योंकि इसी में तुम्हारी भलाई है। इसी में अपने कुटुंब का कल्याण निहित है। मंदिर तो तुम्हें मिलेगा नहीं। पंचायत बुलाओ या कोर्ट में जाओ। यह अध्याय मेरी ओर से बंद समझो। तुम खुला रखना चाहते हो तो रखो। बाकी ऐसी स्थिति आएगी नहीं। मैं पहले ही कुछ इलाज कर दूँगा। करना पड़ेगा भाई! देवीमाता के लिए तो मुझे अपने प्राणों की भी आहुति देनी पड़े तो मैं दूँगा। मैं ही क्या, शहर का बच्चा-बच्चा आज देवीमाता के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर गर्व का अनुभव करेगा...अच्छा माँ। मैं चलता हूँ। मंदिर से होता हुआ घर जाऊँगा। देवीमाता से तुम सबकी कुशलता की और बहू के लिए सद्‌बुद्धि की कामना करूँगा।" कहकर चल पड़े पंडित जी। उनका जबड़ा भिंचा हुआ था और आँखें भयंकर रूप से लाल हो गई थीं। उनके होंठ हिल रहे थे जैसे कह रहे हो-बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा अब यहु मरनिहार मा साँचा।

चलते-चलते वे दरवाजे में से फिर मुड़े और काँपती आवाज़ में हाथ लहराते हुए बोलने लगे, "शहर में और भी पंडे-पुजारी हैं। मंदिरों में मूर्तियाँ सजाए बैठे हैं ओर मेरी बराबरी करने के लिए अंट-संट प्रचार करते रहते हैं। लेकिन मैं पूछता हूँ– आ पाया है आज तक कोई मेरे बराबर। यह सब देवीमाता का प्रताप है। उनकी तरह तुम्हें भी मेरी शक्ति का, मेरी जनशक्ति का यानी फौज का अनुमान नहीं है। मेरे एक संकेत मात्र से पूरे शहर में अराजकता फैल सकती है। समझे! कहकर चल पड़े पंडित जी लेकिन फिर रुक गए। इस बार उन्हें बहू ने रोका था। वह एकदम उनके सामने तनकर खड़ी थी, "फौज तो जेठ जी हमारे पास भी है लेकिन कुछ रचनात्मक करने के लिए। आप अपनी फौज से निर्माण पर चोट करवाते हैं और हम अपनी फौज को चोट से निर्माण करना सिखाते हैं। हमारी फौज ध्वंस या तोड़-फोड़ के लिए नहीं है– स्वस्थ एवं सकारात्मक करने के लिए है। यूँ भी इतना अंतर तो स्वाभाविक भी है, जेठ जी! आप अपनी फौज से अपेक्षा करते हैं कि वह आपके सामने पहले बैठे, फिर आँखें भींचे और फिर आप जो भी कहें आँखें भींचे-भींचे ही उसे अक्षरतः स्वीकारे। लेकिन हम प्रयास

करते हैं कि हमारी फौज हमारे सामने तनकर ख़ड़ी होना सीखे, हमसे आँखों में आँखें डालकर हमारे सवालों का उत्तर दे, हमसे सवाल करे।'' फुँफकारते हुए चलने लगे पंडित जी तो बहू ने फिर उन्हें रोका, ''एक बात और जेठ जी! माँ और मैं– हम दोनों ही आपके लिए मात्र महिलाएँ हैं– जिनमें से एक को आप ममता और श्रद्धा की भीगी भावुकता से और दूसरी को तिरस्कार की सूखी मार से फ्राम दी वैरी बिगनिंग हराते आ रहे हैं। लेकिन अब ऐसा नहीं होने दिया जाएगा। अब हारने की टर्न आपकी है।''

जोर से दे मारा पंडित जी ने अपना पटका दूसरी हथेली पर और पाँव पटकते हुए बाहर निकल गए। 'इतनी बड़ी चुनौती! इतना अपमान! उफ! रूप सरस्वती का तुम धार–दे सुबुद्धि ऋषि मुनि उबार... सोहे अस्त्र और त्रिशूला, जाते उठत शत्रु हिय झूला। नगर कोट में तुम्हीं विराजत। तिंहू लोक में डंका बाजत... आसा तृष्णा निबट सतावैं... रिपु मूर्ख मोहि अति डरावैं। शत्रु नाश कीजै महारानी सुमिरों इक चित्त तुम्हें भवानी...।' पंडित जी के होंठ और कदम एक–सी तीव्रता पकड़े हुए थे।

मंदिर का प्रवेशद्वार बंद हो चुका था। पंडित देवीशरण मिश्र को घंटी बजानी पड़ी। कुछ समय पश्चात् सेवक ने आकर छोटा द्वार खोला तो उसे अप्रत्याशित रूप से गालियों और झिड़कियों का सामना करना पड़ा। द्वार को भी उन्होंने सेवक के साथ पीछे धक्का दिया और फुँफकारते हुए मंदिर के संगमरमर के प्रांगण में सजायाफ्ता फौजी की तरह इधर–उधर तेज–तेज चलने लगे। उनकी साँस छूटने से फुंकार की ध्वनि पैदा हो रही थी। वे बार–बार कभी पाँव पटक रहे थे और पटके को अपनी गर्दन पर पूरी तरह खींच रहे थे– 'रिपु मूर्ख मोहि अति डरावैं। शत्रु नाश कीजै महारानी...।' सरियों के छोटे से द्वार के बीच में से दिखती मंदिर के लाल प्रकाश से लाल जलती हुई आँखों वाली देवीमाता की ओर देखकर उनके होंठ स्वत: ही फड़फड़ा रहे थे– शत्रु नाश कीजै महारानी...।

कुछ दूरी पर सामने ही वृद्धाश्रम में पड़े मात्र दो वृद्धों– एक बूढ़ा, एक बुढ़िया रह–रहकर हाय राम, हाय राम उठा ले– कहकर कराह रहे थे। सेवक फ्रिज से पानी ले आया। वह डरा हुआ था। पंडित जी गटगट कई गिलास एक साथ पी गए। फिर कुछ शांत स्वर में बोले– ''सुनो, इन बूढ़े–बुढ़िया को जाकर बोलो कि चुपचाप पड़े रहें। चुप नहीं होते तो इन्हें बाहर सड़क पर फेंक दो।'' इतना अपमान! पिताजी का भी अपमान! ऊफ्फ! धीरे–धीरे पीपल के पेड़ के

नीचे पहुँच गए। पीपल और कुआँ— दोनों ही पिताजी की शरणस्थली। अंधा कुआँ और यह बुढ़ाता पीपल— पिताजी की तमाम कारगुजारियों के चश्मदीद गवाह। माँ कहती है कि उसकी उम्र के किसी बूढ़े से पूछ कि वह क्या था— क्या मैं सब जानता नहीं या ये दोनों नहीं जानते जहाँ मेरा भी अधिकतर बचपन गुजरा है। ये कुआँ और पीपल ही सुना देंगे उनकी कहानी तो।

ये आज़ादी से कुछ पहले की बातें हैं। वे अपने नशेड़ी दोस्तों के साथ यहाँ पड़े रहते थे। तब यहाँ आबादी नहीं थी। यह रास्ता तो था जो स्टेशन को शहर से मिलाता था— लेकिन जंगल जैसा था। सुबह-शाम ही यह मार्ग कुछ व्यस्त होता था। पंडित जी के पास काम करने को कुछ नहीं था। ख़ास मौकों पर ही कभी-कभार उन्हें पोथी-पतरे पढ़ने-देखने के दो-चार आने मिल पाते थे। वे विद्वान भी नहीं थे। बस ब्राह्मण थे। 'भूखों मरना ऐश करनी' और 'कोऊ नृप भये हमें का हानि' उनके मूलमंत्र थे। उन्हें अफीम की लत लग गई थी। जिसके लिए वे थाली-लोटा स्तर की चोरी करने लगे थे। एक-दो बार उनकी पिटाई भी हुई बताते हैं। शहर में एक सख्त कोतवाल आ गया था। वह कई बार चेतावनी देकर गया था 'माताशरण पंडत! या तो अपने-आपको सुधार ले नहीं तो तू हवालात की हवा खाएगा।' और एक दिन यही हुआ भी। पंडित माताशरण को साथ वाली गली में से किसी ने गिलास चुराते हुए देख लिया था और पकड़ा गया। इस बार वह सीधा हवालात में था।

जिस दिन उसकी पेशी थी उसी दिन जज के सामने कुछ क्रांतिकारियों की भी सुनवाई थी। अँग्रेज जज सुनवाई कर रहा था। आज़ादी के दीवानों ने नारे लगाने शुरू कर दिए— वंदे मातरम्। वंदे मातरम्।। पता नहीं कैसे जोश उमड़ा— पंडित माताशरण भी हाथ उठाकर उनकी आवाज़ में आवाज मिलाने लगे— वंदे मातरम् वंदे मातरम्। गुस्साए जज ने क्रांतिकारियों के साथ उसे भी न्यायालय की अवमानना के अपराध में साढ़े पाँच वर्ष कारावास की सज़ा सुना दी।

एक-डेढ़ वर्ष बीता होगा कि देश आज़ाद हो गया। पंडित जी भी जेल से छूटकर आ गए। वे सीधे इस पीपल के नीचे पहुँचे। न कोई संगी-साथी मिला, न भाँग, न अफीम। किसी ने भी उसकी कुशलक्षेम तक नहीं पूछी। न किसी ने उससे रामा करिसनी की। साँझ के धुँधलके में चुपचाप घर में जा पड़े। तब यह देवीशरण दस-बारह साल का रहा होगा। पत्नी अत्यधिक मेहनत और टी.बी. के कारण मृत्यु को प्राप्त हो चुकी थी। सो पंडित जी ने कुछ ही दिनों बाद दूसरा ब्याह करवा लिया। नई ब्याहता ने एक लड़के को जन्म दिया यानी देवीशरण

के ये सौतले माँ और भाई।

फिर अचानक एक दिन शहर को मालूम हुआ कि किसी बच्चे के स्वप्न में देवीमाता आई हैं। उसने बच्चे को कहा कि मैं रेलवे लाइन के बाहरले सिगनलों के पास पड़े उजाड़ में प्रकट हो चुकी हूँ। यदि मुझे वहाँ पंडित माताशरण स्वयं अपने हाथों से उठाकर पीपल के पास मंदिर का निर्माण करवाकर उसमें प्रतिष्ठित करें तो इसमें पूरे नगर का कल्याण है। लोगों ने उस बच्चे को तो नहीं ढूँढ़ा जिसके स्वप्न में देवीमाता आई थीं अलबत्ता पीपल के साथ मंदिर बनाने के लिए तन और धन से अपना सहयोग दे दिया था। लाल बालू–पत्थर की समतल शिला पर एक ओर उत्कीर्ण की हुई देवीमाता जैसी दिखने वाली मूर्ति को लोगों ने धीरे–धीरे पूजना शुरू कर दिया था।

कुछ दिनों बाद पंडित माताशरण ने श्री देवीमाता रामलीला क्लब बनाया और रामलीला करनी शुरू कर दी। माताशरण परिवार के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुआ। इससे माताशरण को सामाजिक प्रतिष्ठा भी मिली और दायरा भी बढ़ा। अब शराब का नशा उसे सहज उपलब्ध था इसलिए भाँग आदि वह छोड़ चुका था। क्योंकि वे स्वयं ही प्रोड्यूसर एवं डायरेक्टर थे अतः अपनी रामलीला में एक से बढ़कर एक कमसिन नर्तक लड़कों को लाते थे जो चटक–मटक और नृत्य में रूपसी–नर्तकियों को भी मात देते थे। पंडित जी नृत्य की एक शिफ़्ट दोपहर के बाद घर की बैठक में लगवाने लगे। इस शिफ़्ट में शहर के बिगडैल रईसजादे आते और उनके कामुक–उत्तेजक गानों और भाव–भंगिमाओं पर शराब के जाम टकराते हुए दिल खोलकर पैसा लुटाते। पंडित माताशरण की चाँदी भी थी और वाहवाही भी। एक बार तो पंडित जी इन रईसजादों के उकसावे में आकर एक नर्तकी को ही ले आए थे। लेकिन शहर में इस बात का जबर्दस्त विरोध हुआ और उसे रावण मरने से पहले ही भागना पड़ा।

सेवक और पानी ले आया। बूढ़ा–बुढ़िया का कराहना जारी था। सेवक ने स्पष्टीकरण दिया कि वे लगभग बीमार हैं। वहाँ मच्छर भी अधिक हैं। सो नहीं पा रहे हैं। पंडित जी ने 'मरने दो' कहा और अंधे कुएँ के पास जा खड़े हुए आगे की कहानी सुनने के लिए।

धीरे–धीरे मंदिर प्रगति करने लगा। पंडित माताशरण की रामलीला की लोकप्रियता भी बढ़ने लगी। शेरो–शायरी और कविताओं में भी उनकी रुचि हो गई थी। ब्याह में पढ़े जाने वाले सेहरे वे स्वयं लिखने लगे थे और होली, दिवाली या पन्द्रह अगस्त के अवसर पर वे गीत या कविता लिखकर अखबारों

में भेजने लगे थे। शेष उनका सारा समय अन्य शायरों के फड़फडाते हुए शेर याद करने में बीतता था। एक दिन गलत दारू पीने से उनकी मृत्यु हो गई। देवीशरण जो कि उस समय प्रभाकर कर चुका था और सत्रह–अठारह वर्ष का था– लोगों को अपने पिताजी की शोक–सभा करते हुए देख रहा था जिसमें कि उन्हें स्वतंत्रता सेनानी, जनचेतना जागरण का महानायक, धर्म का रखवाला, कवि शायर और उच्च कोटि का मंच कलाकार स्थापित किया जा रहा था।

लेकिन मालूम नहीं क्यों यह मंदिर और इसकी सारी जगह वे अपनी पत्नी यानी देवीशरण की सौतेली माँ के नाम कर गए थे। आज वह अपना हक माँग रही है।

'पूरा ना भी दूँ– आधा तो उसे देना ही पड़ेगा। पंचायत होगी तो वहाँ भी छोटे की ही पसंद पूछी जाएगी।' सोचते हुए पंडित जी सीधे मंदिर के गर्भगृह में गए तथा एग्जास्ट फैन चलाकर कुर्सी में धँस गए। उनके सामने वाली दीवार पर धनुष–बाण, गदा और फरसा टँगे थे। उसे ध्यान आया कि पिताजी परशुराम के रोल में बहुत जँचते थे। उनके मंच पर गुस्से से थरथराते शरीर के साथ प्रगट होते ही दर्शक तालियाँ बजानी शुरू कर देते थे। यही परसा वे हवा में लहरा–लहराकर लक्ष्मण को बालक कहकर वहाँ से चले जाने का आदेश देते थे। 'सहस्रबाहु भुज छेद निहारा, परशु बिलोकु महीप कुमारा' या 'बाल बिलोकी बहुत मैं बाँचा– अब यहु मरनिहार मा साँचा' या 'मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हें–समर जग्य जप कोटि कीन्हे' आदि जोशीले शब्दों को वे बड़े ही शुद्ध उच्चारित करते थे।

पंडित देवीशरण ने 'अब यहु मरनिहार मा साँचा' को दोहराते हुए जेब से मोबाइल निकालकर कहीं मिलाया। उनके चेहरे पर बिल्कुल परशुराम जैसे ही तनाव और अनिश्चय के भाव थे। उन्होंने मोबाइल पर आदेश दिया 'यह काम रात को ही हो जाना चाहिए।'

पान तंबाकू सिगरेट सब खत्म हो चुके थे। स्वभावानुसार बार–बार उनका हाथ खाली जेबों पर जा रहा था। वे उठकर बाहर आ गए। पान लाने के लिए सेवक को भेजने की बजाय 'अभी आ रहा हूँ' कहकर स्वयं ही बाहर निकल गए।

वे एम.एस. रोड पर मुड़ गए जहाँ काफी आगे जाकर दुकानें खुली मिलने की उम्मीद थी। वे बहुत अधिक गर्मी महसूस कर रहे थे और उद्विग्नता के कारण भी उन्हें पसीना आए जा रहा था। अतः वे अब टहलने की तरह चलने

लगे। सड़क दूर तक खाली पड़ी थी। उनकी उद्विग्नता और बढ़ गई जब उन्होंने सड़क के साथ गड़ी संकेत पट्टिका पर 'पंडित माताशरण मार्ग लिखा देखा।' लोग बोलने तक में कंजूसी करने लगे हैं। अगर वे इसे पंडित ना सही, माताशरण रोड ही कहते रहते तो क्या फर्क पड़ता था। एम.एस.रोड! हूँ। कुछ वर्षों बाद तो शहर वाले भूल ही जाएँगे कि माताशरण नाम का कोई आदमी भी कभी था इस शहर में। जिसने भी शुरू में एम.एस. कहा होगा अगर मुझे मिल जाए तो जीभ काट दूँ उसकी! क्या होगा इतिहास का? इतिहास-बोध का? इतिहास के साथ ऐसा मजाक? यह सब मलेच्छों की, राष्ट्रद्रोहियों की चालें हैं।

उन्हें एकदम कूदकर फुटपाथ पर चढ़ना पड़ा क्योंकि एक कार बिल्कुल उनके बराबर फुटपाथ से सटकर आ रुकी थी। कार वाले ने शीशा नीचा करके अपना चेहरा बाहर निकाला। इससे पहले कि पंडित देवीशरण मिश्र हाथ जोड़कर अभिवादन करते वह पहले ही बोल पड़ा, ''आज सड़कों पर कैसे पंडत? ठीक तो है?'' सभी शब्दों का उच्चारण वह काफी मोटा कर रहा था- अपने थोथले व सामान्य से कुछ बड़े चेहरे के अनुरूप!' प' को तो वह बिल्कुल 'फ' की ही तरह बोल रहा था। उसने जल्दी सिर अंदर कर लिया जैसे कि पंडित के उत्तर की कोई जिज्ञासा न हो। दूसरी ओर की खिड़की का लॉक डैशबोर्ड में लगे रिमोट से खोलते हुए कहा, ''आजा। इधर आ जा।''

इधर से उधर जाने के समय में ही पंडित देवीशरण मिश्र की आँखों के सामने इसके साथ हुई आज तक की तमाम मुलाकातें घूम गईं। इनमें से अधिकतर बचपन की और फिर बार-बार मंदिर के लिए चंदा लेने जाने की थी। लेकिन एक मुलाकात ऐसी थी जिसके पश्चात् देवीशरण इससे मिलते हुए हीनग्रंथि का शिकार होने के कारण अब हिचकने और डरने भी लगा है। दो वर्ष पहले इसने अपने 'देवीमाता राईस' का ब्रांड बदलकर डी.एम. राईस बना लिया है। पूरे विश्व में अब इस ब्रांड का राईस एक्सपोर्ट होता है। इनके बोरी-कट्टों पर नीले या जामुनी छापे से श्री देवीशरण माता ब्रांड चावल लिखा होता था और बीच में बैठी हुई अष्टभुजा की तस्वीर छपी होती थी। दो वर्ष पहले इन्होंने टाट की बोरियों-कट्टों की जगह आकर्षक पॉलीथीन की थैलियों पर डी.एम. राईस छपवाकर एक सुंदर महिला मॉडल की तस्वीर के साथ बाजार में उतारा और बाजार पर कब्जा कर लिया।

पंडित देवीशरण को यह बात अखरी। वह अपने दो-चार मित्रों के साथ सेठ से बात करने पहुँच गया था। वहाँ डी.एम. कार्यालय में इसकी काफ़ी

फजीहत हुई थी। इसी सेठ ने बड़े ही गुस्से, उपेक्षा और उपहास से कहा था, 'अब अपने ब्रांडों के नाम भी तुमसे पूछकर रखेंगे क्या हम? अपनी कंपनियों से कौन-सा व्यवसाय कराएँ– यह भी अब तुझसे पूछा करेंगे हम? हँ! ला तुझे बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स का आनरेरी मेंबर बना दूँ! फिर तू हमें बताते रहना कि हमारी किस कंपनी या किस प्रोडक्ट का क्या नाम होना चाहिए-क्या ब्रांड होना चाहिए-ठीक है न? ये देवीमाता राईस भी हमने तेरे बाप से पूछकर रखा था क्या? हाँ! जो तुझे डी.एम. ब्रांड लांच करने से पहले पूछते? अब फंडत! चुपचाप तू अपना काम करता रह। कोई जरूरत हो तो बता! चल अब चल! जा मंदिर में जाकर घंटी बजा।'

अब वही सेठ इसके सामने था। देवीशरण चुपचाप सीट पर जा बैठे। ना-हाँ कुछ नहीं। बिल्कुल एक सेवक, एक भक्त, एक शिष्य या एक नौकर की तरह सिमटकर बैठ गए पंडित जी। उन्हें यूँ बैठे देखकर कोई भी हैरान हो सकता था कि इतने डील-डौल वाले पंडित जी केंचुए की तरह इस तरह सिकुड़कर गठरी भर भी हो सकते हैं? वह मूर्ति की तरह या कहानियों के दानव की मक्खी की तरह चिपक गया था सीट से।

गाड़ी में एयरकंडीशनर चल रहा था लेकिन देवीशरण का पसीना चू रहा था– ठंडा पसीना। लगता था जैसे उन्हें बाहर की गर्मी से राहत मिलने की बजाय और परेशानी हो रही थी। वे उस घड़ी को कोस रहे थे जब मंदिर के मुख्य द्वार से पान लाने निकले थे।

डी.एम. सेठ ने साथ रखी शराब की बोतल से एक पैग बनाया और सोडा डालकर पंडित जी की ओर बढ़ा दिया। गिलास में शराब डालते हुए उसके हाथ बहक रहे थे जैसे कि उसने पहले ही काफी पी रखी हो। पंडित जी ने हाथ जोड़ दिए, ''नहीं सेठ जी। आप लो। आज मैं नहीं ले सकता।'' बड़ी हिम्मत करके कहा देवीशरण ने।

पता नहीं क्या हुआ कि इतने से उबाल खा गया डी.एम. सेठ, ''फंडत! मैं सब कुछ बर्दाश्त कर सकता हूँ...पर इसकी...।'' उसने चुटकी से गिलास पर टन्न-टन्न की, ''इसकी तौहीन बर्दाश्त नहीं कर सकता। अब हम फद्दू हैं क्या...फद्दू हैं क्या हम जो तेरे पास आकर रुके? तुझे इस सीट पर बिठाया। मालूम है तुझे तू किस सीट पर बैठा है? जिस पर मिनिस्टर भी बैठने की हिम्मत नहीं कर सकता। क्या है तू... नॉनसेंस... है क्या तू... तुझे पता है तू किसके साथ बैठा है? ना, हम फद्दू हैं क्या? तेरी हिम्मत कैसे हुई ना करने

की ? अच्छा चल। कोई बात नहीं...माफ किया। आखिर तू प्राडक्ट तो हमारी ही है। ले जरूरत हो तो सोडा और ले लो। चल फटाफट कर।''

पंडित ने गिलास पकड़ा और बहू के शब्दों की तरह गटगट उड़ेल गए भीतर।

कहाँ गलत समय पर टकराया है कमबख्त ? खीझते हुए सोचने लगे पंडित जी 'इसकी तो आदत है आधी रात तक यूँ ही होटलों, क्लबों, सड़कों पर भटकने की। मस्ती मारने की। रात को कहीं भी सड़क पर खड़ी दिख सकती है इसकी कार। इसका देश के ऊपर के सेठों में नाम आने लगा है। लेकिन एक नंबर का एय्याश। शहर में और शहर के बाहर इसकी कई राईस मिलें हैं। हजारों तो वर्कर ही हैं इसकी मिलों में। अफसर अलग जिनके सबके पास इसकी दी हुई कारें हैं।'

''अबे कहाँ खो गया ? मेरा तो बना फंडत। सोडा कम'' नशे में बोलने लगा सेठ, ''बड़ी चीज़ था तेरा बाप भी... लेकिन हमने उसे नशेड़ी से फ्रीडम फाइटर बना दिया। था चीज़... ये मानना पड़ेगा। अबे तू भी तो भाग-भागकर हमारे लिए कभी दारू, कभी पान, कभी सिगरेट लाया करता था जब वो तुम्हारे पूज्य पिता जी उन छोकरों को...अबे उन रामलीला वाले छोकरों को...तू तो ऐसे बैठा है जैसे हम फद्दू हैं...बोल रहे हैं और तुझे कुछ याद नहीं। अबे शर्म आ रही है क्या वो सब याद करने में ? खैर बेटा ! तू तब भी फूरा चालू था और हम फूरे फद्दू। ना बाकी पैसे कभी हमने माँगे और न कभी तूने इंसानियत दिखाई। अच्छा छोड़। जब तेरा बाप ही ऐसा था तेरा क्या कसूर ? तू तो बच्चा था...वो हमारी ऐश करवाता था हम उसकी... अच्छा छोड़... ले सोडा खुद डाल ले। कहकर सेठ ने गिलास पंडित की ओर बढ़ा दिया। लेकिन पंडित का तो उसके सिर पर जोर से अपना सिर मारकर भाग जाने का मन कर रहा था। कहाँ यह पैग दे रहा है ! असुर ! मलेच्छ ! लेकिन ना करने का भी उन्हें कोई फायदा नज़र नहीं आ रहा था क्योंकि वह फिर कह रहा था, ''अब बुरे दिनों को याद ना करके आज के अच्छे दिनों के नाम भी ले, फंडत ! घबरा नहीं हम तेरे साथ हैं। सुना है तेरा भाई और उसकी बहू अच्छा कमा रहे हैं। उन्हीं के नेक नाम की ले ले... अबे हम फद्दू हैं क्या...हैं ?'' कहते हुए उसने बहकते हाथों से रिमोट का बटन दबा दिया। खिड़की खुलते ही उसने पंडित देवीशरण को बाहर धक्का दे दिया। गिलास वाला पैग भी खिड़की में से उन्हीं पर उछाल दिया, ''चल भाग...जैस हम फद्दू हैं जो तुझे पाल रहे हैं। और सुन बे ! कान खोलकर सुन...हम वही करते हैं जो हमें सुहाता है और उसी की पीठ पर हाथ फेरते हैं जो हमारे अनुसार सब कुछ

करता है...तू हमें फद्दू समझता है...इन तिलक-विलकों से फद्दू डरते होंगे...हम नहीं...इसके साथ ही फट से खिड़की बंद हो गई और सर्र से कार चली गई।''

खून का घूँट पी गए पंडित जी। उनके मुँह से केवल इतना ही निकला 'असुर! मलेच्छ!' पटका दूसरे हाथ की हथेली पर जोर से मारते हुए बुड़बुड़ाए 'कहाँ मर गया हमारा परशुराम? क्यों नहीं करवट लेता। वह हमारे भीतर? अगर अब यहाँ मेरा भाई होता...यहाँ इसी समय इसकी मुड़ी मरोड़ देता। इसको कार से बाहर खींचकर सड़क पर घसीटता। और बहू... वह तो इस साले को ऐसा पाठ पढ़ाती कि यह अपनी सेठाई भूल जाता। वह तो किसी से भी नहीं डरती। लेकिन मैं...मैं... मेमना क्यों बन जाता हूँ ऐसे लोगों के सामने। सही कहती है वह, मनुष्य के भीतर का खोट ही उसे डरपोक बनाता है...भाई इसका दिया नहीं खा रहा...इसलिए वह इसका ऐसा रिमोट दबाता कि ... भाई... वापिस भाग लिये पंडित जी मंदिर की ओर...भूल गए थे सब पान तंबाकू सिगरेट। ''घर वाले जूते मारेंगे तो घर के भीतर तो मारेंगे। यूँ इस सेठ की तरह सड़क पर धक्का नहीं देंगे।'' चिंता और अपमान से पसीना-पसीना हुए भाग रहे थे पंडित देवीशरण मिश्र।

जब वे मंदिर के गर्भग्रह में पहुँचे तो दो बजने को थे। उन्होंने एग्जास्ट फैन भी नहीं चलाया। जेब से मोबाइल निकालकर नंबर मिलाने लगे। वे बदहवासी में नंबर भी ठीक से नहीं मिला पा रहे थे। नंबर मिलने पर उन्होंने जल्दी-जल्दी कहा– वो आदेश स्थगित हाँ-हाँ मैं कह रहा हूँ। मैं पंडित देवीशरण मिश्र...हाँ-हाँ मंदिर के गर्भगृह से बोल रहा हूँ...हमारी बहू को और मेरे भाई को कुछ नहीं होना चाहिए। ठीक है कल बात करेंगे। फोन रखकर उन्होंने पसीना पोंछा और एक ओर पड़ी रामलीला के कपड़ों और सामान से भरी पेटियों पर धम्म से पड़ गए। उनके सामने लकड़ी भूसे से बने तीर, तलवार, गदे टँगे थे और टँगा था भगवान परशुराम का यानी उनके बाप का गत्ते का बना फरमा जिस पर चिपकी चाँदी जैसी सफेद पन्नी कई जगह से फट चुकी थी। उन्होंने आँखें बंद करने की कोशिश की लेकिन कर नहीं पाए। रामचरितमानस और रामायण के पुराने संस्करणों की लाल कपड़े की गठरी को उन्होंने सिरहाने की तरह सिर के नीचे लगाया और उनके होंठ तीव्र गति से फिर फटकने लगे, ''आसा तृष्णा निपट सतावै...रिपु मूरख मोहि अति डरावै...शत्रु नाश कीजै महारानी...सुमिरो इक चित्त तुम्हें भवानी।।''

(प्रकाशित : 'पल प्रतिपल', जुलाई-सितंबर 2001)

●

मुनादियों के पीछे

जैसे ही मैं घर से बाहर निकला, मजनूं ने मुझे रुकने का इशारा किया। मैंने घड़ी देखी। मेरे पास एक मिनट भी नहीं था। सुबह जब सारा ध्यान घड़ी की सूइयों, दफ़्तर की दूरी और ठीक-ठाक बस के मिल जाने के बीच तालमेल बिठाने में लगा होता है, कोई भी रुकने को कहे तो बहुत अखरता है। मजनूं था भी मुझसे कुछ फासले पर और धीरे-धीरे मेरी ओर आ रहा था।

उसके एक हाथ में दूध का गिलास और दूसरे में डबलरोटी थी। उसने बेडशीट ओढ़ रखी थी, जबकि काफी गर्मी थी। उसके कुछ बाल, जो बुढ़ापा स्वीकार न करने के मामले में उससे सहमति जताए हुए थे, चीकट हो जाने के कारण सफेद बालों के नीचे दबे हुए थे। वह बहुत अधिक बीमार लग रहा था। ऐसा लगता था जैसे बेडशीट, दूध और डबलरोटी तो क्या, पाँव की चप्पलें तक भी उसके लिए बहुत भारी हैं और खींची नहीं जा रही हैं।

उसके नज़दीक आने पर एक बार घड़ी देखने के बाद मैंने उससे पूछा, ''क्या बात? चादर कैसे ओढ़ी? ठीक तो हैं?''

'बस, वैसे ही, जी! तबीयत कुछ ढीली-सी चल रही है।'' उसने कमज़ोर आवाज़ में कहा। मुझे उसके जवाब की कुछ ज्यादा जिज्ञासा भी नहीं थी। बीमार तो वह स्पष्ट रूप से दिख ही रहा था। फिर भी मैंने उसे आराम करने और दवा लेने की सलाह देकर पूछा, ''हाँ, कैसे?''

मुझे लगा कि वह कुछ कहने से हिचक रहा है। मुझे अंदेशा हुआ, कहीं यह सुबह-सुबह पैसे न माँग ले। मुझे देर भी हो रही थी। इससे पहले कि मैं उसे खुलकर बोलने के लिए कहता, उसने कहा, ''बात यह है जी, कि आप कवि हो। आपको एक तकलीफ दे रहा हूँ। मैंने नाविल लिखा है। आप एक बार उसे पढ़ लेते।''

पैसे माँगने वाले अंदेशे से तो मैं निकल गया, लेकिन मजनूं का उपन्यास लिखना मुझे अचंभे में डाले रहा। मैं अविश्वास और अनिश्चय की स्थिति में खड़ा कभी उसके चेहरे और कभी अपनी घड़ी को देखे जा रहा था। उसी ने फिर कहा, '' अब तो आपको दफ्तर को देर हो रही होगी। शाम को अगर आपको टैम

लगे तो जरूर पढ़कर बताना, कैसा लिखा गया है।''

''अच्छा, शाम को देखेंगे।'' कहकर मैं वहाँ से छूट लिया। लेकिन बस में, दफ़्तर में मुझे यही एक बात हैरान-परेशान किए रही कि मजनूं ने उपन्यास लिखा है। कभी मैं मजनूं के बारे में सोचने लगता और कभी उसके उपन्यास की संभावित विषय-वस्तु के बारे में। मुझे, एक लालच भी आ रहा था कि अगर मजनूं ने अपनी जिंदगी के बारे में कुछ लिख दिया होगा, तो वह मेरे बहुत काम आ सकता है।

मजनूं को मैं बचपन से जानता हूँ। जिस टेंट हाउस पर वह आकर काम पर लगा था, वह हमारे घर के पास ही है। तब चारों ओर बहुत खुला-खुला था और शहर का बाजार भी रिहायशी लगता था। कहीं घर, कहीं दुकान। कहीं आगे दुकान पीछे घर, तो कहीं नीचे दुकान ऊपर मकान। अब की तरह नहीं कि शहर का ठेठ रिहायशी एरिया भी बाजार की गिरफ़्त में आता जा रहा है।

हर शहर में दो-चार लोग ऐसे जरूर होते हैं, जिन्हें किसी-न-किसी कारण से पूरा शहर जानने लगता है। उस समय मजनूं भी ऐसे ही दो-चार लोगों में से हो गया था, अगर उसे सिर्फ जाना जाने वालों में ही रखा जाए, उनकी प्रतिष्ठित श्रेणी में नहीं।

जब अपनी सरकार ने अँग्रेजी हुकूमत के समय से चले आ रहे तमाम सिक्कों को, संभवतः गुलामी के अवशेष मानकर, बंद कर दिया था और अपने सिक्के चलाने का ऐलान किया था, उसी समय यह मजनूं यहाँ उस टेंट हाउस पर आया था। तब यह मुझसे दो-तीन साल बड़ा, यानी बारह-तेरह साल का रहा होगा। एकाध साल तो यह ऐसे ही रहा। गुमनाम। मालिक के घर से रोटी लानी, सुबह दुकान की बुहारी-झाड़ी करनी। लेकिन एक दिन इस गुमनाम बच्चे से पूरे शहर का परिचय हो गया। हमने भी देखा-तब यह किशोर हो चुका था। मुझे याद आ रहा है, इसने एक-एक शब्द पर जोर दे-देकर मुनादी की थी और इसकी आकर्षक आवाज़ जब रिक्शे के हैंडल पर बँधे लाडडस्पीकर से होकर लोगों तक पहुँची तो सभी ने काम छोड़कर मुनादी सुनने के लिए अपने सिर सड़क की ओर निकाल लिये थे।

''सुनिएगा, साहेबान! एक जरूरी सूचना'' सुन लीजिएगा। एक लड़की – जिसकी उम्मर ...रंगऽ साँवला.. पाँओ से नंगीऽ...पीले रंग की फिर्राक पहने हुए है– आज्ज सुबह से गुम्म है। जिस्से भी मिले या पता चले तो टेंट हाउस पर पहुँचाने की मिहरबानी करे। धन्यवाद।''

सभी लोग, विशेषकर मेरी उम्र के लड़के, उस छोटे-से लड़के को भरे बाजार

में से यूँ खुलकर बिना किसी हिचक के इतनी अच्छी मुनादी करते गुजरते देख हैरान हुए थे। तभी से लड़कों में इच्छा पैदा होने लगी थी कि इससे दोस्ती की जाए। इसके धर्म, जाति, नाम, गाम आदि के बारे में कोई कुछ नहीं जानता था। इसने धीरे से अपने-आपको पंडित बता दिया था। पंडित होने के बारे में कुछ पूछताछ हुई तो इसने उस समय बन रहे अपने दोस्तों को एक दिन बताया था कि वह चौधरी है। जब किसी ने भी 'शर्मा जी' न कहने की तरह 'चौधरी' भी नहीं कहा और पूछा कि कौन-सा चौधरी है, तो इसने पता नहीं कहीं से सुन रखा था या यह वास्तव में था ही, राणा उपनाम रख लिया। यह नाम कुछ-कुछ चल भी निकला।

उस समय तक यह फिल्में बहुत देखने लगा था। ऐसा कोई स्टाइल नहीं था, जो इसने न अपनाया हो। कभी यह लंबे-लंबे बाल रख लेता, तो कभी सफाचट रहता। कभी पैंट इतनी तंग पहनता कि खुद भी तंग हो जाता और कभी चेन लगे ऊँचे-ऊँचे जूते पहनता। कमीज पर कई-कई और अलग-अलग रंग की जेंबें लगवाता और उनसे भी अलग रंग के बटनों की कतारें। पीपल-स्टील के चौकोर, गोल, लंबे आकर्षक बकल्स की बैल्टें बदलता रहता था। हाथ में कभी कड़ा, कभी चेन डाल लेना और चिचली उँगलियों पर नेलपॉलिश लगाना आदि इसके अजीब शौक थे। गले में पीतल, स्टील या अल्यूमीनियम की चेनें भी हमेशा बदलती रहती थीं। कभी हनुमान लटका होता तो कभी ओउम्। कभी 786 तो कभी क्रॉस। जो सुंदर लगी, पहन ली। तब लोग इसे हीरो कहकर बुलाने लगे थे।

चाय की दुकानों पर काम करने वाले इसके हमउम्र, रिक्शावाले, टाँगे वाले, रेहडियों वाले सभी इससे भौंड़े मजाक करते और इससे छीना-झपटी तथा हाथापाई करते रहते थे। कोई इसकी पैंट की जेब से इसका कंघा निकाल लेता, तो कोई इसकी टोपी उतार लेता। यह तंग भी होता, खिसियाता भी, लेकिन हँसता-हँसता किसी-न-किसी से उलझा ही रहता। यह भी था कि अगर कोई पहले इसे न छेड़ता, तो यह खुद पंगा ले लेता था। किसी को यह बाप कहकर बुलाता, तो किसी का खुद बाप बन जाता। तब तक यह रामलीलाओं में स्टेज पर स्किट पेश करने लगा था। कभी बनिये की कंजूसी का मजाक उड़ाता, कभी मूर्ख नौकर के बहाने हँसाता, तो कभी अपनी कमीज में कपड़े ठूँसकर मोटा पेट कर लेता और जोकर बन जाता। बच्चों के लिए यह उस समय रामलीला की एक जरूरी आइटम बन गया था।

कहने का तात्पर्य कि इसकी तमाम गतिविधियों ऐसी थीं कि इसको पूरा शहर जानने लगा था।

मुझे यह तो अंदाजा था कि मजनूं हमारे घर से अगली ट्रांसफॉर्मर वाली गली में टेंट हाउस के गोदाम में रहता है, लेकिन मैंने भीतर से वह गोदाम कभी नहीं देखा था। मैं अटकल से भीतर चला गया। बहुत लंबा–चौड़ा हॉल था, जो कुर्सियों, बाँसों, पाइपों, रस्सियों, रंग–बिरंगे शामियानों और कनातों से अटा पड़ा था। सामने एक और दरवाजा था, जो आगे आँगन में जाने के लिए था। वहाँ भी बाँस–पाइप पड़े नजर आ रहे थे। बाँसों और पाइपों पर से फिसलने से बचता हुआ मैं आँगन में जाने लगा, तो हॉल के एक कोने से मजनूं की खनकती हुई आवाज़ आई, ''इधर आ जाओ, जी! थोड़ा ध्यान से। लैट नहीं है। आगे और भी पाइप पड़े हैं।''

मैं जब तक मजनूं के पास पहुँचा, उसने मोमबत्ती जला ली थी। लेकिन वह काफी नहीं लग रही थी। एक कोने में मुझे अभी भी अँधेरा लग रहा था। मुझे यह भी नहीं सूझ रहा था कि वहाँ बैठा कहाँ जाए। मजनूं ने टसकते हुए मुझे खाट पर बैठने के लिए कहा। मैंने उसकी तबीयत के बारे में पूछा और साथ ही उपन्यास के बारे में, क्योंकि ज्यादा देर वहाँ बैठना मुझे मुश्किल लग रहा था। गोदाम में पड़े शामियानों, दरियों और गलीचों से गीली–गीली बू आ रही थी, जैसी चौमासे में बच्चे के बिछौने से आती है। वैसी ही बू खाट के आस–पास से भी आ रही थी।

उसने मुझे लाइट आने तक बैठने को कहा।

लगता था, जैसे उससे उठा नहीं जा रहा। कुछ देर चुप्पी के बाद वह लंबी साँस छोड़ता हुआ स्टोव के पास जा बैठा। मैंने उसे मना भी किया, लेकिन उसने स्टोव में हवा भरते–भरते ही कहा, ''दो मिंट में चाय तैयार, जी, बस। तब तक लैट भी आ जाएगी। इसी बहाने मैं भी पी लूँगा। अकेले का तो कम ही दिल करता है पीने को।''

उसने मोमबत्ती अपने नज़दीक खिसका ली। मैं सिवाय इसके कुछ नहीं सोच पा रहा था कि शहर का हीरो, रंगीला मजनूं इस कोने में कैसे रह रहा है। मेरे जहन से उसकी मस्तियाँ और रंगीनियाँ निकल ही नहीं पा रही थीं। उसने मुझे चाय पकड़ा दी और खुद भी एक बड़ी–सी कुर्सी पर बैठकर जोर–जोर से सुड़कने लगा। मैं चाय के रंग और कप को ध्यान से देख रहा था, क्योंकि इन दोनों पर ही मेरा चाय का स्वाद निर्भर करता है। लेकिन कुछ भी स्पष्ट नहीं दिख रहा

था। हारकर मैंने पीनीं शुरू कर दी। तभी लाइट आ गई। मुझे अच्छा लगा कि कप सुंदर था—टेंट हाउस की क्रॉकरी वाला—और चाय भी बढ़िया रंगत की थी। इसके बाद मेरा ध्यान मजनूं की ओर गया। वह शादियों में दूल्हे के लिए प्रयोग होने वाली कुर्सी पर बैठा था। कुर्सी के बाजुओं पर अभी लाल मखमल शेष था। नीचे बिना गद्दी का प्लाई का फट्टा था और मजनूं के सिर के पास अल्यूमीनियम की चमकदार सुनहरी पतरी अभी यथावत थी। नीचे कुर्सी के पाँवों की जगह दो–दो ईंटें जोड़कर रखी हुई थीं। मैंने देखा, कुर्सी से थोड़ा ऊपर दीवार पर रिबन से बँधा एक मैडल लटका हुआ था। पता नहीं लग रहा था कि किस धातु का है। जब मैं ध्यान से देखने लगा तो मजनूं ने बताया कि यह उसे रामलीला में स्किट डायरेक्टर के लिए मिला था। मैडल के पास ही मजनूं के पुराने फोटो थे, जो उसने अपने पसंदीदा रंगीन परिधानों में लकड़ी–प्लाई की कारों–मोटरसाइकिलों के साथ खिंचवाए हुए थे। साथ वाली दीवार पर बिना किसी भेदभाव के हनुमान, गणेश, नानक और अभिनेता–अभिनेत्रियों के कलेंडर एक साथ टँगे थे। मजनूं की बड़ी कुर्सी के साथ रखी टूटी हुई पीठ वाली पाइप की कुर्सी पर एक लकड़ी की संदूकड़ी रखी थी, जिसे देखकर मुझे बहुत कुछ याद आने लगा।

एक छोटा–सा हैंडल जैसा घुमा–घुमाकर मजनूं इस संदूकड़ी में चाबी भरता था और काले–काले गोल तवे (रिकॉर्ड) पर चमकदार मुड़ा हुआ एक हाथ–सा रख देता था, जिसमें सूई लगी होती थी। सूई टिकते ही भोंपू में गाना शुरू हो जाता था। टेंट हाउस के बाहर दिन–भर रिकॉर्ड बजते रहते थे। स्कूल से आते ही हम इसके पास खड़े हो जाते थे और अलग–अलग गानों की फरमाइश करते थे। हम पूछते कि यह कैसे बजता है, तो यह हमें बताता कि इसमें वह खुद पूरी रात घुसकर गाने गाता रहता है। दिन में यह सूई आवाज़ खींच लेती है। चूँकि यह हमसे उम्र में कुछ बड़ा था, इसलिए शक की कोई गुंजाइश न रखते हुए हमें इस पर विश्वास करना होता था। अब डेक, कैसेटों वगैरह के आ जाने से बेकार हो गई संदूकड़ी, तवों का ढेर और यह मजनूं यहाँ गोदाम के कोने में पड़े हैं। संदूकड़ी को देखकर मेरी हँसी छूटने को हो गई। पूछने का मन किया कि क्या अब भी रात को इसी में घुसकर गाने गाते रहते हो।

मजनूं उठकर संदूकड़ी की ओर बढ़ा और उसे खोलकर उसमें से बदरंग कागजों का पुलिंदा निकाला। पुलिंदे पर चल रहे कॉक्रोच झाड़े जो कुर्सी के नीचे लगी ईंटों के बीच जा छिपे।

"लो, जी। यह है। कल ही पूरा किया है। तीन–चार दिन लगे, जी, मेरे इसे

लिखने में।''

तीन–चार दिन में उपन्यास! मैं फिर हैरान हुआ।

पुलिंदे में बंद उसके उपन्यास के बारे में सोचते हुए मैं कभी छोटू उर्फ शर्मा उर्फ चौधरी उर्फ राणा उर्फ हीरो उर्फ आज के मजनूं को देख रहा था, तो कभी एक कोने में बँधी रस्सी पर लटकी पैबंद लगी उसकी दो–एक पैंटों में सुंदर–सुंदर बैल्टें ढूँढ़ रहा था। पुलिंदा निकालकर झाड़ने, मुझे पकड़ाने और फिर वापस उसी दूल्हे वाली टूटी कुर्सी पर बैठने तक में ही उसकी साँस फूल गई। उसकी छाती से घर्र–घर्र की आवाज सुनाई देने लगी। उपन्यास खोलते हुए मैंने उससे कहा, ''कोई बढ़िया दवा ले। मालिक से बोल, वह इलाज करवाएगा। ऐसे तो तू...यह तो ठीक नहीं है।''

मुझे उसके मालिक पर खीझ आने लगी। इसके दाढ़ी–मूँछें भी टेंट हाउस में आने के बाद ही उगी थीं। सिकर दुपहरियों में ताये तारकोल की सड़कों पर इसने मुनादियाँ की हैं। बारातों में लाउडस्पीकर के साथ इसने उद्दंड बारातियों की जलालतें सही हैं। रातों को देर–देर तक इसने शामियानों–कनातों के बाँस खड़े किए हैं, किल्ले गाड़े हैं, रस्से खींचे हैं। और आज इसे यूँ अँधेरे में डाल रखा है।

''इस पर फिल्म भी बन सकती है। बिल्कुल वैसी ही सटोरी है।'' उखड़ी हुई साँस को संयत करने की कोशिश के बीच ही उसने कहा।

उसकी इस बात से मेरी जिज्ञासा और बढ़ गई। मैंने उसके उपन्यास का पहला पृष्ठ पलटा। अगले पृष्ठ पर उपन्यास का शीर्षक लिखा था– 'काले दीन' (दिन) और नीचे लेखक के स्थान पर 'आदम' लिखा हुआ था। पूरे पृष्ठ पर काटा मारा हुआ था। मैंने अगला पृष्ठ पलटा। उस पर 'सफेद कौवा काला हंस' और नीचे 'आदम' लिखकर वह भी काटा हुआ था। अगले पृष्ठ पर 'अँधेरी गलियों का राजकुमार' लिखकर नीचे आदम लिखा हुआ था। शायद यही शीर्षक इसे भाया हो। मैं इस गली छाप शीर्षक में मजनूं के अनुरूप अभिव्यंजना की कल्पना करने लगा, तो मजनूं ने टोक दिया, ''नाम तो कई हैं, जी, दीमाग में। नीचे मैंने मेरा नाम आदम लिखा हुआ था। आपको नहीं जँचे तो बेशक बदल देना। मुझे लिखना कम आता है। आप ठीक करके पढ़ लेना। इसे मैं टैप (टाइप) करवाऊँगा। टैप वाला ठीक कर देगा।''

उसकी बातों से लगा कि उसे न अपने नाम से मोह है न उपन्यास के शीर्षक से। बस, वह इसे छपवाना चाहता है। मैंने पन्ना पलटा और पढ़ना शुरू किया–

''एक लड़की जिसकी उमर ...रंग गोरा, गुम हो गई है।'' मुझे शुरुआत अच्छी लगी। तभी उसने थोड़ा उचककर देखा और बोला, ''ये नहीं, जी... ये तो लाउंसमैंट (एनाउंसमेंट) है। मालिक जो भी लाउंसमेंट करने को देता था, मैं फैल (फाइल) में रख लेता था। कुछ दिन हुए, नाविल लिखने का आइडिया आया तो इन्हीं कागजों के पीछे लिख दिया। कागज हैं तो बोदे-से, पर टैप वाला अपने-आप अच्छे कागज पर टैप कर देगा।'' उसने अपनी साँसों को जोड़े रखने की कोशिश करते हुए बताया।

''कोई बात नहीं, मैं पढ़ लूँगा।'' कहकर मैं उठ गया। मना करते-करते भी वह मुझे बाहर तक छोड़ने आया और एक बार फिर कहा, '' इस पर फिलम बन सकती है। ध्यान से पढ़कर बताना। बिलकुल वैसी ही सटोरी है। मैं इसे टैप करवा लूँगा।''

रात होते ही मैं वह पुलिंदा खोलकर बैठ गया। छोटे-बड़े पुराने कागजों पर एक तरफ़ मजनूं द्वारा किसी जमाने में की गईं पुरानी मुनादियों की इबारतें थीं– औरों के हाथों की लिखी हुई-और दूसरी तरफ, मुनादियों के पीछे, मजनूं के हाथ का लिखा हुआ उसका उपन्यास।

मैं यूँ ही मुनादियों को पढ़ने लगा। उन्हें पढ़ना मुझे अच्छा लग रहा था। प्रकारांतर से यह अलग तरह से लिखा गया एक इतिहास था। मेरे शहर का इतिहास। मुझे लगा, यह रोजनामचा है मेरे शहर का। एक आईना है, जिसमें मैं अपना और पुराने शहर का चेहरा देख रहा हूँ।

शुरू के कई पृष्ठों पर हर चार-पाँच पृष्ठों के बाद एक लड़की के गुम होने की मुनादी थी। इसके बाद एक लंबा सिलसिला चीन के युद्ध से संबंधित कुछ सभाओं, फौजियों के लिए गरम कपड़ों के जुगाड़ वगैरह की घोषणाओं का था। कुछ मुनादियाँ आर्य समाज की भजन मंडलियों के उपदेशों और कार्यक्रमों की थीं। दो मुनादियाँ सनातन धर्म मंदिर में कृष्ण लीला के आयोजन की थीं।

कहीं मुनादियाँ पढ़ते-पढ़ते उपन्यास न रह जाए! सोचकर मैं मजनू का उपन्यास पढ़ने लगा। पहली ही पंक्ति मुझे कुछ अटपटी लगी।–*''एक लड़की होती है भोत सुन्दर और भोत खूबसूरत।''*

''वाह रे हीरो! ऐसे भी कही उपन्यास लिखे जाते हैं!'' मेरे मुँह से हठात् निकला। लेकिन उसने जैसे भी लिखा था, मुझे पढ़ना था। मैंने थोड़ा और पढ़ा। आगे भी यह शैली अपनाई गई थी। इस शैली में मजनूं फिल्म देखकर आने के

बाद हमें उसकी स्टोरी सुनाता था। मैं अपनी हँसी बड़ी मुश्किल से रोक पा रहा था। मैं समझ गया था कि मजनूं पर फिल्मों का और सड़कों पर बिकने वाले उपन्यासों का बहुत प्रभाव है। लेकिन यह भी निर्विवाद सत्य है कि मजनूं पिछले लगभग चार दशकों से शहर की हर घटना–दुर्घटना, खुशी–गमी, जलसों–जुलूसों, हड़तालों–रैलियों आदि का मात्र गवाह ही नहीं है, बल्कि कभी लाउडस्पीकर, तो कभी शामियानों–कनातों–दरियों के साथ आखिर तक मौके पर मौजूद भी रहा है। हो सकता है कहीं कोई काम की बात निकल ही आए। मैं कुछ अतिरिक्त ध्यान से पढ़ने की कोशिश करने लगा।

एक लड़की होती है भोत सुन्दर ओर भोत खूबसूरत अगर वह दीन में दीख जाए तो पूरा सहर उसे देखने के लिए जेजेकार करता हूवा उमड़ पड़े वह सपेद साड़ी पहनकर बालों को बीखराकर रात में ही सड़क पर आती है। उसकी साडी लंबी होकर सडक पर घसीटने लगती है और उसके बाल उसकी साडी के साथ–साथ उड़ते हैं वह गाना गाते–गाते सूबकने लगती है तभी कूछ गूंडे आते हैं ओर उसको उठाके ले जाते हैं।

मुझे कहानी अच्छी लगने लगी। मैं मात्राएँ, अर्धविराम, पूर्णविराम चिह्न आदि ठीक करना चाहता था पर पेन एक ओर रखकर यूँ ही पढ़ता रहा।

फीर एक भूडिया आती है और मेरी बेटी को बचा लो मेरी बेटी को बचा लो एक हीरो होता है वह सोया होता है भूडिया की बात से उसकी आँख खूल जाती है वह भूडिया से पूछता है तुम कोन हो वह रोते–रोते कहती है मैं तूमारी माँ हूँ बेटा मेरी बेटी को बचा लो हीरो की माँ नहीं होती वह माँ का नाम सूनकर रोने को हो जाता है और लड़की को छूड़ाने भागता है रस्ते में एक मोटर साइकल खड़ी होती है वह उस पर चढ़कर दोड़ता है तब तक गूंडे लड़की समेत एक सफेद अंबेसडर में भाग जाते हैं।

यह मजनूं लिखना क्या चाहता है? वैसे भी यह सीधे–सीधे स्क्रिप्ट–राइटिंग कर रहा है। मुझे बेशक वह कहानी अच्छी लग रही थी, लेकिन साथ ही उलझन भी बढ़ रही थी। मैंने कुछ पन्ने और पलटे। उनमें भी हीरो गुंडों के पीछे सड़कों पर, गलियों में, पहाड़ों पर, गुफाओं में भागता फिरता है। मजनूं ने यह दौड़ बिल्कुल फिल्मों की तरह खूब मज़ेदार और जिज्ञासा पैदा करने वाली दिखाई थी। लेकिन मैं हीरो को भागता छोड़कर मजनूं की मुनादियाँ पढ़ने लगा।

लड़कियों के गुम होने की मुनादियाँ जारी थीं। लगभग सभी मुनादियाँ 1962 के कुछ बाद की थीं। मेरे सामने उस समय की कुछ भयंकर यादें पसरने लगीं।

मुझे अच्छी तरह याद है कि जब माँ बाजार से लौटती थी, वह हमेशा लुटी-लुटी-सी महसूस करती थी। उसे सारा दोष सरकार द्वारा जारी किए गए नए पैसों का लगता था, जो आनों-अधन्नों की जगह चले थे। उसे लगता था कि एक तो इन पैसों में बरकत नहीं है और दूसरे इनका हिसाब ठीक से न आने के कारण दुकानदार उसे ठगते हैं, क्योंकि वह जितना भर सोचकर बाजार जाती थी, उतना भर घर में आना कम हो गया था। माँ उलझी-उलझी रहने लगी थी और बापू भी घर के खर्चे को लेकर तकरार करने लगे थे।

मैं मुनादियाँ देख रहा था, जो मुझे अतीत में लौटने को विवश कर रही थीं। मेरा अतीत, मेरे परिवार का अतीत और इस शहर का अतीत। काँग्रेस, जनसंघ और स्वतंत्रत पार्टी के जलसों की मुनादियाँ थीं, लेकिन इन मुनादियों में एक परिवर्तन था। हर मुनादी के शुरू में मजनूं ने लिखा हुआ था– 'शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले, वतन पे मिटने वालों का यही बाकी निशां होगा।' शायद यह भारत-चीन युद्ध का परिणाम था। इन मुनादियों में जवाहरलाल नेहरू की मौत के बाद की शोकसभा की मुनादी थी। मुझे याद है जब नेहरू की मौत का समाचार आया था, किसी को भी विश्वास नहीं हुआ था, और जब उस पर विश्वास करना पड़ा, तो शहर का हर बड़ा-बूढ़ा रोया था। बेशक जनता को तब तक लोकतंत्र ठीक से नहीं समझाया गया था, नेहरू को प्रजा माई-बाप के रूप में देखती थी और इसीलिए नेहरू की मौत में उन्हें अपने कुछ सपनों की भी मौत नज़र आई थी।

हीरो भूडिया के पास आता है वह कहता है माँ तेरी बेटी को मैं ढूँढ़कर नहीं ला सका भूडिया कहती है बेटा तूं ही मेरी बेटी को बचा सकता है मेरे लीये नहीं अपने लीये हीरो भूडिया के चरनों की माटी लेकर कसम खाता है माँ जब तक मैं तेरी बेटी को उन गूंडों से नहीं छूडाउंगा चेन से नहीं बेठूंगा लेकिन जैसे ही वह खड़ा होता है तो देखता है भूड़िया वहाँ से गायब हो जाती है।

यह क्या बकवास है? मेरे मुँह से निकला। मैं मजनूं की कहानी को लेकर उलझने लगा। मैंने बीड़ी सुलगाकर कुर्सी से पीठ लगा ली और कहानी में कोई प्रतीक तलाशने लगा। मेरे जेहन में इस सबके समानांतर मजनूं की व्यक्तिगत जिंदगी भी चल रही थी। मुझे याद आया कि मजनूं की एक बार बदनामी भी हुई थी। मजनूं ने भी प्यार किया था। फिल्मों वाला प्यार नहीं, बल्कि सच्चा प्यार। बिना कसमों-वायदों वाला प्यार।

स्टेशन पार ढाणी में एक विधवा थी। नाम था सैहतो। वह अपने देवर-जेठों से अलग एक कोठरी में रहती थी। रेल की पटरियों से या स्टेशन पर से इंजन

से झाड़ी गई राख में से कोयले चुनती और बाज़ार में बेचती। यही उसकी रोज़ी-रोटी थी। टेंट हाउस के पास एक चाय की दुकान वाला उसका पक्का ग्राहक था। हर रोज़ शाम को वह वहाँ कोयले देने आती। धीरे-धीरे मजनूं उसके नज़दीक आने लगा। मजनूं की चाय के और उसके कोयले लाने के समय में स्वतः ही सामंजस्य बैठने लगा। फिर मजनूं उसके घर जाने लगा। मजनूं को लगा होगा कि उसका भी इस शहर में कोई है जो उसके लिए जीता है, उसकी प्रतीक्षा करता है। मजनूं ने ही सैहतो को बताया था कि वह शहद जैसी पादर्शक और मीठी है, इसीलिए उसका नाम सैहतो है। लेकिन सैहतो के देवर-जेठों को यह प्रेम-प्रसंग सुहाया नहीं और वे लट्ठ लेकर मजनूं पर पिल पड़े। सैहतो की भी पिटाई हुई। तब मजनूं शहर से गायब हो गया था। लोग तो यह भी कहने लगे थे कि सैहतो ने उसकी सारी कमाई पर कब्जा करके उसे कहीं ठिकाने लगा दिया है। संभव है, यह बात सैहतो के देवर-जेठों ने ही फैलाई हो।

लेकिन इससे पहले कि शहर अपने रोजनामचे में से मजनूं का पन्ना फाड़ता,वह फिर प्रगट हो गया। एक नए रूप में। इसके दोस्त क्या, टेंट हाउस का इसका मालिक भी इसे नहीं पहचान पाया था। नयी फूट रही दाढ़ी इसने बढ़ा ली थी। बाल लंबे कर लिये थे। गले में रुद्राक्ष की मालाएँ थीं, जिनमें काफी मोटे-मोटे लाल-सफेद मनके भी थे। यह तब कई दिनों तक चुपचाप रहा, जैसे अधूरी रह गई समाधि-साधना पूरी कर रहा हो। तब हमें भी यह संत-महात्मा-सा लगने लगा था, जिसकी जेबें जादू की कोथली थीं। यह जेब में हाथ डालता और कुछ देर आँखें बंद कर होंठों को फटफटाता रहता। फिर हाथ में आया कोई भी पत्थर, मनका, रुद्राक्ष, ताँबे-पीतल का सिक्का या अँगूठी सामने वाले को देखकर हिदायत देता कि उसे गल्ले में, संदूक में या अलमारी में रखना है। इससे उसकी सभी मनोकामनाएँ पूरी होंगी। इसके पास तब हर समय तंत्र विद्या, काला जादू, वशीकरण मंत्र जैसी पीली-पीली किताबें होती थीं और यह बिल्कुल फकीरी अंदाज में वारिसशाह या बुल्लेशाह को गाता था। इसकी इन्हीं बातों की वजह से स्टेशन के पास वाले गोरे पनवाड़ी ने इसे एक दिन मजनूं कहकर बुलाया था। वहाँ जितने भी लड़के खड़े थे, उन्होंने इसका नाम मजनूं तभी से पक्का कर दिया था। वे इससे इसकी ढाणी वाली लैला के बारे में भी पूछताछ करते और इसे छेड़ते रहते। ऐसे में कोई कैसे संत-महात्मा बनकर रह सकता था? इसने कुछ को प्रतिवादस्वरूप कहा भी-''हीरा मुख से कब कहे लाख टका मेरा मोल।' लेकिन जब इसका मोल कुछ भी नहीं डाला गया, तो यह अपने जाने-पहचाने

रूप में प्रकट हुआ। टेंट हाउस के मालिक ने पड़ोसियों को चाय पिलाई, लड्डू खिलाए और इसके नए कपड़े बनवाए, क्योंकि उसकी पूरी दुकानदारी मजनूं पर ही टिक चुकी थी।

इसकी चुप्पी की जगह तब जोशीले नारों और वीररस से भरे शब्दों ने ले ली थी, क्योंकि नेहरू के बाद गद्दी पर बैठे लालबहादुर शास्त्री के समय भारत–पाक युद्ध छिड़ गया था।

जिस तरह देश के नागरिक नेहरू को प्रधानमंत्री के बजाय सम्राट या राजा मानकर स्वयं प्रजा बने रहे, उसी तरह इस युद्ध के कारण उन्होंने शास्त्री जी को भी प्रधानमंत्री के बजाय एक सेनापति के रूप में देखा और स्वयं देश के लड़ाकू सिपाही बन गए थे। मजनूं कभी 'ब्लैकआउट' की मुनादी करता, कभी खाइयाँ–खंदकें खोदने की, तो कभी लाउडस्पीकर से लोगों को यह समझाता कि सायरन बजने के बाद उन्हें क्या करना चाहिए। जख्मी सिपाहियों को लेकर आने वाली गाड़ी का समय मजनूं इतने जोश और भावुकता से बताता कि पूरा शहर फल, पूरी–सब्जी, कपड़े, दवाइयाँ और अन्य उपहार लेकर स्टेशन पर घायल सैनिकों के अभिनंदन के लिए इक्ट्ठा हो जाता था। गाड़ी के आने पर वहाँ द्रवित करने वाला दृश्य उपस्थित हो जाता। फौजी और नागरिक सभी भीतर–ही–भीतर सुबक रहे होते–चुपचाप। लाल आँखें लिये मजनूं गरमागरम चाय की बाल्टियाँ उठाकर सबसे आगे इस डिब्बे से उस डिब्बे में फौजियों के मगों में चाय डाल रहा होता, ब्रेड या पूरी–तरकारी बाँट रहा होता।

वह समय देश के लिए एक चुनौती का समय था। तब हर हफ्ते नगरपालिका में स्र्वणदान शिविर लगता था, जिसमें शहर और आस–पास के देहात की औरतें अपनी जान से प्यारे गहने उतार–उतारकर अपने देश, अपने फौजियों के हथियारों के लिए सजल नेत्रों से खुशी–खुशी दान करती थीं।

मजनूं द्वारा की गई कुछ और मुनादियाँ पढ़ीं, तो मुझे याद आया कि उस समय खाद्य सामग्री की ब्लैक बहुत होने लगी थी। तमाम जरूरी चीज़ें शहर की दुकानों से गायब हो रही थीं। मजनूं सड़कों पर गला फाड़–फाड़कर चिल्लाता घूमता था कि ब्लैक करने वालों के खिलाफ सख्त कारवाई की जाएगी—बाहुकम डिप्टी–कमिश्नर। ये मुनादियाँ और मुनादियाँ करता मजनूं तब माँ को बहुत अच्छे लगते थे। पुलिस ने एक–दो जगह छापे मारे थे, तो माँ ने ऊपर की ओर हाथ जोड़कर कहा था, "हे नीली छतरी वाले इन कलमुँहों को सूली पर लटकाना।" मुझे यह तो नहीं मालूम कि ब्लैक करने वालों का क्या हुआ, पर इतना जरूर

याद आ रहा है कि उसी समय शहर के मुसलमानों से हिंदुओं के झगड़े होने लगे थे। हमने भी उनके घरों के आगे जा–जाकर मुर्दाबाद के खूब नारे लगाए थे। शहर में यह बात आम होती थी कि मुसलमान ब्लैकआउट करने के बजाय रेडियो पाकिस्तान सुनते हैं।

उस समय हम कई दोस्त घरवालों से छिपकर सिगरेट पीने लगे थे। इस काम में मजनूं बहुत सहायक सिद्ध हो रहा था। वह टेंट हाउस के बरांडे में सोता था। हम तीन–चार दोस्त उसके पास जमा हो जाते थे। ब्लैकआउट के अँधेरे में धीरे–धीरे चलते रिक्शा–साइकिलों की घंटियों की टर्रन–टर्रन के बीच खाटों पर बैठा या सड़कों के साथ दो–दो, चार–चार में खड़ा शहर अपना एक कान अपनी बातचीत पर तो दूसरा खतरे के सायरन पर लगाए होता। तब मजनूं इस डर से कहीं पाकिस्तानी बमवर्षक विमान की नज़र न पड़ जाए, हमारी सिगरेट अपनी माचिस से चादर में छिपकर सुलगाता। दोनों मुट्ठियों में छिपाकर वह जैसे सुट्टा मारता, हम भी वैसा ही करते। उन बैठकों में हम मजनूं से नई–नई जानकारियाँ पाते। सिगरेट खींचते हुए ही एक दिन मजनूं ने पूछा था, बल्कि जानकारी देने की तरह कहा था, ''हमारी समझ में एक बात नहीं आती। तिलकधारी जनसंपर्क अधिकारी जब स्वर्णदान कैंप में नाम बोलता है—'बहन अकबरी अपनी इकलौती अँगूठी अपने देश की रक्षा के लिए दान दे रही हैं। बहन शकीला अपने कानों से बालियाँ निकालकर अपने प्यारे देश के सैनिकों को हथियारबंद करने के लिए दान दे रही हैं। शाबाश! शाबाश! यह होता है देश–प्रेम। मैं देख रहा हूँ, बहन शकीला अपने कानों के छेदों में तीलियाँ डाल रही हैं।' तब कुर्सियों पर सबसे आगे बैठे लगभग हरेक उँगली में ग्रहों के नगों की अँगूठियाँ डाले जो लोग सबसे ज्यादा तालियाँ बजाते हैं, वही लोग कभी भी इन अकबरियों और शकीलाओं के घर के आगे मुर्दाबाद के नारे लगवा देते हैं कि ये पाकिस्तान से प्रेम करते हैं। लेकिन कैंप खत्म होने पर डी.सी.या एस.डी.एम. या और कोई अफसर चाय–बर्फी की मेज पर इन अँगूठीधारी ताली बजाऊ लोगों की ही तारीफ क्यों करता है कि यह सब सोना इनके कारण आ रहा है?''

लेकिन हमारा ध्यान मजनूं के गंभीर सवालों की ओर कम, खामखाँ जल रही सिगरेट की ओर अधिक होता था। हममें से उस समय कोई भी कह देता, ''अरे यार तू सिगरेट तो आगे सरका! कब्जा करके बैठ जाता है!''

मजनूं नाराजगी से सिगरेट हमें थमाकर अपनी बीड़ी निकालता और उसी तरह चादर की गुमटी में छिपकर सुलगाता। उसकी नाराजगी को कम करने के

लिए उससे पूछा जाता, ''सरकार ने छापे मारने क्यों बंद कर दिए?'' तब मजनूं के मुँह से बीड़ी के धुएँ के साथ शब्द निकलते, ''छापे मरवाए ही कब गए थे? वह तो हमारी-तुम्हारी आँखों में धूल झोंकने के लिए खाली कागजी कारवाई थी। और वैसे भी अफ़सरों को सोना बटोरने से फुर्सत मिले, तो छापे मरवाएँ!'' अँधेरे की वजह से हम मजनूं का चेहरा ठीक से नहीं देख पाते थे, लेकिन वह लंबी साँसें खींचता हुआ कई बार इस तरह की बातें करते हुए अपने-आपको अनपढ़-मूर्ख बताता और हमें पढ़े-लिखे होने का वास्ता देकर चीज़ों को भीतर तक समझने की अपेक्षा करता। लेकिन हमारे लिए हर चीज़ तमाशा थी, मज़ा थी। छापे भी, युद्ध भी, अफवाह भी, खाइयाँ भी, स्वर्णदान शिविर भी, तिलकधारी लोक-संपर्क अधिकारी भी और खुद मजनूं भी।

हम केवल बातें करते थे, बातें सुनते थे। शास्त्री जी की बहादुरी की बातें, उनके नारों 'जय जवान जय किसान' और 'खेत में किसान सीमा पर जवान' या हफ़्ते में एक दिन व्रत रखने की बातें। हमें होटलों में लगे छोटे-छोटे बोर्डों पर यह लिखा अच्छा लगता था—दाने-दाने की कीमत है, कृपया जूठन न छोड़ें। तब पता नहीं शास्त्री जी के आह्वान का प्रभाव था या महँगाई का कि माँ भी रोटी बनाते हुए पूछती थी कि कौन कितनी रोटी और लेगा। हमें लगने लगा था कि या तो हमारे घर में कमी आ गई है या हमारी भूख भड़क गई है। खर्चों को लेकर माँ और बापू में झगड़ा होने लगा था। यहाँ तक कि घर में मेहमान के आने पर जहाँ हम खुश होते थे, वहीं माँ बापू को भीतर बुलाकर खुसर-पुसर करने लगती थी। बापू बाहर आते और मेहमान से राजी-खुशी की संक्षिप्त-सी पूछताछ के बाद धीरे से कहते- ''और सुनाओ! कैसे दर्शन दिए आज?''

सारे शहर की खोज-खबर सुनाने वाले मजनूं को भी बापू चाय पूछना छोड़ चुके थे। मजनूं ने एक दिन बताया था कि अमरीका से कई जहाज़ गेहूँ भारत आ रहा है तो इस उम्मीद में कि अब गेहूँ सस्ता मिलेगा, बापू ने खुशी-खुशी मजनूं को चाय पिलाई थी।

हीरो भागके एक टरेन में चढ़ जाता है वहाँ वह देखता है एक हींदू ओर एक मूसलमान सीट के लीये लड़ रहे हैं वह एक प्यार भरा गीत गाकर सबका दिल जीत लेता है उसका गाना सूनकर हींदू ओर मूसलमान दोनों गले मीलते हैं और फीर प्यार से एक ही सीट पर इकट्ठे बेठते हैं लेकिन तभी कूछ गूंडे डीब्बे में चढ़ते हैं वे हीरो को एक बोरे में बंद करके टरेन से बाहर फेंक देते हैं हींदू ओर मूसलमान

फीर लड़ने लगते हैं।

फ़ार्मूला! मजनूं की कहानी मुझे बाँध नहीं पा रही थी। अत: मैं फिर उसकी मुनादियों को पढ़ने लगा। अगली मुनादी ताशकंद में शास्त्री जी की मौत के संबंध में थी, जिसमें उन्हें श्रद्धांजलि देने के लिए नगरपालिका पार्क में इकट्ठा होने का निवेदन था। उस समय पूरे शहर के सामने एक असमंजस की स्थिति थी कि अब क्या होगा? बापू की बैठकों में होनेवाली बातों से लगता था, जैसे शहर थका हुआ, हारा हुआ और लुटा-लुटा-सा महसूस कर रहा है। हालात ऐसे बन गए थे कि जिज्ञासावश हम भी अख़बार पढ़ने लगे थे।

इसके बाद तो शहर लगातार असमंजस की स्थिति में फँसता ही चला गया। इंदिरा गांधी का प्रधानमंत्री बनना, काँग्रेस का विभाजन, चुनाव चिह्न और मुख्यालय को लेकर दोनों विभाजित धड़ों की न्यायालय में लड़ाई। दूसरी ओर बढ़ती महँगाई और भ्रष्टाचार! लेकिन अखबारों ने काँग्रेस की अंतर्कलह को ही राष्ट्रीय समस्या बना दिया था। अन्य समस्याओं पर उन्होंने लिखना बंद-सा कर दिया था।

मुनादी पढ़ते हुए मुझे ध्यान आया कि मजनूं ने हीरो को तो गाड़ी से बाहर फिंकवा दिया। अब उपन्यास आगे कैसे चलेगा? मैंने पन्ना पलटा तो वहाँ हीरो का जिक्र था। मैंने मजनूं के इस प्रयास को फिल्म की अनहोनी घटना की तरह हजम किया और आगे पढ़ने लगा।

हीरो सीटियां बजाते हुए एक गली से गूजरता है उसे कहीं से बचाओ बचाओ की आवाज़ सूनाई देती है वह उधर ही भागता है वहाँ पहुंचकर देखता है एक टेंट में आग लगी हुई है वह आग में कूदकर कइ बच्चों को बचाता है ओरतों ओर आदमीयों को जलते हुए टेंट से बाहर नीकालता है हीरो के साथ अपनी जान पर खेलकर टेंट वाला लड़का भी कइ लोगों को बचाता है उस टेंट वाले लड़के का नाम हमीद होता है वे दोनों इसके बाद पक्के दोस्त बन जाते हैं फीर वह हीरो हमीद के कमरे पर जाता है ओर उसी के साथ रहने लगता है हमीद हीरो के लीए अछे-अछे कपड़े सीलवाता है वे दोनों खूब हँसते हैं और एक सूंदर-सी खूली कार में सड़कों पर गाना गाते हैं।

एक दीन हीरो भी हमीद के साथ काम पर जाता है एक जलसा हो रहा होता है जलसे के सुरू में हमीद बहूत सूंदर सूंदर रिकाड बजाता है ऐ मेरे वतन के लोगों जरा आँख में भर लो पानी सारे जहाँ से अच्छा हिंदूस्तान हमारा, इंसाफ की डगर पर बच्चो दीखाओ चलकर मेरे देस की धरती सोना उगले उगले हीरे मोती वे सब गाने हमीद के दोस्त हीरो को भी बहूत अच्छे लगते हैं गाना सूनते सूनते हीरो

की आँखों में पानी आ जाता है तभी मंतरी जी आ जाते हैं और देस भगती के गाने बंद करने पड़ते हैं कूछ देर बाद जब मंतरी जी खडे होकर बोलना सुरू करते हैं तो अचानक एंप्लीफायर में कूं कूं के साथ तेज़-तेज़ आवाज़ आने लगती है हमीद उसके बटनों को सेट करने की कोसीस करता है लेकिन तभी एक नेता सटेज से कूदकर हमीद को थप्पड़ मारता है हीरो उस थप्पड़ मारने वाले नेता पर टूट पड़ता है वह एक-एक कर सबको मार भगाता है भागते-भागते मंतरी और नेता कार से मुँह नीकालकर कह जाते हैं जिस लड़की को तू ढूंढ़ रहा है वह हमारे कबजे में है हीरो उस कार के पिछे भागता है और भागते-भागते गूम हो जाता है टेंट वाला हमीद बहूत निरास होता है वह हीरो को याद कर करके गाना गाता है वह टेंट की नौकरी छोड देता है और हीरो को ढूंढने नीकल पडता है एक शहर में पहूंचकर वह एक सरकस में नोकरी कर लेता है।

रात को हमीद हीरो को याद करता हूआ और विलाप करता हूआ सरकस के टेंट में सोता है उसे तभी सपना आता है वह वीलाप करता हुआ हिमालय पहाड पर ओर घाटियों में घूम रहा है तभी उसे भोला पारवती आते दीखते हैं भोला ने मीरगछाला की जगह कीमती साल ओढ रखी है उसके साथ-साथ पारबती सरकस की चमकीली डरेस में चलती आती है हमीद भोले के सामने हाथ जोडकर अपने दोस्त हीरो को सकतीसाली बना देने उन दोनों का मिलन करवा देने और दूशमनों को कमजोर कर देने के तीन बरदान माँगता है तभी पारबती बूरका ओढ़कर सीवजी को बरदान देने को कहती है सीवजी आलथी पालथी मारकर सपेद मूरती बन जाते हैं वह मूरती अपना सोने का तीरसूल हाथ में घूमाती है उसकी जटाओं में से तेज-तेज गंगा नीकलने लगती है चारों तरफ़ पानी का सोर होता है और गंगा उंची उठती जाती है तभी वह मूरती पानी में से नीकलकर हिमालय पर जा बैठती है हमीद एक छोटी सी टीले जैसी पहाडी पर रह जाता है वह उंची आवाज़ में चीख-चीखकर सीवजी को मदद के लीए पुकारता है तभी वह देखता है सीवजी की जगह वह नेता खडा है जो उस भूडिया की लडकी को सपेद अंबेडसर में भगाकर ले गया था तभी वहाँ पर टेंट हाउस का मालिक भी आ जाता है हमीद चीखना चाहता है भागना चाहता है लेकीन पूरा ज़ोर लगाकर भी वह कूछ नहीं कर पाता वह देखता रह गया जब पारबती बूरका फेंककर वह लडकी बन जाती है जो नेता के कब्जे में है वह हमीद की ओर बांहें फेलाकर मदद के ली दूख भरा गाना गाने लगती है हमीद भी रोने लगता है तभी हमीद की आँख खुल जाती है वह सरकस के टेंट से बाहर आकर सेर के पींजरे ओर रीछ के पींजरे और चीते

के पींजरे के पास उस लडकी का बचा हुआ गाना पूरा करता है।

उपन्यास में मजनूं का सपने वाला वर्णन मुझे अच्छा लगा। अभी हीरो के लिए जिज्ञासा बनी हुई थी, क्योंकि वह बार-बार गुम हो रहा था। अब मजनूं ने टेंट हाउस वाले लड़के हमीद को भी सर्कस में फँसा दिया था। इस बीच मैंने कुछ मुनादियाँ और पढ़ डालीं। उपन्यास की तरह मुनादियाँ भी उलट-पुलट और गड्मड्ड स्थितियाँ पैदा करने वाली थीं। ज्यादातर मुनादियाँ गोहत्या के विरोध में रोष प्रकट करने के लिए जनसंघ, हिंदू महासभा, आर्यसमाज के जुलूसों की थीं। काँग्रेस तथा स्वतंत्र पार्टी के जलसों की थीं और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की छोटी-छोटी सभाओं की थीं। इसी समय दो मुनादियाँ काफी लंबी थीं, जिनमें एक अनुसूचित जातियों और जनजातियों के जलसों की थी और दूसरी पिछड़ा वर्ग के विशाल जलसे की थी। दोनों ही मुनादियों में इंदिरा गांधी के हाथ मजबूत करने की बात कही गई थी। इनमें कांग्रेस के बजाय सीधे-सीधे इंदिरा गांधी का जिक्र था। कुछेक मुनादियाँ जन्माष्टमी के अवसर पर रासलीला के आयोजन की थीं और एक दशहरे के अवसर पर मेला ग्राउंड में रावण जलाने की थी। एक मुनादी दिल्ली के किसी मशहूर डॉक्टर द्वारा शहर में आकर नर्सिंग होम खोलने की थी।

ये मुनादियाँ मुझे काफी कुछ याद दिला रही थीं। बिल्कुल इस तरह जैसे कि मेरे सामने इतिहास की किताब खुली रखी हो। इन मुनादियों के समय इंदिरा गाँधी सरकार घोर आर्थिक संकट में फँसी हुई थी। खाद्य-पदार्थों की कमी का शोर पूरे देश में था, लेकिन इंदिरा गाँधी बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके और राजा-महाराजाओं के प्रिवी पर्स समाप्त करके लोकप्रियता हासिल करती जा रही थीं।

देश के लिए यह विकट समय था। उस समय के दो नेताओं के चित्र नाटक के चरित्र अभिनेताओं की तरह, बल्कि मसखरे भांडों की तरह मेरे दिमाग में उभरने लगे। उनमें एक थी तारकेश्वरी सिन्हा, जो उस समय शहर में कई बार आई और उसने खूब भीड़ जुटाई। गर्दन मटका-मटकाकर, बालों को झटका-झटकाकर शेरो-शायरी की भाषा में इंदिरा गाँधी को कोसना उसकी विशेषता थी। वह शुरू ही यहाँ से करती थी कि ''हर शाख पे उल्लू बैठा है अंजामे–गुलिस्तां क्या होगा?'' फिर कुछ देर बाद कहती, ''हमने बोल दिया है। बोल दिया है हमने। ऐलान कर दिया है—इंदिरा जी, अब इस गुलशन में गुजारा नहीं है।''

हमने उसके मुँह से कभी किसी राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय समस्या का जिक्र तक नहीं सुना।

दूसरा था मनीराम बागड़ी। उसका नाम भी भीड़ जुटाने के लिए तारकेश्वरी सिन्हा की तरह पोस्टरों में सबसे ऊपर होता था। वह ऐसे उदाहरण देकर भाषण देता था कि लोग ठहाके लगाकर तालियाँ बजाते थे। वह बड़े आराम से टिका-टिकाकर कहता, ''जिस तरह बच्चे कहीं से कोई पौधा उखाड़कर लाने पर कहते हैं कि राम को इसकी जड़ नहीं दिखनी चाहिए, नहीं तो यह उगेगा नहीं, उसी तरह किसान भाइयो, अब इस काँग्रेस की, इस जालिम काँग्रेस की जड़ राम को दिख गई है। अब यह नहीं लग सकती।'' सामने बैठी भीड़ इस पर खूब हँसती और तालियाँ बजाती। एक उदाहरण और था जो वह अपनी हर जनसभा में देता था– ''यह सरकार कहती है कि हमने गाँव-गाँव में, खेत-खेत में पानी पहुँचा दिया है। अरे ओ बावले किसान भाइयो, जागो। यह पानी आपको पता है, कहाँ से आता है? यह पानी उस भाखड़ा से आता है, जहाँ बिजली बनती है। जो पानी आपके खेतों को मिलता है वह तो बिजली निकल जाने के बाद बचा फोका पानी होता है और उस फोके पानी का ही आपको पूरा लगान देना पड़ता है।''

ऐसे और भी कई नेता थे, जो इन्हीं कुतर्कों और लच्छेदार भाषणों के जरिए लोगों के भोलेपन का मजा लेते रहे, फायदा उठाते रहे और बाद में संसद तक भी पहुँचे।

मजनूं ने खूब सुने थे इन लोगों के कुतर्क, आश्वासन, मंचों पर होने वाली कानाफूसी, लोगों की तालियों की गड़गड़ाहट और हमारा नेता जिंदाबाद के नारे।

इसी क्रम में बिहार और उत्तर प्रदेश के भयंकर सूखों के कारण वहाँ के अकालग्रस्त लोगों के लिए मदद करने की मुनादियाँ थीं और उनके बाद इंदिरा गाँधी को और लोकप्रिय तथा राष्ट्र-नायिका के रूप में स्थापित करने वाले उस भारत-पाक युद्ध से संबंधित मुनादियाँ थीं, जिसके बाद बाँग्लादेश का जन्म हुआ था।

एक दीन हमीद सेर के पींजर में सेर को पानी पीला रहा होता है उसकी बाँह सेर पकड़ लेता है एक लडका अपनी जान पर खेलकर हमीद की जान बचाता है जब हमीद को होस आता है तो देखता है वह हीरो था उसका दोस्त दोनों की आँखों में पानी आ जाता है वे गले मीलकर खूब-खूस रोते हैं और सरकस के रींग में उछल-उछलकर गाना गाते हैं हीरो भी सरकस में नौकरी कर लेता है लेकिन उनकी खूसी जल्दी ही दूख में बदल जाती है हमीद सरकस की एक बहुत ही खूबसूरत सहत जैसी मीठी लड़की से प्यार करने लगता है वह लड़की भी हमीद

को बहुत चाहती है वे दोनो एक झील के कीनारे गाना गाते हैं और एक घोड़े पर बैठकर घूमते हैं एक-दूसरे को बाहों में भरकर प्यार करते हैं सरकस के मैनेजर का एक खास आदमी भी उस लड़की से सादी करना चाहता है वह सारी बात मनेजर को बता देता है मनेजर हमीद को सरकस से नीकाल देता है हीरो भी सरकस छोड़कर कहीं ओर चला जाता है।

एक के बाद एक घटनाएँ पढ़कर मैं परेशान भी हो रहा था, मजनूं की इस प्रकार की कल्पना में घुसने का प्रयास भी कर रहा था और मुनादियों के साथ उपन्यास की घटनाओं का तारतम्य बिठाने की कोशिश भी कर रहा था। मैंने कुछ और मुनादियाँ पढ़ीं।

मुनादियों के तेवर यहाँ कुछ बदले हुए थे। जलसे-जुलूसों, हड़तालों, रैलियों, सभाओं की एक भी मुनादी नहीं थी। मुनादियाँ संख्या में भी कम थीं और जो थीं वे रामलीला की, परिवार नियोजन की, आँखों के मुफ़्त ऑपरेशन के कैंपों की थीं। हास्यरस के कवि सम्मेलन की थीं, भगवती जागरण, सत्संग और योग-साधना शिविरों की थी। संभवत: यह आपातकाल का समय रहा होगा, जब यही कुछ हो सकता था। यह वह समय था, जब देश की जनता के दिमाग की सिकुड़ चुकी ग्रंथियाँ और नसें चुपचाप फड़फड़ाने का अभ्यास कर रही थीं और लोकतंत्र के मूल्य-महत्त्व का आकलन कर रही थीं।

इसके बाद तो जैसे मुनादियाँ-ही-मुनादियाँ थीं। लोकनायक जयप्रकाश का जलसा, जनता पार्टी के जन्म के बाद के जलसे, काँग्रेस तथा अन्य पार्टियों के जलसे। सभी मुनादियाँ राजनीतिक जलसों की थीं। लगता है, जैसे उस समय शहर करवट ले रहा था। लोगों की इच्छाएँ-आकांक्षाएँ जोर मारती दिख रही थीं। जनता पार्टी को उन्होंने अपनी इन्हीं इच्छाओं-आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति के रूप में देखा था।

लेकिन ये मुनादियाँ अधिक देर तक नहीं चल सकीं। एक लंबा सिलसिला एक ही तरह की मुनादियों का शुरू हो चुका था। विशाल भगवती जागरण, रामचरितमानस का पाठ, सुंदरकांड का पाठ, श्री श्री एक हज़ार आठ के प्रवचन, सत्य श्री साईंबाबा के चमत्कार, भाइयों-बापुओं-माताओं के रामायण पाठ, गीता पाठ आदि की मुनादियाँ बढ़ रही थीं। मंदिरों के निर्माण, मूर्ति प्रतिष्ठापन तथा भोग-कीर्तनों आदि की बहुत सारी मुनादियों के बीच-बीच मर्दाना ताकत प्राप्त करने के लिए निश्चित दिनों को शहर में आने वाले खानदानी वैद्यों से सलाह-मशविरा करने की और जूतों, साड़ियों, गारमेंट्स की सेल की मुनादियाँ भी थीं।

एक मुनादी फिर वहीं एक फ्रॉक वाली लड़की के गुम होने की थी।

उपन्यास के थोड़े-से पृष्ठ शेष दिखने लगे, तो मुझे राहत मिली। मैं कुछ अतिरिक्त गति से पढ़ने लगा।

सरकस से हटने के बाद हमीद सीधा टेंट हाउस पर जाता है वह कमीज का कालर खड़ा करके बाजूएं ऊपर खींचकर मालीक के सामने अकडकर खडा हो जाता है वह पूछता है नौकरी पर रखना है या ओर कहीं जाऊं मालीक उसके आगे हाथ जोड़कर गीडगीडाने लगता है नहीं बेटा हमीद नहीं ऐसा नहीं करना यह दूकान तो असल में तेरी ही तेरी कमाई से बनी है तू कहीं नहीं जायेगा यहीं रहेगा अपनी दुकान पर अपने टेंट हाउस पर हमीद टेंट हाउस पर फीर दील लगाकर काम करता है दीन रात खूब मेहनत करता है एक दीन वह मालिक को बुलाने उसकी कोठी पर जाता है मालीक घर पर नहीं होते मालीक की बेटी हमीद को बैठने के लीए कहती है और हमीद का हाथ पकड लेती है वह हमीद से मन-ही-मन में प्यार करती है जब वह छोटा था तो मालीक के लिए रोटीयां लाता था तब वह उसके साथ खेलती भी थी जब हमीद हीचकता हुआ बेठ जाता है तो लडकी कहती है हमीद मैं तुमसे प्यार करती हूँ मैं तुमसे शादी करना चाहती हूँ हमीद खडा हो जाता है ओर डायलाग बोलता है नहीं ऐसा हरगीज़ नहीं हो सकता मेरा एक दोस्त है हीरो वह गूम है जब तक वह नहीं आता मैं सादी कभी नहीं करूंगा मेरा दोस्त हीरो एक लडकी को ढूंढकर लायेगा तब मैं सादी करूंगा यह सुनकर लडकी बहुत उदास हो जाती है वह मंदिर में मसजीद में गुरद्वारे में चरच में दुख भरा गाना गाती है टेंट हाउस का मालीक हमीद की मेहनत से ओर ईमानदारी से बहुत खूस होता है वह एक पारटी देता है ओर उस पारटी में हमीद को अपना पाटनर बनाने की लाउंसमेंट करता है और अपनी बेटी के साथ सादी करने की बात भी कहता है हमीद लडकी का दील नहीं तोड़ना चाहता मालिक भी दील का मरीज होता है वह सादी के लिए राज़ी हो जाता है मालीक एक बहुत ही सूंदर कोठी हमीद के नाम कर देता है ओर फीर खूब धूमधाम से उन दोनो की सादी होती है मालीक दिल्ली से नये फेसन का टेंट मंगवाकर उसमें सादी करते हैं सहर के बडे-बडे लोग उस सादी में अपनी लंबी-लंबी कारों में आते हैं और उन दोनों को आसीरवाद देते हैं उनकी खूब फोटू खींचती है वीडियो रील भी बनती है जब सब चले जाते हैं तो वे दोनों भी एक कार में गाना गाते हूए कशमीर में हनीमून मनाने जाते हैं गाना गाते गाते हमीद कई डरेसें बदलता है और बढिया बढिया बेल्ट लगाता है।

मैं अपनी हँसी नहीं रोक सका। वह पुलिंदा मैंने एक ओर सरका दिया और बीड़ी सुलगा ली। लेकिन मेरी हँसी दबाए नहीं दब रही थी। साथ ही कई सवाल भी एक साथ जेहन में उभर रहे थे। जैसे :

एक–मजनूं ने हीरो को दृश्य से गायब क्यों कर दिया?

दो–मजनूं ने ऐसे सपने क्यों देखे?,

यदि देखे भी तो उन्हें यूँ जिंदा क्यूँ रखा?

तीन– सपनों और यथार्थ में बहुत ज्यादा अंतर किसी भी व्यक्ति को डिस्टर्ब कर सकता है, लेकिन मजनूं तो बड़े ही शांत स्वभाव से मालिक के लिए कमाता चला आ रहा है। यह कैसे संभव हुआ?

मजनूं ने आखिरी पन्ने पर 'समाप्त' भी लिखा हुआ था, लेकिन मुझे उस 'समाप्त' में हमीद की जगह मजनूं के कार में हनीमून पर जाने के दृश्य की परिकल्पना हँसाए जा रही थी और इसके विपरीत मजनूं का यथार्थ मेरे दिमाग को कचोट रहा था।

मैंने एक बार फिर पुलिंदा अपनी ओर सरकाया और आखिरी की कुछ मुनादियाँ पढ़ने लगा, जो उपन्यास पढ़ने में छूट गई थीं। सब साथ–साथ चल रहा था। शहर में बिजली–पानी की कमी के विरोध में रैली। भ्रष्टाचार के विरोध में रैली। गेहूँ, चावल, मिट्टी के तेल की ब्लैक के विरोध में रैली। यूथ क्लब की ओर से विशाल भगवती जागरण का आयोजन। रोटरी क्लब और साहित्य संगम द्वारा हास्य कवि सम्मेलन। एक लड़की जिसकी उम्र... रंग गोरा, पाँव से नंगी, जो हरे रंग का छोटा–सा फ्रॉक पहने है, सुबह से गुम है। अलग–अलग कंपनियों के टेलिविजनों पर विशेष छूट। आधुनिक एवं सभी सुविधाओं से संपन्न कॉलोनियों में विशेष रिआयत पर प्लॉट और फ़्लैट बिकाऊ। सस्ती और बढ़िया साड़ियों की सेल। पंजाब में फैले आतंकवाद के विरोध में हड़ताल...

इसके साथ ही कुछ मुनादियां दिमाग को बोझिल करने वाली थीं। इंदिरा गाँधी की हत्या के बाद शोकसभा की एक मुनादी थी और उस हत्या के विरोध में एक मुनादी पूर्ण हड़ताल रखने की थी। अगली मुनादी शहर में अगले दिन धारा 144 का ऐलान था। मुझे याद आया, यह ऐलान पुलिस ने मजनूं को अपनी जीप में बिठाकर करवाया था।

इसके बाद राजीव गाँधी के प्रधानमंत्री काल की कुछ मुनादियाँ थीं। इनमें से अधिकतर मुनादियों में देश के नेताओं ने जमीन छोड़कर सभी सुविधाओं से सज्जित रथों की सवारियाँ करना शुरू कर दिया था और इन रथों का स्वागत करवाने के लिए भी मजनूं की आकर्षक लेकिन ढलती–काँपती आवाज़ का उपयोग किया

गया था।

फिर संभवत: मजनूं बीमार रहने लगा था और मुनादियाँ यूँ भी डैकों में कैसेट चढ़ाकर होने लगी थीं।

पुलिंदे के आखिर में मजनूं ने एक मोटा कागज लगाकर टैग की तरह धागा डाला हुआ था। लगता था, जैसे कि यह मजनूं का नाविल न हो, बल्कि राष्ट्रीय संग्रहालय में रखे स्वराज के डॉक्यूमेंट हों, जो माउंटबेटन ने नेहरू को सौंपे थे।

अगले दिन छुट्टी थी, इसलिए मैं यह सोचकर कि सुबह देर तक सोऊँगा, देर रात तक मजनूं के पन्नों को फिर-फिर उलटता-पलटता रहा और साथ में उपन्यास के पात्रों —हमीद या हीरो—की सदिच्छाओं तथा उनके सपनों के बारे में भी सोचता रहा।

सुबह पत्नी ने मुझे जगाया, ''देखो तो, उस गली में कितना शोर है!''

आठ बज चुके थे। मैं झटपट कुरता पहनकर उधर भागा, क्योंकि भीड़ टेंट हाउस के गोदाम यानी 'मजनूं निवास' वाली गली में जमा थी। मेरे दिमाग में एक साथ बहुत सारे विचार उठे।

नज़दीक पहुँचने पर मजनूं के चीखने की आवाजें सुनाई दीं तो तसल्ली हुई कि ठीक है। मैं भीड़ में से रास्ता बनाकर बाँसों और पाइपों के ऊपर से मजनूं तक पहुँचा।

टेंट हाउस का मोटा मालिक और उसका नेताटाइप फैशनेबल बेटा पहले से ही वहाँ मौजूद थे। मजनूं के कई शागिर्दों ने उसे पकड़ा हुआ था। मैंने पूछा तो लोगों ने बताया कि टेंट हाउस के मालिक का बेटा टेंट हाउस की जगह शानदार दुकान बनाकर कोई दूसरा धंधा शुरू करना चाहता है। इसके लिए उसने टेंट हाउस का सारा सामान किसी को बेच दिया है। लेकिन यह मजनूँ न तो यहाँ से खुद हट रहा है, न सामान को ही हटाने दे रहा है। सामान ले जाने वाले ट्रक लेकर आये खड़े हैं और यह उस कुर्सी से चिपक गया है।

मैंने देखा, मजनूं राजसिंहासन जैसी दूल्हे वाली सुनहरी कुर्सी में फँसा हुआ था। उसने कुर्सी की मखमल उखड़ी लकड़ी के मोटे-मोटे बाजू कसकर पकड़े हुए थे। टूटे हुए अगले पायों के नीचे से ईंट निकल जाने के कारण कुर्सी मजनूं के हिलने के साथ ही आगे-पीछे झूल रही थी। उसके मुँह से थूक गिर रहा था और उसकी आँखों में गीलापन था, पर उन आँखों में किसी को पहचानने के कोई भाव नहीं थे। वह चीखे जा रहा था-ऐ मेरे वतन के लोगों, यह कुर्सी मेरी है। शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले, यह कुर्सी मेरी है। सारे जहाँ से अच्छा,

यह कुर्सी मेरी है. . .

मैंने उसे कुर्सी से उठाकर खाट तक ले जाना चाहा, लेकिन वह चीख पड़ा—दूर हटो ऐ दुनिया वालो, यह कुर्सी मेरी है. . .

मैंने टेंट हाउस के मालिक से बात की, तो उसने कहा, ''पुराना धंधा बदलकर नया शुरू करना कोई गुनाह है? नई दुकान बनाने के लिए इस कबाड़ को तो यहाँ से हटाना ही पड़ेगा न!''

''और मजनूं? क्या यह भी कोई कबाड़ है? इसने जिंदगी-भर आपको कमा-कमाकर दिया है। अब बुढ़ापे और बीमारी में यह कहाँ जाएगा?''

''जाए, जहाँ इसके सींग समाए। हमने क्या इसका जिंदगी-भर का ठेका ले रखा है? वैसे आप देख नहीं रहे हैं? यह पागल हो गया है। हमने पुलिस को फोन कर दिया है। वह इसे पागलखाने पहुँचा देंगे।''

मैं कुछ कहता, इससे पहले ही मालिक का लड़का मेरी बाँह पकड़कर मुझे एक तरफ ले गया और धीमे स्वर में कहने लगा, ''आप इस मजनूं की औलाद को नहीं जानते। बड़ा बदमाश है। आजकल मेरी बड़ी बहन अंबाला से आई हुई है—वह अंबाला रहती है और चार बच्चों की माँ है—आज सुबह-सुबह यह हमारे घर पहुँच गया और उससे हमारी शिकायत करने लगा कि हम इसे निकाल रहे हैं। बहन ने कहा कि मैं क्या कर सकती हूँ, तो यह अनाप-शनाप बकने लगा। बहन बचपन में एक बार खो गई थी। यह ज़ोर-जोर से उसके गुम होने की मुनादियाँ करने लगा। हमने इसे मारकर भगाया तो यह यहाँ आकर इस कुर्सी पर बैठ गया और चीखने लगा। तब से ऐसे ही चीख रहा है। मैं तो कबसे कह रहा था पापा से कि इस बूढ़े बीमार को अब तक यहाँ नौकरी पर क्यों रखा हुआ है। खैर, आज यह टंटा खतम! पुलिस आती ही होगी। या तो यह थाने में दम तोड़ेगा, या पागलखाने में।''

उधर मजनूं का चीखना-चिल्लाना जारी था। भीड़ बढ़ती जा रही थी। तमाशाइयों की भीड़। वहाँ मजनूं से सहानुभूति रखने वाला -उसके शागिर्दों को छोड़कर-शायद कोई नहीं था। लोग उसे देख-देखकर हँस रहे थे। तभी पुलिस आ गई। सिपाहियों ने मजनूं को जबर्दस्ती पकड़कर जीप में डाल दिया।

जीप जाने लगी, तो मुझे मजनूं के उपन्यास का अंतिम दृश्य याद आया, जिसमें हमीद नई-नवेली दुल्हन के साथ कार में बैठकर गाना गाते हुए हनीमून मनाने कश्मीर जा रहा है।

(प्रकाशित : कथन, अप्रैल-जून 2001)

•

त्राहिमाम्–त्राहिमाम्

भूमंडलीकरण के समय की बात है। एक गाँव में धरणीधर नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह धनिक नहीं था। उच्चशिक्षा प्राप्त था परंतु विद्वान नहीं था। वह अपने समयानुकूल वाचाल भी नहीं था। इस पर उसका एक परिवार भी था। शिक्षा–स्नातक की दीक्षा के उपरांत जीवनयापन हेतु अपने गाँव के निकटस्थ नगर के एक निर्जीव विद्यालय में अध्यापन करने लगा। अध्यापन में वांछित परिश्रम व समय और उससे मिलने वाला मासिक वेतन कतिपय समानुपातिक नहीं थे, परंतु उसका एक परिवार भी था अतः धनार्जन, लघुमात्रा में ही सही–आवश्यक था। कुछ वर्षों तक शासकीय नियुक्ति हेतु प्रयासरत रहने और विफल हो जाने के पश्चात् आयु–आधिक्य के कारण उसके पास उसी विद्यालय में कार्यरत रहने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचा था। यह गहरे गर्त में गिरे सियार के निर्णय जैसा था जिसने गर्त में से बाहर निकलने में असफल होने पर कहा था–अच्छा रमणीय स्थल है यह। आज रात्रि का विश्राम मैं यहीं करूँगा।

धरणीधर की एक ज्येष्ठ पुत्री थी तथा कनिष्ठ पुत्र था। दोनों शुक्ल पक्ष के चंद्रमा की भाँति बढ़ने लगे थे। धरणीधर के सिर के बालों ने अपना श्याम वर्ण त्यागना आरंभ कर दिया था। उसकी कृशकाय पत्नी सुरसती का स्वास्थ्य कुछ अच्छा नहीं रह गया था। वह ज्येष्ठ मास की दूब की तरह पीतवर्णी दिखने लगी थी। विद्वतजन और कथा–वाचक बताते हैं कि उसकी रुग्णावस्था का मुख्य कारण अल्पधनार्जन तथा युवा होती पुत्री की चिंता थे। परिमाणतः शनैः–शनैः उनकी गृहस्थी में विवाद होने लगा था।

इधर पुत्री और पुत्र ने उच्च शिक्षा ग्रहण करने की हठ ली तो सुरसती ने धरणीधर से कहा– हे स्वामी! हम इन्हें उच्च शिक्षा दिलवाने में जब असमर्थ हैं तो फिर इनकी क्यों सुनते हो? दो समय की रोटी भी हम कठिनाइयों के साथ जुटा पा रहे हैं– फिर वहाँ इतनी बड़ी शुल्क की राशि, इनके वस्त्र व अन्य इच्छाओं की पूर्ति हम कैसे कर पावेंगे? इसलिए हे कुलश्रेष्ठ! पुत्री के लिए आप कोई योग्य वर देखकर विवाह की सोचें और पुत्र को कहीं काम पर लगावें। इसी में इस घर का कल्याण है।

आचार्य धरणीधर पत्नी के कथन का मर्म जानते थे। परंतु यह भी जानते थे कि इस युग में विद्या-विहीन जीवन असुरक्षित है। अत: उन्होंने ऋण की व्यवस्था कर अपने पुत्री-पुत्र को नगर के एक महाविद्यालय में प्रवेश दिलवा दिया।

बढ़ते ऋणभार के साथ-साथ आचार्य जी अपने गृहस्थ-जीवन में प्रसन्नता लाने का प्रयास भी करते रहते परंतु क्योंकि प्रसन्नता समृद्धि का पर्याय बन चुकी थी अत: वे सामान्यत: असफल ही रहते। यूँ ही इस प्रकार दोनों बालकों की शिक्षा का वर्षांत चल रहा था कि एक दिन उनकी पुत्री ने ऐसे वस्त्र धारण कर लिये जो ग्राम्य-समाज ने अपने मूल्यों के प्रतिकूल कहकर आचार्य को अपने बालकों को मर्यादा में रहने की चेतावनी दे डाली। आचार्य के लिए यह चेतावनी ऐसी थी जैसे कि वर्षाऋतु में उसका पूरा घर टप-टप टपकने लगा हो।

आचार्य जी, सही है कि अन्य ब्राह्मणों की भाँति ग्राम-वासियों पर पूर्णत: आश्रित नहीं थे परंतु, भूमिहीन होने के कारण वे शक्तिहीन भी थे। अत: वे नगर में जा बसने के विकल्प की झुँझलाहट के साथ मौन रह गए।

इसी तरह की झुँझलाहट, वाद-प्रतिवाद, पत्नी संग मतभेदों और ऋणभार से दबे आचार्य जी गाँव में ही पड़े रहे और गृहस्थी की गाड़ी को कभी कीचड़ में कभी रेत में ठेलते रहे।

रविवार का दिन था। आचार्य जी घर पर थे। जब उन्हें समाचार मिला कि गाँव के ही एक युवक-युवती को चौपाल के आगे खुले आँगन में गाँव के लोगों के बीच शारीरिक-मानसिक यंत्रणा दी जा रही है तो वह भी वहाँ पहुँच गए। युवक-युवती का अपराध मात्र इतना था कि उन्होंने अंतर्जातीय विवाह करने का प्रयास किया था। इसी अपराध का दंड सुनाया जाना है। गाँव वालों के चेहरे देखकर ऐसा लगता था जैसे कि लंबे अंतराल के पश्चात् उन्हें प्रसन्न होने का अवसर हाथ लगा हो। वे इस अवसर को उत्सव की तरह मनाते दिख रहे थे। पंचों ने अंतिम निर्णय सुनाने से पूर्व गाँव वालों की प्रसन्नता में अभिवृद्धि करने के उद्देश्य से अंतरिम निर्णय दिया था कि वहाँ उपस्थित हर जन युवक-युवती को एक-एक जूता मारेगा।

आचार्य जी ने देखा कि जूते खाते हुए युवक-युवती के चेहरों पर समर्पण के कोई चिह्न नहीं थे। उनके चेहरों पर कभी कष्ट का तो कभी विद्रोह का भाव आ रहा था। आचार्य जी पंचों और गाँव वालों को समझाने का प्रयास करने लगे तो सरपंच क्रोधित हो उठा और अपनी ग्राम्य भाषा में आचार्य को ललकार उठा-चुप कर रै भामण-चुपकर। आज यहाँ हम जो भी कर रहे हैं वह सब तेरे बाप-दादा का ही सिखाया-बताया है। अब हमें यह ठीक लगने लगा है तो तू न्याय-

अन्याय, उचित–अनुचित का नया पाठ पढ़ाने आ गया है। और सुण, तूं अपने काम से काम रख। माँग कर खाणा है तो गाँव पड़ा है। नहीं तो कहीं भी जा। गाँव के निर्णयों में टाँग अड़ाना हम सहन नहीं करेंगे।

ग्रंथों में उल्लेख है कि भूमंडलीकरण के समय में ये घटनायें बहुतायत में होने लगी थीं। भुक्त–भोगी युवक–युवती या तो अत्याचारों के आगे समर्पण कर जाते थे या पलायन कर जाते थे या उन्हें यंत्रणा दे–देकर मार डाला जाता था या उन्हें आत्महत्या के लिए विवश कर दिया जाता था।

आचार्य धरणीधर पूरे गाँव के सन्मुख अपशब्द सुने जाने के पश्चात् अपमानित अनुभव कर रहा था। उसे तत्काल गाँव त्याग कर नगर–वास का निर्णय लेना पड़ा।

कहते हैं कि उस समय में नियमित मासिक धन देकर कुछ भी प्राप्त किया जा सकता था। अत: आचार्य जी नगर में मासिक देय–धन पर एक घर लेकर अपनी रुग्णा पत्नी सुरसती के साथ रहने लगे। पुत्र–पुत्री जो अब विश्वविद्यालय पहुँच गए थे– यदा–कदा उन्हें मिलने के लिए घर आ जाते थे।

वातावरण तथा स्थान परिवर्तन का आनंद आचार्य की गृहस्थी में अल्पायु लेकर ही आया था। नगर में जाकर उसकी पत्नी की दमित इच्छाओं को जैसे पंख लग गए थे। परंतु इच्छाओं की आपूर्ति और अर्जित धन के मध्य अधिक अंतर होने के कारण कुछ समय पश्चात् घर में फिर कलह होने लगी थी। निराश–हताश पत्नी ने एक दिन पति के समक्ष सूचनात्मक प्रतिवेदन किया कि वह एक गुरु घारण करने जा रही है। यहाँ पूरा नगर किसी–न–किसी गुरु या माता की शरण में जा चुका है, इसीलिए प्रगति कर रहा है।

पत्नी का प्रतिवेदन सुन आचार्य धरणीधर उसकी ओर देखते ही रह गए। उन्हें सायं घर पहुँचने पर मिलने वाले मोदक या अन्य मिष्ठान्न याद आने लगे। ''लो पहले मुँह मीठा कर लो। फलाँ की पत्नी दे गई है। उन्होंने वाहन क्रय किया है। फलाँ ने अपना पहले वाला वाहन विक्रय कर नया वाहन क्रय किया है। फलां ने एक और वाहन क्रया किया है। फलाँ ने अपना घर वातानुकूलित करवाया है।'' आदि–आदि।

कुछ क्षणों तक चुप रहने के पश्चात् वे विनम्रता से बोले, 'हे संगिनी ! जिसे आप प्रगति मान रही हैं वह प्रगति तो संसाधनों से होती है या फिर अपने मूल्यों–सिद्धांतों से समझौते करने पर होती है। गुरुओं या माताओं से नहीं। आप जानती हैं कि मेरा विषय गणित है। मैं भी इस विषय के बल पर सहस्रों रुपए अतिरिक्त मासिक अर्जित कर सकता हूँ। परंतु यह मेरे सिद्धांतों के अनुरूप नहीं है। मैं कक्षा में अपने विद्यार्थियों को पूरी निष्ठा के साथ पढ़ाता हूँ। कोई अल्पज्ञता रहने पर

मैं उन्हें अतिरिक्त समय देकर पढ़ाता हूँ परंतु मैं यूँ धनार्जन नहीं कर सकता। शेष आप देख लेवें। एक बात और-यदि आप समझ सकें– हे मेरी प्रिय मित्र सुरसतिया! यह भूमंडीकरण का समय है जिसे किंकर्तव्यविमूढ़ता का समय भी कहा जा सकता है। आज उचित-अनुचित कर अंतर करना कठिन होता जा रहा है। मनुष्य की इंद्रियाँ स्व-अर्जित सामान्य ज्ञान से नहीं अपितु बाह्य शक्तियों द्वारा नियंत्रित-संचालित हैं। अत: हे भार्या! आज कोई भी कार्य करने से पहले सौ-सौ बार सोचने की आवश्यकता है। यह संकट का समय है। यह अत्यधिक प्रकाश के बीच चौंधियायी दृष्टि का समय है जो अंधकार से भी अधिक भयावह है। शेष आप देख लेवें। कोई भी गुरु आप को क्या दे सकता है जब कि वे स्वयं इस अंधकार और अज्ञानता में धँसे-फँसे पड़े हैं।''

पत्नी से वार्ता का परिणाम शून्य रहा। वह किसी गुरु के डेरे में जाने लगी थी।

पुत्र-पुत्री की दीक्षा का समय निकट आ रहा है। यही एक कारण आचार्य को आश्वस्त करता रहता था कि घर की सभी समस्याओं का निदान हो जाएगा। संभव है तब गृहस्थी समतल चले।

विद्यालय-प्रबंधन के साथ आचार्य के संबंधों में कटुता आने लगी थी। विद्यालय के प्रधानाचार्य सेवानिवृत्त हुए तो वरिष्ठता सूची में प्रथम स्थान पर होने के कारण आचार्य धरणीधर ने निवेदन किया कि उन्हें प्रधानाचार्य बनाया जाए। वे भूल गए थे कि सैद्धांतिक अधिकारों के दावे के साथ-साथ और भी बहुत जोड़-तोड़ करना होता है। अत: पिछड़ गए।

विद्यालय की अंतरंग कार्य-प्रणाली में बहुत परिवर्तन आने लगा था। विद्यालय में कुछ ऐसे अध्यापक नियुक्त किए जा चुके थे जो पढ़ाई को गौण मानते थे। वे सारा समय विद्यार्थियों को धर्म का पाठ पढ़ाने लगे थे। उनकी हर बात मातृभूमि से आरंभ होती तो राष्ट्र पर समाप्त होती और राष्ट्र से आरंभ होती तो मातृभूमि पर समाप्त होती थी। विद्यालय में 'धर्म-भावना जागृति, राष्ट्र भावना जागृति' शिविर भी लगने लगे थे। इससे विद्यालय के परीक्षा-परिणामों में भारी गिरावट आ गई थी। परिणामत: विद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या में भी भारी कमी आने लगी थी।

विद्यालय के साथ-साथ विद्यालय-प्रबंधन के सम्मान को भी इससे आघात पहुँचा। अत: एक राजकीय विद्यालय के सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य क्र.म. वशिष्ठ को संपर्क किया गया। उन्हें विद्यालय की छवि और शैक्षणिक स्थिति सुधारने का दायित्व सौंपा गया। वयोवृद्ध प्रधानाचार्य ने शर्त रखी कि उनके कार्य में अनावश्यक हस्तक्षेप न किया जाए। प्रधानाचार्य की कर्तव्यनिष्ठा, विश्वसनीयता

असंदिग्ध थी। स्वयं के विद्यालयों में वे–जहाँ भी रहे–राजकीय होते हुए भी इन्होंने श्रेष्ठ परीक्षा परिणाम दिए। इससे भी बढ़कर इनके पिता इस क्षेत्र के प्रतिष्ठित कथावाचक थे जो रामायण पाठ करते थे और श्री रामचंद्र के जीवन को आधार बनाकर नैतिकता को बढ़ावा देने वाली कथाएँ घर या गली स्तर की छोटी–छोटी मंडलियों को बड़ी ही सादगी के साथ सुनाया करते थे। इस कारण भी प्रधानाचार्य का क्षेत्र में सम्मान था। उनकी अनुशासनप्रियता और विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास की सामर्थ्य अद्वितीय थी। अत: उन्हें एक वर्ष का अस्थायी नियुक्ति–पत्र दे दिया गया।

उन्होंने विद्यालय की मुख्य–मुख्य त्रुटियों के संबंध में विद्यार्थियों और अध्यापकों से सूचनाएँ प्राप्त करनी आरंभ कर दीं। अपनी आयु की सीमाओं की अनदेखी करते हुए वे दिन–भर कक्षाओं के आगे भ्रमण करने लगे थे। शीघ्र ही वे आचार्य धरणीधर की कर्तव्य–निष्ठा को पहचान गए थे। अत: वे धरणीधर को विश्वास में लेकर अपने दायित्वों को उनके साथ बाँटने लगे थे।

कुछ समय पश्चात् धरणीधर की अन्यमनस्कता प्रधानाचार्य वशिष्ठ को विचलित करने लगी। वे व्यक्ति की मन:स्थिति पढ़ने में पारंगत थे। संध्या–समय कार्यालय में बैठे एक दिन उन्होंने धरणीधर को समझाने का प्रयास किया, 'यह भूमंडलीकरण का समय है। यह निष्कर्षों पर पहुँचने का नहीं अपितु दत्त–निष्कर्षों पर पैनी व सचेत दृष्टि रखने का समय है। सत्ता–तंत्र के लोग स्वयं उचित–अनुचित का भेद करने में अक्षम दिखने लगे हैं। ऐसा लगता है जैसे कि वे किसी राजा की तरह घोषणाएँ कर रहे हो– सुनो, सुनो, सुनो! नगरवासियो सुनो। कल हम अपनी प्रजा को उपहार बाँटेंगे। हर व्यक्ति उपहार डलवाने के लिए अपना पात्र स्वयं लेकर आए। जिस व्यक्ति का जैसा पात्र होगा उसे वैसा ही उपहार दिया जाएगा। स्वर्ण–पात्र में स्वर्ण–मुद्राएँ, रजत–पात्र में रजत–मुद्राएँ, ताम्र–पीतल के पात्रों में छोटे सिक्के तथा मिट्टी या अन्य धातु के पात्रों में दाल–भात हम स्वयं अपने हाथों से बाँटेंगे।

'यह भूमंडलीकरण का समय है मित्र! सावधान! थोड़ा सँभलते हुए और अपनी गृहस्थी को सँभालते हुए और अपने देश के लोगों के लिए अपनी सामर्थ्य से ऊपर उठकर कार्य करते हुए नंगे पाँव तपते मार्ग पर चलते रहो। चलते रहो। आप अकेले नहीं हैं। कोटि–कोटि हैं।'

एक दिन प्रधानाचार्य वशिष्ठ ने विद्यालय के सभी आचार्यों की बैठक बुलाई। बैठक का उद्देश्य आचार्यों के साथ व्यक्तिगत विचारों का आदान–प्रदान तथा और अधिक घनिष्ठ परिचय था। सभी आचार्यों का मूल्यांकन अब तक वे कर चुके

थे। उनकी वृद्ध आँखों और अनुभवी मस्तिष्क से कुछ न छिपा था। उनके चेहरे पर तेज और आत्म-विश्वास स्पष्ट झलकता रहता था। उन्हें यह देखकर कष्ट होता था कि अधिकतर अध्यापकों की आँखें निस्तेज व मुख पीतवर्णी थे। परंतु इसमें वे क्या कर सकते हैं। यह सब तो राज्य की शिक्षा-नीति का परिणाम था। विपणन के इस समय में कुछ भी क्रय-विक्रय की परिधि से नहीं बचा है। शिक्षा भी नहीं। इस तरह के सभी विद्यालय अपने लाभ-हानि पर ही ध्यान रखते हैं। ऐसे में चाहे उन्हें अध्यापकों को भी क्यों न चूसना पड़े। हर अध्यापक से दो अध्यापकों का काम और हर दो अध्यापकों को एक अध्यापक का वेतन। इनके ये पीतवर्णी चेहरे इसी व्यवस्था की विडंबना है।

विद्यार्थियों से प्राप्त सूचना और उसके साथ अब तक बढ़ चुकी निकटता के आधार पर प्रधानाचार्य वशिष्ठ को धरणीधर के सबसे अधिक सक्रिय दिखने की अपेक्षा थी। परंतु बैठक में वह अन्यमनस्क व मौन बैठा दिखा। प्रधानाचार्य ने उससे वार्ता कर प्रयास किया, ''हे श्रमशील निष्ठावान आचार्य धरणीधर! कृपया मुझे अपनी अन्यमनस्कता का कारण बतावें। संभव है अपने अनुभवों के आधार पर मैं आपकी कोई सहायता कर पाऊँ। यह बैठक मैंने आपसी सौहार्द्र बढ़ाने, सबकी निजता को और अधिक निकट से जानने के लिए बुलाई है। यह तभी संभव होगा जब हम नि:संकोच अपने निज को यहाँ अपने सहकर्मियों के मध्य साझा करें। ''

धरणीधर तनिक संकोच के साथ बोले- कुछ विशेष नहीं है महोदय! मेरी पारिवारिक स्थितियाँ कुछ प्रतिकूल चल रही हैं। परंतु मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि आपकी इच्छा के अनुरूप विद्यार्थियों के प्रति मेरी निष्ठा में मैं कभी भी कभी नहीं आने दूँगा।

प्रधानाचार्य को लगा जैसे हर वरिष्ठ अध्यापक इस प्रश्न का यही उत्तर देगा जबकि सब-के-सब अल्पाधिक धरणीधर वाली स्थिति में ही थे।

युवा अध्यापकों के मुखों पर अपेक्षाकृत प्रसन्नता तथा आश्वस्ति का भाव था। प्रधानाचार्य ने अनुमान लगाया कि ये सभी संभवत: गृहस्थ नहीं हुए होंगे। संभव है इनके इस विद्यालय में प्रवेश के उद्देश्य भिन्न हों।

बैठक विद्यालय के समय के उपरांत बुलाई गई थी अत: समयाभाव की समस्या अधिक नहीं थी।

''मित्रो! मुझे एक श्रुतकथा स्मरण हो आई है, मुझे लगता है वह यहाँ प्रासंगिक रहेगी।'' प्रधानाचार्य ने उपस्थित अध्यापकों की इच्छा-अनिच्छा की ओर ध्यान दिए बिना कथा आरंभ कर दी।

अथ सुग्रीव विभीषण वार्ता

श्री राम लंका के निकट पहुँच चुके थे परंतु अभी वे रावण की अनुमानित शक्ति और सागर के स्वभाव का आकलन कर रहे थे। अश्विनी मास का शुक्लपक्ष चल रहा था। उन्होंने अपना सैनिक शिविर एक निर्जन, गुप्त एकांत में लगाकर उसके चारों ओर काँटेदार झाड़ियों की ऊँची बाड़ लगा दी थी। छोड़े गए एक प्रवेश द्वार पर बारी-बारी से सभी वरिष्ठ लोग प्रहरी के रूप में पहरा दे रहे थे। श्रीरामचंद्र ने अपने गुप्तचर रावण शिविर के समाचारों के लिए पूरे क्षेत्र में फैला दिए थे। सप्तमी की रात्रि विभीषण को प्रवेश द्वार के प्रहरी की कमान सौंपी गई थी।

आसमान में हल्के-हल्के मेघ छाने लगे थे जिस कारण अंधकार की सघनता और बढ़ गई थी। मध्य रात्रि से कुछ पूर्व जब अर्धचंद्र बादलों के बीच से निकल कर शिविर को कुछ प्रकाश दे रहा था उस समय प्रवेश द्वार पर एक सैनिक प्रकट हुआ और शिविर में जाने की आज्ञा लेने लगा। विभीषण ने अपनी रामनामी सँभालते हुए उसे ललकारा ''ठहरो! निशाचर! तुम विभीषण के साथ कपट नहीं कर सकते। तुम्हें मैं अभी श्री राम के सैनिकों से मरवाता हूँ।

''यह क्या कह रहे हैं महाराज विभीषण? मैं हूँ, मैं। मैं वानर सेना का एक सैनिक जिसने आज प्रात: आपको अंजीर फल और कच्चे नारियल लाकर खिलाए थे।'' कहकर सैनिक फिर निश्चिंत मुस्कान लाते हुए बोला- ''मेरे लिए यह गर्व की बात है कि मेरा छद्मवेश आपको भी धोखा दे गया।''

''ओ अधम! मुझे अपनी कपटी बातों में ना उलझा। इससे पहले कि महाराजा राम के सैनिक तुम्हें बंदी बनाएँ-सत्यभाषण कर और बता कि तुझे उस दुष्ट रावण ने यहाँ किस प्रयोजन से भेजा है?''

विभीषण का स्वर रात्रि के समय के अनुरूप नहीं था। वह अपेक्षाकृत ऊँचे स्वर में बोल रहा था।

नहीं महाराज! मैं सत्यभाषण कर रहा हूँ। मैं श्री राम का एक सच्चा सिपाही हूँ। मैं उनके लिए अपना जीवन तक त्याग सकता हूँ। मैं संध्या समय से ही अपने इसी छद्मवेश में गुप्तचरी के लिए निकला हुआ हूँ।'' अब सैनिक के चेहरे पर कुछ-कुछ निस्सहायता के भाव आने लगे थे, क्योंकि विभीषण ने कड़ा रुख अपना लिया था।

''ओ निशाचर! तू यूँ नहीं मानेगा। मैं अभी तुम्हें बंदी बनाता हूँ।'' कहकर विभीषण ने हाथ की माला एक ओर फेंक दी और पाश उठाने का उपक्रम करने लगा।

अब सैनिक अत्यधिक गंभीर और विवश हो गया और बोला-''हे विभीषण!

आपने मुझे व्यर्थ ही शपथ लेने को विवश कर दिया है। ठीक है मैं शपथ लेता हूँ– ''हे विभीषण! यदि मैं मिथ्याभाषण कर रहा होऊँ तो मैं कलियुग के भूमंडलीकरण के समय में भारत में जन्म लूँ।''

''वाह! निशाचर! वाह! क्या सुंदर शपथ ली है। अपने लिए इतने अच्छे भाग्य की कामना कर रहा है और कह रहा है कि शपथ ली है। वाह रे कपटी।'' विभीषण का स्वर व्यंग्य से भरा और अधिक कड़ा व कर्कश हो गया था।

''हे विभीषण! मैं दूसरी शपथ लेता हूँ। यदि मैं मिथ्याभाषण कर रहा होऊँ तो कलियुग के भूमंडलीकरण के समय में मेरा एक परिवार भी हो।'' दूसरी शपथ लेते हुए सैनिक का शरीर क्षीण पड़ गया था।

''तू मुझे अपने वाक्जाल में नहीं उलझा सकता। मैं तेरा वास्तविक रूप पहचान चुका हूँ। कपटी! निशाचर! रामद्रोही!''

गुप्तचर सैनिक ने अत्यधिक क्षीण स्वर में आँखें बंद कर ऊपर देखते हुए फिर शपथ ली, ''हे विभीषण! मैं तीसरी और अंतिम शपथ लेता हूँ– यदि मैं मिथ्याभाषण कर रहा होऊँ तो उस समय में मेरे पुत्र व पुत्रियाँ उच्च शिक्षा व गंधर्व विवाह के आकांक्षी...।''

अभी सैनिक ने अपनी शपथ पूरी नहीं की थी कि वह मूर्छित-सा होकर गिरने को हो गया। सुग्रीव ने भागकर उसे सँभाला। ''बस सैनिक! बस! अपने लिए इतने कठोर अभिशापों की शपथ न ले।''

निष्ठा पर प्रश्नचिह्न लगने और कठोर शपथ लेने के कारण सैनिक की शक्ति तो क्षीण पड़ी ही उसकी आँखों से अश्रुधारा भी बह निकली। इससे पहले कि सुग्रीव विभीषण को संबोधित करता, विभीषण ने अत्यधिक उत्तेजना का प्रदर्शन करते हुए कहा, ''बंदी बनाओ सुग्रीव जी इस रामद्रोही को। निश्चित रूप से यह कपटी श्री राम की शत्रु सेना का बहुत ही चालाक गुप्तचर है।''

सुग्रीव ने पूरी स्थिति का अनुमान लगा लिया था। वार्ता का प्रचुर अंश वह सुन चुका था। वास्तव में शिविर के चारों ओर सियार-ही-सियार बोल रहे थे। उनकी कर्कश ध्वनियाँ नींद में विघ्न डाल रही थीं। इस पर प्रवेश द्वार के निकट ही उसका शिविर होने के कारण विभीषण की कर्कश ध्वनि ने भी उसे उठने को विवश कर दिया था।

सुग्रीव के मस्तिष्क में प्रश्नों की गदाएँ टकराने लगी थीं। विभीषण का पुनः-पुनः श्री राम का नाम उद्घोष की तरह ऊँचे स्वर में दोहराना। अपनी निष्ठा और विश्वसनीयता को यूँ बार-बार रेखांकित करना। सीधे-सादे-सच्चे सैनिक को यूं ऊँचे स्वर में पुनः-पुनः रामद्रोही कहना। विभीषण जी ऐसा क्यों कर रहे हैं?

ये क्या स्थापित करना चाहते हैं?

अपने प्रश्नों का दमन करते हुए सुग्रीव ने अति विनम्र होकर सादर कहा– ''हे विभीषण जी! यह जो कठोर शपथ स्वयं के लिए अभिशाप माँगने की तरह इस सैनिक ने उठाई है वह यूँ परिहास का विषय नहीं है। आप इसकी शपथ पर कृपया तनिक गहन विचार करें।''

''यह आप क्या कह रहे हैं सुग्रीव जी? मेरे जैसे रामभक्त भला इन सांसरिक विषयों को क्यों समझें? मेरी निष्ठा तो श्री राम के साथ है। मात्र और मात्र श्री राम के साथ। इस सैनिक के साथ नहीं।'' विभीषण ने यह संवाद पहले से भी अधिक ऊँचे स्वर में बोला और फिर परिहास की मुद्रा में आ गया, ''इसकी शपथ तो देखो–जैसे कि अपने लिए वरदान माँग रहा हो। कहता है यदि मैं मिथ्याभाषण कर रहा होऊँ तो मैं कलियुग के भूमंडलीकरण के समय मैं भारत में जन्म लूँ। जय श्री राम! जय श्री राम!''

सुग्रीव ने अपने उसी विनम्र स्वर में कहा, ''हे विभीषण! आप अपनी दिव्य–दृष्टि से त्रेता और द्वापर को पार करते हुए कलियुग में विचरण करें तो अनुभव करेंगे कि कलियुगी भारत में एक सामान्य नागरिक के लिए नरक का आभास होता है और भूमंडलीकरण के पश्चात् तो यह नरक महानरक में परिवर्तित होता दिख रहा है। इस सैनिक ने विवशतावश घनी कठोर शपथ ले ली है विभीषण जी!''

''क्या कठोर शपथ ली सुग्रीव जी? अहा! परिवार भी माँग रहा है...जय श्री राम।'' विभीषण का परिहास सतत बढ़ता रहा।

''यह परिहास का विषय नहीं है विभीषण जी। कृपया अपनी दृष्टि को उस युग में घुमाने की चेष्टा तो करें। एक अकेला जन ही उस युग में कई–कई बार आत्महत्या कर स्वयं की मुक्ति के लिए छटपटाएगा और यदि उसका परिवार भी हुआ तो आप कल्पना कर सकते हैं कि वह किस प्रकार से निर्वहन करेगा। हे विभीषण! उस समय में मनुष्य को उन सभी संसाधनों से दूर कर दिया जाएगा जो उसके हैं या उसके लिए हैं।''

''पुत्र–पुत्रियों की कामना और उस पर उनकी उच्च शिक्षा तथा गंधर्व विवाह की आकांक्षा? जय श्री राम! यह कैसी वार्ता है जो मैं जीवन में पहली बार सुन रहा हूँ। क्या मुझे रामनाम रटने से इस ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिला? मेरी सहायता करो राम! इस रामभक्त को आपके चरणों के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझ रहा है।''

सुग्रीव ने फिर अनुभव किया कि विभीषण पूरी वार्ता राम के उद्घोष की तरह आलाप रहे हैं। सुग्रीव विभीषण के इस पक्ष को अधिक समय तक अनदेखा

नहीं कर पाए। उसने स्पष्ट अनुभव किया कि उसे मात्र सोने की लंका की राजगद्दी दिखाई दे रही है जो राम के प्रति निष्ठा ही दिलवा सकती है। अब सुग्रीव ने भी उसे अपने संबोधन में और अधिक महत्त्वाकांक्षी बनाते हुए कहा, ''हे भावी लंकेश! हे परम रामभक्त विभीषण! आप अपनी रामनामी और रुद्राक्ष की माला में घिर कर रह गए हैं। इसीलिए आपको भूमंडलीकरण के समय की विभीषिकाएं स्पष्ट तो कहाँ–धुँधली भी नहीं दिख रही हैं। उस समय में अपनी संतानों को उच्च शिक्षा दिलवाना इतना सरल न होगा। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं और उपलब्ध संसाधनों का अधिक अंतर मानव–जीवन को बोझ बना देगा। मुझे दिख रहा है कि शिक्षा उस समय वस्तु का स्थान ले लेगी जिसकी गुणवत्ता उस से अर्जित किए जा सकने वाले धन से मापी जाएगी। उसका मूल्य भी उसी अनुपात में उसकी गुणवत्ता के आधार पर चुकाना होगा जो कि सामान्य नागरिक के वश से बाहर की बात होगी। राज्य शिक्षा के दायित्व से मुक्ति पाकर इसे लाभ की वस्तु बनाकर धनियों के हाथों विक्रय हेतु सौंप देगा और स्वयं मात्र प्रजा पर राज़ करने के लिए रह जाएगा। और गंधर्व विवाह! जिसे आप इस त्रेता में पवित्र और आदर्श मान रहे हैं तत्कालीन परिस्थितियों में इस व्यक्ति–स्वतंत्रता का हनन कर लिया जाएगा। कुछ लोग धर्म–धर्म चिल्लाकर विवाह के नियमों को इतना कठोर बना देंगे कि गंधर्व विवाह करने वाले युवकों–युवतियों को गर्व की अपेक्षा लज्जित–उपेक्षित होकर अपना जीवन–निर्वाह करना होगा। ऐसे में संभव है हत्याएँ या बलात् आत्म–हत्याएँ करवाई जाएँ।''

''हे किष्किंधा नरेश सुग्रीव! आप जब सब देख ही रहे हैं तो इस असांसारिक रामभक्त को कृपया भूमंडलीकरण के संबंध में भी बताते जाएँ। सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग सब सही है। रामनाम जपते हुए कुछ–कुछ आभास इन युगों का मुझे होता रहा है परंतु यह भूमंडलीकरण? इस पर कुछ प्रकाश डालें, यह कौन–सा युग है जो कलियुग में यूँ घुसा चला आएगा और सभी युगों की मान्यताओं के लिए एक चुनौती बन जाएगा।'' इस समय अर्धचंद्र के प्रकाश में विभीषण के चेहरे पर कुछ जिज्ञासा झलकती दिखी।

''हे लंकेश! अधिक प्रकाश तो इस पर युगद्रष्टा श्री राम ही डाल सकते हैं, परंतु जितना भर मेरी सीमित अल्प बुद्धि के द्वारा दृष्टिगोचर हो रहा है मैं बता रहा हूँ।'' सैनिक भी धीरे–धीरे सरककर सुग्रीव के निकट आ गया था।

''हे रामभक्त! मैं मात्र इतना देख पा रहा हूँ कि विश्व–भर के शासकों की अपने नागरिकों के प्रति विमुखता और उनकी निजी लोलुपता तथा अदूरदर्शिता का लाभ उठाते हुए धनिकों और बनिकों की मंडली बन जाएगी जो नागरिकों

की इच्छाओं में असीमित वृद्धि करने में सफल रहेगी। धीरे-धीरे राज्य तक भी इसकी जकड़ में आ जाएँगे। नागरिकों को धनिकों-बनिकों और राज्य की सुविधानुसार ही स्वतंत्रता व अधिकार मिल पाएँगे। सभी नियम व्यर्थ हो जाएँगे। यहाँ तक कि नागरिक स्वतंत्रता पर कहीं धन तो कहीं धर्म को बिठा दिया जाएगा। धनिकों-बनिकों की मंडली द्वारा बढ़ाई गई इच्छाओं-आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु-तब व्यक्ति येन-केन-प्रकारेण धर्नाजन और सत्ता-प्राप्ति के लिए इतना लोलुप हो जाएगा...इससे आगे मैं ठीक से देख नहीं पा रहा हूँ...धरा पर विद्यमान सभी शासक, प्रशासक, राज्य, व्यवस्थाएँ उस मंडली के आगे समर्पण करती दिख रही हैं...और...और हे विभीषण! मुझे त्राहिमाम-त्राहिमाम की ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगी हैं। सुनो विभीषण सुनो— हे रामभक्त! अपनी प्रजा को जागृत कर उस युग में भ्रमण करने का प्रयास तो करो। देखो-सुनो— चारों और त्राहिमाम-त्राहिमाम मची है—'

'शासकों के दरबार में?' विभीषण ने अपनी दूरदृष्टि की सीमाओं पर खीझते हुए पूछा।

''नहीं। लगता है ये ध्वनियाँ देवियों, देवताओं की प्रस्तर-प्रतिमाओं के आगे माथा रगड़ते भक्तों की हैं..नहीं-नहीं...गुरुओं, बाबाओं और माताओं के मठों से, डेरों से आ रही हैं...भक्तगणों की...मैं संभवत: ठीक से स्पष्ट नहीं देख पा रहा हूँ। हर व्यक्ति किसी-न-किसी रूप से असुरक्षित दिख रहा है भूमंडलीकरण के समय में...।''

सुग्रीव की बातों से विभीषण शंकित भी हो उठा, कहीं सुग्रीव मुझ पर मेरी सामयिक रामभक्ति पर, मेरी आवश्यकता बन गई रामनामी पर, हाथ में पकड़ी राम नाम की माला पर, मेरे जय श्री राम के उद्घोष पर कटाक्ष तो नहीं कर रहा? कहीं यह समझ तो नहीं गया कि मुझे लंकापति बनने, स्वर्ण सिंहासन प्राप्त करने के लिए रामभक्त होने का अतिरिक्त अभिनय करना पड़ रहा है। परंतु और किया भी क्या जा सकता है? राम के नाम के बिना मुझे उस सिंहासन तक और क्या पहुँचा सकता है? जब कि मुझे कलियुग के भूमंडलीकरण तक का सही-सही आकलन ज्ञात नहीं है। उस समय की पिसती-मरती प्रजा तक की कल्पना तक मुझमें नहीं है। रामनाम के बिना सीखा कुछ नहीं है। ऐसे में यह रामनाम ही तो है जो मुझे वहाँ तक पहुँचा सकता है। यह सब सोचते हुए विभीषण इधर-उधर टहलने लगे। तभी सैनिक बोल पड़ा- ''मैं शिविर में जाऊँ महाराज विभीषण?''

''हाँ, हाँ। परंतु है तो यह श्री राम शिविर की आंतरिक सुरक्षा का प्रश्न! पर किष्किंधा नरेश सुग्रीव के व्यक्तिगत विश्वास पर मैं जाने दे रहा हूँ। जाने से पहले

मेरे साथ तीन बार बोलो–जय श्री राम–जय श्री राम–जय श्री राम।''

प्रधानाचार्य ने पानी पिया और जब उन्हें लगा कि कथा भूमंडलीकरण से छिटककर अन्यत्र जा रही है– उन्होंने सभी से व्यक्तिगत परिचय प्राप्त कर विद्यार्थियों के प्रति निष्ठा को दोहराया और बैठक कर समापन किया।

बैठक के पश्चात् आचार्य धरणीधर वहीं ठहर गए और एकांत का लाभ उठाते हुए प्रधानाचार्य वशिष्ठ से प्रश्न किया– ''महोदय, वर्तमान का आपने जो चित्रण किया है उससे तो लगता है जैसे यह सब पहले से तय था। सो सो होई जो राम रचि राखा। हम इसमें कुछ भी हस्तक्षेप नहीं कर सकते।''

नहीं, आचार्य धरणीधर! ऐसा कदापि नहीं है। कुछ विवेकी पुरुष होते हैं जो अपने समय के विरोधाभासों का ठीक–ठीक आकलन करके उनके निवारण के लिए प्रयास करते हुए सुंदर भविष्य का निर्माण करते हैं। सतयुग के विरोधाभास त्रेता तक आते–आते विकराल हो गए और त्रेता के विरोधाभासों ने द्वापर में महाभारत करवा दिया। अब द्वापर के विरोधाभासों ने तो हमारे युग को कलियुग ही बना डाला। हमारे महापुरुषों ने इस कलियुग को भी सतयुग जैसा बनाने के बड़े प्रयास किए हैं परंतु हर समय में कुछ ऐसी स्वार्थी शक्तियाँ पनप और बच जाती हैं, जो स्थितियों को अपने हितों के अनुसार मोड़ ले जाती हैं। अब यही देखो–धनिकों और बनिकों का मंडलीकरण... अभी छोड़ो– फिर कभी बात करेंगे...आप दसवीं की कक्षा के गणित पर थोड़ा और समय लगाएँ। विद्यार्थी नगर के गणित पढ़ाने वाले केंद्रों पर जाकर व्यर्थ ही अतिरिक्त धन व्यय कर रहे हैं। फिर भी वांछित स्तर प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं।

रात में धरणीधर सो नहीं पाया। उसे बार–बार लगता रहा जैसे प्रधानाचार्य वशिष्ठ के सुग्रीव ने उसे ही ध्यान में रखकर विभीषण के साथ यह सब वार्ता की थी। वह बाहर निकलकर ऊपर छत पर चढ़ गया। नींद में विघ्न पड़ने पर वह छत पर पहले भी घूमता रहा है परंतु आज जैसे सुग्रीव के संवादों ने वर्तमान संसार के साथ उसकी और अधिक निकटता बना दी है। उसने नगर के चमचमाते चौंधियाते प्रकाश को देखा। वह सोचने लगा–कैसा समय है यह! पूरा नगर चौंधियाने वाले प्रकाश से चमक रहा है और मानव के चारों ओर अंधकार घिरता जा रहा है। दिन–भर नगर के चौड़े–चिकने मार्गों पर क्रयऽ–क्रयऽ, विक्रयऽ, विक्रयऽ, लाऽऽभ–लाऽऽभ....निवेऽऽश–निवेऽऽश सुनाई देता है। इधर तंग गलियों की भूख की बातें, रोटी की बातें तंग होकर दम तोड़ रही हैं–कैसा समय है यह?

नित्यप्रति आस–पास से आता कर्कश संगीत उसे अच्छी निद्रा नहीं लेने देता

था। आज उसने उस विघ्नकारी संगीत को ध्यान से सुना जो लोकप्रिय धुनों में लपेटकर फेंका जा रहा था। अकस्मात संगीत के साथ आती मानव–ध्वनियाँ त्राहिमाम–त्राहिमाम में परिवर्तित हो गईं। यह क्या? तो क्या सुग्रीव जी सही बता गए हैं? ध्वनियाँ और अधिक निकट से आती सुनाई देने लगीं–सारे बोलो... त्राहिमाम त्राहिमाम। पिछले बोलो– त्राहिमाम–त्राहिमाम। ज़ोर से बोलो– त्राहिमाम–त्राहिमाम। इसका अर्थ है ध्वनियों के थोड़े से अंतर के साथ यही स्वर पूरे देश में गूँज रहे हैं। जय त्राहिमाम गुरु जी। जय त्राहिमाम बाबा जी। जय त्राहिमाम माता जी। वह जितना सोचता रहा त्राहिमाम–त्राहिमाम उतना ही विश्वव्यापी और भूमंडलीय होता गया। कुछ समय पश्चात् उसे उसकी पत्नी का दारुण स्वर भी सुनाई देने लगा जो ढोलक–चिमटे के साथ किसी लंपट गुरु के पाँवों में बैठी पुकार रही होगी–जय त्राहिमाम–त्राहिमाम गुरु जी।

आचार्य धरणीधर अर्धरात्रि को इससे भी आगे बहुत कुछ यथार्थ में घटित होता अनुभव कर उद्विग्न हो उठे।

उन्हें आभास हुआ जैसे उनकी बेटी विश्वविद्यालय से आई है और बहुत ही आत्मीय संवाद करने लगी है–हे तात्! आप संपूर्ण विश्व में सर्वश्रेष्ठ पिता हैं। इसीलिए मैं आपसे गंधर्व विवाह की आशा चाहती हूँ।

आचार्य को मूर्च्छा आने को हो गई। उन्होंने पुत्री के सिर पर अपना स्नेहिल हाथ फिराकर आशीर्वाद दिया– ''जैसी तुम्हारी इच्छा, पुत्री! आप परिपक्व हैं। अपना भविष्य अब आप स्वयं तय करें। हाँ, हे लाड़ली! धर्मवालों से भगवान तुम्हारी रक्षा करे।''

आचार्य चिंतामग्न हो खाट पर आ लेटे और सोने का प्रयास करने लगे। परंतु पुत्री के गंधर्व विवाह से जुड़ी भयावह–परिकल्पनाएँ– जो यथार्थ में नित्य आस–पास ही घटित हो रही थीं– उनकी चिंता को बढ़ाती जा रही थीं। उनके कानों में ऊँची–ऊँची अश्लील ध्वनियाँ टकराने लगी थीं–

''पुत्री के विक्रेता बाहर आओ–बाहर आओ।''

''विक्रय ही करनी है तो अपने धर्म वालों को करो धर्म वालों को करो।''

''हम हमारी चीज को विधर्मियों के हाथों में नहीं जाने देंगे–नहीं जाने देंगे''।

इन कर्कश ध्वनियों के साथ ही जैसे उसके द्वार पर पत्थर बरसने आरंभ हो गए।

क्षणिक चुप्पी के पश्चात् पत्थरों से भी भारी एक चेतावनी भीतर तक आती है ''कल सायं तक उसे हमारे समक्ष समर्पित कर अन्यथा हम उसे स्वयं ढूँढ़ लेंगे। परंतु फिर उसका शव ही तुम्हें देंगे। वह भी कौमार्य–भंग के पश्चात् क्योंकि

यह हमारे राष्ट्रीय गौरव कर प्रश्न है।''

आचार्य पसीना-पसीना हो गए। वे कभी बाहर, कभी भीतर चक्कर काटने लगे। दु:स्वप्नों की कड़ियाँ उन्हें चैन नहीं लेने दे रही थीं।

अगले दिन वे कक्षाओं में भी अन्यमनस्क रहे। उन्हें यूँ तो पिछले लंबे समय से ऐसा अनुभव होता आ रहा था जैसे कि नींद में उन्हें कोई खूब पीटता रहता है और दिन-भर वह पिटाई उन्हें उद्विग्न रखती है। परंतु आज तो उन्हें ऐसा लग रहा है जैसे कि उन्हें बबूल के पेड़ के साथ बाँधकर गाँठ-गँठीली रज्जू से पीटा गया हो। रह-रहकर उनकी हथेलियाँ आपस में फँस जाती हैं। वे बालों में अँगुली फिराते हैं और विवशता में ग्रीवा हिलाते हैं। उन्हें लगता है जैसे कि उनके घर का कोई भी सदस्य आत्महत्या करेगा...कौन? कौन करेगा आत्महत्या? मैं ....हाँ-हाँ। यह विचार मेरा ही है। मैं अपने घर, अपनी पत्नी, अपने प्रिय पुत्री-पुत्र को क्या दे पाया हूँ। एक छोटा-सा घर तक नहीं। परंतु अभी तो मेरे भीतर संकल्प शेष हैं। मुझमें है एक सुंदर भविष्य के निर्माण का संकल्प...संकल्प मनुष्य के आत्म-हत्या के विचारों पर अकुंश का काम करते हैं। तो फिर सुरसतिया मेरी सीधी-सादी पत्नी? हाँ-हाँ...वह ऐसा कर सकती है। उसे मुझसे निराशा मिली। उसके स्वप्न मेरे घर आकर खंडित हुए। उसका रुग्ण शरीर उसके खंडित स्वप्नों का खंडहर ही तो रह गया है।

नहीं-नहीं। वह ऐसा नहीं कर सकती। सही है कि गुरुओं-माताओं के डेरों में जाकर ढोलक-चिमटों पर झूमना निस्संदेह घोर निराशा और पलायन का परिचायक है, परंतु पुत्र-पुत्री मोह और घर व मेरे प्रति उसकी निष्ठा उसे ऐसा करने से रोके रह सकते हैं। इस पर उसके रोगों ने उसमें अत्यधिक प्रतिरोधक क्षमता भी पैदा कर दी है। फिर-फिर कौन करेगा आत्महत्या? पुत्र? या पुत्री? वे दोनों बहुत अधिक महत्त्वाकांक्षी हो गए हैं। वे किसी भी सीमा तक जा सकते हैं। अब उन्होंने विदेश जाने की ठानी हुई है। परंतु मैं उनके विदेश जाने को अपने अल्प साधनों के द्वारा कैसे संभव बनाऊँ? इस समय वे धन-प्राप्ति की कहीं से भी, किसी से भी हर प्रकार की संभावना खोजते फिर रहे हैं। मैं अपने पुत्र-पुत्री की कामनाओं की पूर्ति के लिए हर समय तत्पर हूँ, परंतु इतनी बड़ी प्रतिभूति की मुद्रा के समक्ष मैं संपत्ति कहाँ से लाऊँ? मैं तो आज-तक एक छोटा-सा घर तक नहीं बना पाया हूँ। तो क्या वे अपनी बिखरी महत्त्वाकांक्षाओं की खड़िया से मेरी लचर-पचर गृहस्थी की दीवारों पर आत्महत्या लिख देंगे? और यह सब मात्र अधिकाधिक धनार्जन के लिए?

कौन है जो युवाओं में यूँ असंतोष भर रहा है? आचार्य धरणीधर लगभग

भूल गए थे कि वे कक्षा में बैठे हैं क्योंकि उनका सोचने का क्रम टूट ही नहीं रहा था।

कैसा गणित बनाया जा रहा है यह? यह कैसे समीकरण दिखने लगे हैं। बहुत अधिक, बहुत थोड़े भी थोड़े हैं। बहुत थोड़े मंडली बनाकर पूरी भू के बहुत बड़े की अपेक्षा बहुत बड़े होते जा रहे हैं। बहुत बड़े का हर गुणनफल बहुत थोड़े के गुणनफल के समक्ष ऋण में आता है। बहुत-थोड़े भाजक हैं, भाज्य हैं, भागफल भी हैं यही बहुत थोड़े और बहुत बड़े बना दिए गए हैं बचा हुआ शेष। कैसा समय है यह?

स्वत:चालित यंत्र हैं। यंत्रचालित मानव हैं। संवेदनहीन मानव प्रयासरत हैं यंत्रों को अधिकाधिक संवेदनशील बनाने को। कैसा समय है यह? कलियुग से भी बड़ा बनकर भू-मंडलीकरण खड़ा है। कलियुग की पीठ पर धर्म और धर्म की पीठ पर भूमंडलीकरण चढ़ा है। धर्म के पीछे लगाया जा रहा है लोगों को और धर्म लगा है बाघ की तरह लोगों के पीछे। कैसा समय है यह? न कोई शासन है न प्रशासन है और न ही दिखता है कोई राज्य। चारों दिशाओं में धर्म की ही जयजयकार है। हुंकार है। और धर्म के मारे हाहाकार है। पूरी स्वतंत्रता से फल-फूल रही है धनिकों-बनिकों-राज्य-धर्म की मंडलियाँ। कैसा समय है यह?

कहीं लगता है चारों ओर अच्छा-ही-अच्छा है सुख-ही-सुख हैं। कहीं लगता है कुछ भी अच्छा नहीं है, बस दु:ख-ही-दु:ख हैं। कहीं मारा जा रहा है घेरकर स्वप्नों को। दिखाए जा रहे और देखे जा रहे स्वप्नों के बीच स्थापित हैं तरह-तरह के रंग-बिरंगे बिक्री केंद्र। हर प्रकार के स्वप्नों के विपणन के लिए खोजी जा रही हैं नई-नई युक्तियाँ। कैसा समय है ये?

घंटी बज गई। विद्यार्थियों को न पढ़ा पाने के अपराध-बोध के साथ आचार्य जी घिसटते-से अन्य कक्षा में चले गए। लगता था जैसे कि वे महीनों से रुग्ण हैं और सोए-नहाए भी नहीं हैं। उन्हें देखकर कोई भी उन्हें विक्षिप्त कह सकता था। वे चाहकर भी खड़े नहीं रह पाए। उस कक्षा में भी वे जाते ही कुर्सी में धँस गए।

राज्यों की और धनिकों की और बनिकों की और धर्मवालों की मंडली हर स्थिति में कर रही है मनोरंजन, मना रही है— उत्सव। इन उत्सवों में युवा स्वप्न कर रहे हैं नृत्य। प्रतियोगिता के भाव में। इन उत्सवों में चिथड़े-चिथड़े उघाड़ा जा रहा है स्वप्नों को। विक्रय किया जा रहा है सब कुछ। क्रय किया जा रहा है सब कुछ। इन उत्सवों में। उत्सव मनाने वाले इनसे भी भयानक कुछ और उत्सवों की रूपरेखा बनाने चले गए हैं उठकर। उनके ठहाकों की, उनकी तालियों को, उनकी कृत्रिम मुस्कानों को यंत्रों द्वारा स्थायी व सर्वव्यापी बनाने के लिए

जुटे हैं विश्व के सारे वैज्ञानिक। कैसा समय है यह?

कैसा समय है यह जब अमेरिका में जा रहने के सपने, आस्ट्रेलिया, इंग्लैंड, फ्रांस, कनाडा के सपने रखे जा रहे हैं। कोष्ठकों में और कोष्ठकों से बाहर रखे जा रहे हैं ऋणात्मक स्वप्न... लिंगों और माताओं की यात्राओं के स्वप्न, काँवड़िया बनने के स्वप्न, भंडारों में सेवा के स्वप्न, पौधशाला में उगाए जा रहे गुरुओं-माताओं के शिष्य बनने के स्वप्न। और इन तमाम स्वप्नों के साथ-साथ चलते हैं आकाश में उड़ने के स्वप्न। आत्महत्या के स्वप्न और... और... मैं... मैं यहाँ कक्षा में बैठा अपने बाल नोच रहा हूँ...नहीं...कोई मेरे बाल नोच रहा है...नहीं-नहीं। ये हाथ उसके नहीं हैं जो बाल नोच रहा है... फिर किसके हैं ये हाथ जो बाल नोच रहा है... कैसा समय है ये?

प्रधानाचार्य वशिष्ठ कह रहे थे कि कलियुग की निरंतरता में ही अगले युग का पदार्पण होगा जो मानव केंद्रित होगा। जिसमें मानव सर्वोपरि होगा। मानव के लिए होगा सब कुछ, सब कहीं। लेकिन हर युग के विरोधाभासों की तरह कलयुग में भी आ गया है भूमंडलीकरण विरोधाभास बनकर जो मानव-युग-निर्माण के स्वप्नों को लटकाएगा, सहस्रों वर्षों तक और इस की प्रतिच्छाया मँडराती रहेगी मानव-युग में भी सहस्रों वर्षों तक।

आचार्य धरणीधर अब तक और अधिक विक्षिप्त दिखने लगे थे। वे पूर्णावकाश की घंटी की प्रतीक्षा करने लगे।

अवकाश के पश्चात् आचार्य धरणीधर प्रधानाचार्य-कक्ष में जा बैठे। वे वर्तमान-समय व स्थितियों के संबंध में विद्वान प्रधानाचार्य से कुछ और चर्चा करना चाहते थे। परंतु हिचक भी रहे थे, क्योंकि प्रधानाचार्य विद्यार्थियों की पढ़ाई और विद्यालय के हित की बातों को ही वरीयता देते थे। पूरा विद्यालय खाली हो गया था। कनिष्ठ कर्मचारी दूर के व ऊपरी-तल के कक्षों को बंद करने चले गए थे।

आचार्य धरणी प्रधानाचार्य की सौम्यता, गंभीरता, विद्वता तथा शिक्षा व नैतिकता के प्रति उनकी निष्ठा को अनुभूत कर सम्मान के भाव के साथ बैठे थे। वे अपनी उलझनों में उलझे होने के साथ-साथ यह सोचकर गद्‌गद् थे कि ऐसे लोग अभी भी संसार में हैं जिनकी हर बात, हर सिद्धांत मानव-कल्याण की भावना के साथ शुरू होकर मानव को केंद्र में रखकर समाप्त होते हैं। किसी भी देश की धरोहर होते हैं ऐसे लोग।

इससे पहले कि प्रधानाचार्य अपने आगे पड़े कार्य से मुक्त होकर धरणीधर से बात करते– पाँच-छः युवक दनदनाते हुए कक्ष में घुस आए। उनमें से एक

ने पूरी उग्रता के साथ एक कागज़ लहराया और फिर प्रधानाचार्य का हाथ खींच कर उसमें पकड़ा दिया। एक ने कहा– थोड़ा आराम से पढ़ लेना और उत्तर देते रहना। अभी मैं तुझे इसके संबंध में थोड़ा-सा बता दूँ– इसमें लिखा है कि आपने इस महान् राष्ट्र के कोटि-कोटि लोगों की भावनाओं को आहत किया है। कल की बैठक में आपकी वार्ता रामविरोधी, राष्ट्र-विरोधी और धर्म-विरोधी थी। हम ऐसे अधर्मी को विद्यालय में नहीं रहने देंगे। आपने राष्ट्र और राष्ट्रधर्म का घोर अपमान किया है।

उनकी इस धृष्टता को लेकर प्रधानाचार्य वशिष्ठ-विस्मित तो थे परंतु उन्होंने अपने चेहरे पर कोई तीखा प्रतिकार नहीं आने दिया था। वे शांत बैठे रहे। उनकी ओर से किसी भी प्रकार की कोई प्रतिक्रिया न देखकर युवाओं में से एक उन्हें अपशब्द बोलते हुए उनकी ओर लपका 'रस्सा...' परंतु दूसरे ने उसे रोक दिया और अपने जबड़े को कसते हुए बोला-' आप विद्यालय-प्रबंधन को अपना उत्तर देने की औपचारिकताएँ करते रहना। परंतु हमें...हमें तेरे से अभ्भी की अभ्भी उत्तर चाहिए। इसी समय।

आचार्य धरणीधर स्थिति समझ गए थे। वे यह भी समझ गए थे कि ये कौन लोग हैं। अपने समय की स्थितियाँ और व्यक्तियों और व्यक्ति-समूहों का जो आकलन नहीं करता वह मानवयोनि में अन्नकीट है। आचार्य को प्रधानाचार्य जैसे वयोवृद्ध, कर्तव्यनिष्ठ और विश्वस्तरीय पुरुष के विरुद्ध इस प्रकार के व्यवहार और दोषारोपण की कतई अपेक्षा नहीं थी। उन्होंने अशांत होकर पूछा-"आप लोग हमारे नगर के नहीं हैं। ऐसा मेरा विश्वास है। हाँ, आप में से एक-दो को कई बार विद्यालय के नवनियुक्त अध्यापकों के साथ अवश्य देखा है। आपको यह बताना होगा कि प्रबंधन के किस व्यक्ति ने आपको प्रतिनिधि बनाकर यहाँ भेजा है। क्या यह अनधिकार चेष्टा नहीं है? प्रधानाचार्य जैसे वयोवृद्ध सम्मानित नागरिक से आपको यूँ धृष्टतापूर्ण वार्ता करते हुए लज्जा नहीं आती। आपका यह अशिष्ट आचरण क्या अधर्म नहीं है?"

एक युवक ने अपने जबड़े को भींचते हुए धरणीधर को घुड़का, "आज तेरी बारी नहीं है। चोप...बस चोप...चोप...बताएँगे तुझे भी...अभी चोप...तुझे भी तेरी पुत्री के विधर्मी संग प्रेम-विवाह कर दंड देना है। पर आज नहीं।" कहकर कसमसाते धरणीधर को उन्होंने कुर्सी में धँसा दिया।

प्रधानाचार्य ने धरणीधर की ओर शांत रहने का संकेत किया और उन युवकों को संबोधित कर बोले– हे मेरे राष्ट्र की बहुमूल्य युवा-शक्ति! यदि आपमें इतना कुछ बोलने-करने का दुःस्साहस है तो कुछ सुनने का भी साहस होना चाहिए–

छोटी–सी, बहुत ही छोटी–सी एक कथा याद आ रही है। आप ना भी चाहेंगे तो भी सुनाऊँगा। मैं आपके हाथों में पकड़ी अदृश्य लाठी की छवि आपकी आँखों में देख रहा हूँ। और जो लाठी आपने पकड़ ली है उसे आप मात्र तर्क सुनकर फेंक देंगे– ऐसा भ्रम मुझे कतई नहीं है... फिर भी सुनो–

अथ राजा भोज ब्राह्मण कथा

राजा भोज जब अपनी प्रात:कालीन चर्चा में लगे होते थे तो सूर्योदय के साथ ही महल के प्रवेश–द्वार पर एक ब्राह्मण आता और ऊँचे स्वर में कहता, ''धर्म की जड़ हरीऽऽऽ।'' उस ब्राह्मण की उद्घोषक जैसा स्वर महल के गलियारों, विलास–कक्षों से होता हुआ राजा के निजी–कक्ष तक खनखनाता हुआ पहुँचता तो वे स्वयं नंगे पाँव प्रवेश द्वार पर आकर उस ब्राह्मण को एक स्वर्ण मुद्रा दान में देते। जाता हुआ ब्राह्मण सदैव एक सूक्त वाक्य भी कहकर जाता 'धर्म की हरी गाय मातृ–समाना...धर्म की जड़ हरी...यत्र पूज्यते नारी तत्र वसते देवता...।' कई वर्ष तक यह क्रम चलता रहा। एक दिन राजा ने अपने महामंत्री से कहा, ''महामंत्री जी! मैं धर्म की जड़ हरी वाले ब्राह्मण को राजदरबार में उच्चासन पर बिठाना चाहता हूँ। यथा–धर्माचार्य। धर्माधिकारी। या फिर राजकवि। आप इस संबंध में अपना मत दें।''

महामंत्री गंभीर होकर बोले– ''ठीक है महाराज मैं कल ही इस ब्राह्मण की पड़ताल करता हूँ।''

''अरे! पड़ताल कैसी महामंत्री जी?'' आपने भी प्रात:काल में नित्य आते उस ब्राह्मण को देखा होगा। उन जैसा ब्रह्मणीय शृंगार मैंने अन्य किसी ब्राह्मण पर आज तक नहीं देखा। उनके मस्तक पर चंदन का गोल तिलक और तिलक के चारों ओर सुनहरी किनारी जैसे कि छोटे तिलक के पीछे बड़ा–सा सूर्य छिपा हो और उसकी किरणें चारों ओर फैल रही हों। ऐसे ही तिलक कानों पर भी होते हैं। कंधे पर सदैव रामनामी पड़ी होती है। साफ–सुथरी। धुली हुई। केसरिया किनारी की धोती और कंधों पर झूलते उनके ऋषि–मुनियों जैसे केश। गले में रुद्राक्ष और तुलसी की मालाएँ। कलाई पर मौली के दस–दस बार लपेटे हुए धागे। और क्या पड़ताल करनी है आपको, महामंत्री जी!

''यह राजदरबार की छवि का प्रश्न है, महाराज! और फिर यूँ भी इस प्रकार का असामान्य शृंगार निष्कर्षत: व्यक्ति–श्रेष्ठता का मानदंड नहीं माना जाना चाहिए। इसलिए हे राजन्! कृपया मुझे मात्र एक दिन का समय और पड़ताल करने की अनुमति दें।'' धीर–गंभीर स्वर में महामंत्री ने कहा और वहाँ से चले गए।

अगली प्रातः लोहित बेला में ब्राह्मण अपने संपूर्ण शृंगार के साथ घर से राजमहल की ओर प्रस्थान करने के लिए निकला तो उसने द्वार पर राजरथ खड़ा देखा। वह गर्व से मुस्कुराया। रथी ने उसे साष्टांग प्रणाम कर कहा– हे द्विज! महाराजा भोज ने आपको लिवा लाने के लिए यह राजरथ भिजवाया है। आप कृपया इस पर आसन ग्रहण कर मुझे, मेरे राजा और समग्र राज्य को उपकृत करें।

ब्राह्मण ने रथी और राजरथ की ओर उपेक्षित और गर्वीली दृष्टि डाली और फिर राजा की भाँति रथ की गद्दी पर बैठते हुए रथी को साधिकार चलने का आदेश दिया।

ब्राह्मण ने मुस्कुराते हुए सोचना आरंभ किया–आखिर राजा भोज को निर्णय लेना ही पड़ा। आज मुझे राजदरबार में धर्मासन दे ही दिया जाएगा। धर्मासन से मंत्रिमंडल। मंत्रि–मंडल से अर्थमंत्री। अर्थमंत्री से महामंत्री और...और....अरे रथी! यह रथ है या बैलगाड़ी? ये राजा के घोड़े हैं या किसी कुम्हार के गधे? तीव्रता से क्यों नहीं चला रहा? महाराज भोज मेरी प्रतीक्षा में अधीर हो रहे होंगे।

'हे नरश्रेष्ठ! मुझे सूर्योदय के साथ ही आपको दरबार में पहुँचाने का निर्देश हुआ है। लोहित बेला में तो मुझे आपके द्वार पर इसलिए भेजा गया है कहीं आप पाँव–पाँव ही प्रस्थान न कर जाएँ। एक पल, विप्र! कहते हुए रथी ने रथ रोक दिया और एक ओर चल दिया। ब्राह्मण को रथी पर क्रोध आने लगा। यह आ क्यों नहीं रहा। तभी ब्राह्मण ने सुना कि रथी कुछ दूरी से उसे भी पुकार रहा है। हे महापंडित! तनिक इधर तो आइए। यहाँ एक गाय दलदल में धँसी है और बाहर निकलने के लिए छटपटा रही है। यदि आप भी कुछ सहारा दें तो यह निकल सकती है।'' ब्राह्मण ने रथ की झालर उठाकर देखा। रथी उसे निकालने का प्रयास कर रहा था। फिर ब्राह्मण ने आकाश की ओर देखा। लोहिता लुप्त हो रही थी। वह क्रोध में भरकर बोला, 'ओ रथी! क्या तेरे राजा ने तुझे सेवक की मर्यादाएँ नहीं सिखाईं! संभव है अब भविष्य में तुम्हें ही स्थायी रूप से मेरा रथी नियुक्त कर दिया जाए। परंतु तुम्हें तो अनुशासन का कुछ भी ज्ञान नहीं है। इस समय मैं तुम्हारा स्वामी हूँ। तुम्हें दिखाई नहीं दे रहा–इस समय मैं राजदरबार में आमंत्रित विशेष जन हूँ। इस गाय को निकालने में मेरा शृंगार, मेरे ये ब्राह्मणीय वस्त्र कीचड़ में नहीं सनेंगे क्या? आओ और चलो। रथ हाँको। वह स्वयं ही निकल जाएगी। गाय शक्तिशाली और बुद्धिमान जीव होता है। नहीं निकल सकी तो तेरे जैसा कोई और आकर खींच बाहर करेगा।''

कथा के मध्य अल्प–विराम देकर प्रधानाचार्य ने जबड़ों को कसते–भींचते उन युवकों के चेहरों को पढ़ना चाहा। वहाँ कुछ भी नहीं था। सिवाय क्रोध के।

थोड़ा आगे चलकर रथी ने रथ फिर रोक दिया। मार्ग पर एक बुढ़िया सिर पर बोझा लादे घिसटती–सी चल रही थी। रथी ने ब्राह्मण से कहा, ''हे सुप्रतिष्ठित कविश्रेष्ठ! मार्ग पर जा रही वृद्धा चलने में संभवतः लाचार है। असहाय है। यदि आप की अनुकंपा हो तो क्यों ना इसके गंतव्य तक इसे अश्वों के दायीं ओर रिक्त पड़े सहायक रथी के स्थान पर बिठा लें।''

ब्राह्मण अब अनुशासनहीनता का दोष तो नहीं लगा पाया, क्योंकि रथी ने उससे आज्ञा माँगी थी। परंतु वह नेत्र बंद कर राजरथ की घंटियों के मधुर संगीत, पक्षियों के कलरव, अश्वों की टप–टप, प्रातःकाल की मधुर–बयार और राजदरबार में अपनी उपस्थिति की ऊँची कल्पनाओं में खोया रहना—चाहता था। ऐसी स्थिति में उसे पहले से भी अधिक क्रोध आया, तुम्हें लगता है, ज्ञान तो छू तक नहीं पाया है। देख नहीं रहा वस्त्रों से यह बुढ़िया शूद्र जैसी दिख रही है। और निश्चित ही यह है भी शूद्र, क्योंकि इतनी प्रातः शूद्र ही यूँ श्रम करते–फिरते रहते हैं। इसे तुम उच्च कुल, राजदरबार में आमंत्रित, सम्मानित ब्राह्मण के रथ में बैठाने की धृष्टतापूर्ण बातें कर रहे हो। यूँ ही घिसट–घिसट कर मरना इनका कर्म है। चलो। रथ हाँको।

अतिथिगृह में ब्राह्मण को आदर–सत्कार के साथ विश्राम करवाकर जलपान करवाया गया। इसके पश्चात् उसे राजदरबार में आमंत्रित किया गया....और...

''अरे छोड़ बुड्ढे...तेरी इस कथा में कोई जिज्ञासा नहीं है। कथा सुनते हुए साफ पता चल रहा है कि रथी के छदम्–वेश में निश्चित रूप से महामंत्री था। उसने राजा भोज को दोनों घटनाएँ बता दी होंगी। अब राजा ब्राह्मण से कहेंगे, ''हे ब्राह्मण! इससे पहले कि आप अपनी नित्यप्रति वाली अनुग्रह मुद्रा प्राप्त करें कृपया बताएँ— जीवन–मूल्य बड़े या धर्म? और बताएँ– जीवन–मूल्यों के बिना धर्म का अर्थ? ठीक है मान्यता–प्राप्त आचार्य। उन युवकों में से एक ने पूरी ढिठाई के साथ प्रधानाचार्य का वाणी से, चेहरे से व नेत्रों की भाव–भंगिमा से उपहास उड़ाया।

अब पहली बार प्रधानाचार्य को आश्चर्य हुआ। वह इन युवकों को भ्रमित, अराजक, दिशाहीन और आजीविका न होने के कारण असंतुष्ट मानकर चल रहे थे। परंतु नहीं। ये तो पूरी तरह किसी के सधे हुए अस्त्र बन चुके हैं। इसका अर्थ है...

सुनाते रहना आराम से बूढ्ढों वाली ये जीवन–मूल्यों, जीवन–दर्शन, जीवन–पद्धति वाली बातें। बुनते रहना अपने बाप की तरह नीति कथाएँ। परंतु पहले एक कर्तव्यपरायण आचार्य होने और अपनी तार्किकता का पुरस्कार ले लो।'' कहकर जैसे ही एक युवक उनकी ओर बढ़ा, धरणीधर बीच में आन खड़ा हुआ।

दो युवक उसे खींचकर एक कोने में ले गए। दो युवकों ने प्रधानाचार्य को अपने युवा बाहुपाश में जकड़ लिया। वृद्ध मांसपेशियाँ कुछ फड़फड़ाईं और ढ़ीली पड़ने लगीं। एक युवक ने उनके मुख पर कालिख पोत दी। और वे सब आराम से बाहर निकल गए। धरणीधर दूरभाष यंत्र की ओर बढ़ा, परंतु प्रधानाचार्य ने उन्हें रोक दिया। वे कुर्सी में गिर पड़े और धरणीधर किंकर्तव्यविमूढ़ खड़े-के-खड़े रह गए। वे दोनों लज्जा और आत्मग्लानि के कारण एक-दूसरे से आँखें नहीं मिला पा रहे थे।

''मेरा नम्र निवेदन है कि आप मुझे अकेला छोड़ दें...आप अभी चले जाएँ।''

प्रधानाचार्य के आग्रह पर धरणीधर क्रोध और विवशता की मुद्रा में कार्यालय से निकल गए।

विद्यालय के कनिष्ठ कर्मचारी सभी कक्ष बंद कर प्रधानाचार्य को तालियाँ सँभलवाने आए तो उन्हें उनका द्वार-भीतर से बंद पाया। उन्होंने यवनिका में से भीतर झाँका तो वे सन्न रह गए। प्रधानाचार्य पंखे पर बँधी रज्जू से झूल रहे थे।

सूचना मिलते ही प्रबंधन के कुछ लोग वहाँ पहुँच गए। शासकीय बलों को सूचित कर दिया गया। उन्होंने कक्ष का द्वार तोड़कर प्रधानाचार्य के शव को धरा पर डाल दिया। बल के कर्मचारियों ने आत्महत्या से पहले का लिखित पत्र अपने नियंत्रण में ले लिया जिस पर मात्र इतना लिखा था-''देश व देश के नागरिकों को राज्य और धनिकों और बनिकों की मंडली से तथा धर्म वाले अधर्मियों से बचाना होगा।''

कुछ समय पश्चात् शव का चेहरा साफ था-बिना कालिख के।

इधर धरणीधर अपने घर पर इधर-से-उधर तेज-तेज चल रहे थे। बीच-बीच में वे पाँव पटक रहे थे। उनकी मुट्ठियाँ भिंच-भिंच जा रही थीं। सूर्यास्त हो चुका था और अँधेरा घिरने लगा था। तभी उसके एक पड़ोसी ने उसे समाचार दिया-सुना है आपके प्रधानाचार्य ने विद्यालय के किसी विद्यार्थी के साथ अपने कार्यालय में ही दुराचार का प्रयास किया। विद्यार्थी का कोलाहल सुनकर कुछ अध्यापक वहाँ पहुँच गए। उन्होंने विद्यालय की ख्याति को ध्यान में रखते हुए विद्यार्थी को कपड़े पहनाकर चुपचाप भगा दिया।

''कौ...कौ...कौन कह रहा है?'' धरणीधर की जीभ तथा मस्तिष्क को जैसे अधरंग मार गया था।

''अरे! पूरे नगर में चर्चा है और आपको ज्ञात तक नहीं? वैसे आचार्य जी! किस पर विश्वास करें? इतना ख्याति-प्राप्त, पुरस्कार विजेता अध्यापक डूबा भी तो कहाँ? और वह भी आयु की किस अवस्था में?''

धरणीधर अत्यधिक क्रोध और विवशता में छटपटाते हुए बुड़बुड़ाने लगे,

कैसा समय है यह? कितनी सरलता से दमित किया जा सकता है किसी बड़े सत्य को। किसी बड़ी वास्तविकता को। और परिवर्तित किया जा सकता है इन्हें टुच्चे असत्य और मिथ्या प्रचार-समाचार में। मिथ्या प्रचार को घोला जा सकता है। योजनाबद्ध तरीके से सड़ांध की तरह वायु में पूरी तीव्रता और गति के साथ बड़े स्तर पर रचे जा रहे षड्यंत्रों के अनुरूपा कैसा समय है यह?

फिर धरणीधर अचानक चीख उठे- छल है यह पूरे देश के साथ। देश की प्रजा के साथ।

कुछ समय के पश्चात् उसे प्रधानाचार्य वशिष्ठ की आत्महत्या वाला समाचार भी मिल गया था।

राष्ट्रीय संग्रहालय के पांडुलिपि प्रकोष्ठ में एक ही स्थान पर उपलब्ध यह कथा इतनी ही है। परंतु इसके पश्चात् कलियुग के भूमंडलीकरण के समय की इस कथा के कुछ और संदर्भ शोधकर्ताओं ने एकत्रित किए हैं।

इन सदर्भों-अंशों का सारांश यह है—परिणामत: धरणीधर ने उस विद्यालय से त्यागपत्र दे दिया था और उन्होंने घर पर ही जीवन-यापन के लिए गणित पढ़ाना आरंभ कर दिया था। उनके पुत्र-पुत्री वर्षों तक विदेश जाने के लिए छटपटाते घूमते रहे। धनाभाव में अंतत: उन्होंने देश में ही छोटी-छोटी आजीविकाएँ ढूँढ़ लीं और अपनी असंतुष्ट गृहस्थी कहीं और पिता से दूर बसा ली थी। धरणीधर अकेले रह गए थे क्योंकि उनकी पत्नी ने गृह-त्याग कर दिया था। उसके संबंध में कोई ठोस संदर्भ नहीं मिल पर रहा कि वह कहाँ गई। उसने आत्महत्या की या गृहत्याग किया।

अन्वेषकों, शोधकर्ताओं, इतिहासकारों का इस प्राचीन श्रुतकथा के संबंध में वर्तमान में मतैक्य नहीं रहा है। जबकि इस कथा के सदंर्भ उस समय के कई ग्रंथों में उपलब्ध हैं। इस कथा के संबंध में कुछ इतिहासकारों ने कहा है कि प्रधानाचार्य वाला प्रसंग ऐसा लगता है कि यह प्राचीन ग्रंथों में नहीं था। यह कालांतर में हठात् जोड़ा गया है। कुछ शोधकर्ताओं का यह मानना है कि सुग्रीव-विभीषण संवाद इस कथा के अनुरूप नहीं चलते। यह अंश मूलकथा को विकृत करने और भूमंडलीकरण जैसे चमचमाते रजत युग की छवि को धूमिल करने के लिए जोड़ा गया है।

एकाध इतिहासकार तो यहाँ तक कहता है कि ऐसा कोई समय था ही नहीं जिसे कलियुग से भी बुरे समय के रूप में इस कथा में वर्णित किया गया है। यह सब कलियुग की गरिमा के विरुद्ध रचा गया षड्यंत्र मात्र प्रतीत होता है।

कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि आज के नैनो-यांत्रिक युग में इस कथा

की प्रासंगिकता ही क्या है? जिन संवेदनाओं के धरातल पर यह कथा खड़ी की गई है–आज उन संवेदनाओं की ही कोई प्रासंगिकता नहीं बची है।

अभी–अभी उस समय का एक शोध–पत्र भी प्रकाश में आया है जो पूरी कथा को सही बताते हुए इस कथा के लुप्त अंशों को भी उद्‌घाटित करता है। शोध–पत्र जीर्ण अवस्था में एक पांडुलिपि के रूप में पाया गया है। इसमें बताया गया है– धरणीधर प्रधानाचार्य की बलात् हत्या से इतना विचलित और क्षुब्ध हो गया था कि कुछ दिनों पश्चात् वह नित्य शासकीय मुख्यालय पर हाथ में एक पट्टिका लिये खड़ा होने लगा था।

''प्रधानाचार्य की हत्या की गई है जिसकी जाँच होनी चाहिए''

रात्रि में वह नागरिकों को तथ्य बताता और उन्हें अंधकारमय भविष्य के प्रति सचेत करता। धीरे–धीरे उसके साथ हाथों में पट्टिका लिये सहस्रों की संख्या में लोग जाँच की माँग करने लगे थे। अंततः राज्य को जाँच आयोग बिठाना पड़ा। कहते हैं वर्षों तक चली जाँच के परिणाम प्रशासन ने सार्वजनिक नहीं किए थे।

तदुपरांत वह शोध–पत्र विवादास्पद होने के कारण प्रशासन ने अपने नियंत्रण में ले लिया था। एक तो इसमें मात्र प्रधानाचार्य की आत्महत्या का ही सदंर्भ नहीं था। अपितु लाखों की संख्या में अन्य आत्म–हत्याओं, हत्याओं, क्रूरताओं, अग्निकांडों के संदर्भ भी थे। शोध–प्रबन्धन की इस पांडुलिपि को संदेहास्पद भी माना गया है। जहाँ आत्महत्याओं आदि की संख्या अंकित है वहाँ मात्र सौ बचा है। संख्या के शेष शून्य जीर्ण होकर वहाँ से विलग गए हैं और उसी पांडुलिपि में अन्यत्र गिरे पड़े हैं।

विद्वान कहते हैं कि जो शून्य पृथक गिरे पड़े मिले हैं वे उस समय चरम पर घटित हो रही कन्याभ्रूण हत्याओं के हैं। परंतु उस समय को रजतयुग कहने वाले विद्वान यह स्वीकार करने में टाल–मटोल कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि ये शून्य उस समय निर्मित मंदिरों की संख्या के हैं। क्योंकि उस समय के छोटे से कालखंड में लाखों की संख्या में मंदिरों का निर्माण करवाया गया था। इससे यह प्रमाणित होता है कि तत्कालीन राष्ट्र चमचमाते रजत युग में था और धर्म अपने उत्कर्ष पर था।

जो भी हो, उस समय को परिभाषित करने का कार्य अभी यूँ का यूँ पड़ा है और इतिहासकार, समाजशस्त्री, कलाकार विवादों से दूर अन्य रुचिकर–वाणिज्यिक विषयों के अध्ययनों में जुटे हैं।

(अप्रकाशित)

•